**प्रवचन-क्रम**

पहला प्रवचन

## एक मृत महापुरुष का जन्म

मेरे प्रिय आत्मन्!

वेटिकन का पोप अमरीका गया हुआ था। हवाई जहाज से उतरने के पहले उसके मित्रों ने उससे कहाः एक बात ध्यान रखना, उतरते ही हवाई अड्डे पर पत्रकार कुछ पूछें तो थोड़ा सोच-समझ कर उत्तर देना। और हां और न में तो उत्तर देना ही नहीं। जहां तक बन सके, उत्तर देने से बचने की कोशिश करना; अन्यथा अमेरिका में आते ही परेशानी शुरू हो जाएगी।

पोप जैसे ही हवाई अड्डे पर उतरा, वैसे ही पत्रकारों ने उसे घेर लिया और एक पत्रकार ने उससे पूछाः वुड यू लाइक टु विजिट एनी न्युडिस्ट कैंप वाइल इन न्यूयार्क? क्या तुम कोई दिगंबर क्लब, कोई न्युडिस्ट क्लब, कोई नग्न रहने वाले लोगों के क्लब में, न्यूयार्क में रहते समय जाना पसंद करोगे?

पोप ने सोचा, हां और न में उत्तर देना खतरनाक हो सकता है। हां कहने का मतलब होगा कि मैं जाना चाहता हूं देखने। न कहने का मतलब होगा कि जाने से डरता हूं। उत्तर देने से बचने के लिए उसने उलटा प्रश्न पूछा। उसने पूछाः इ.ज देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? कोई न्यूयार्क में नंगे लोगों का क्लब है? फिर बात दूसरी चल पड़ी। उसने सोचा कि छुटकारा हुआ।

लेकिन दूसरे दिन सुबह अखबारों में पहले ही पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में खबर छपी थी। खबर थी कि महामहिम परम पूज्य पोप ने हवाई अड्डे पर उतरते ही पत्रकारों से पहली बात यह पूछी, इ.ज देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? कोई नंगे लोगों का क्लब है न्यूयार्क में? यह उतरते ही पहली बात पत्रकारों से महामहिम पोप ने पूछी।

कुछ ऐसा ही मामला मेरे और पत्रकारों के बीच भी हो गया। लेकिन मेरे संबंध में और पत्रकारों के बीच में और पोप और पत्रकारों के बीच हुई बात में थोड़ा फर्क है। एक तो फर्क यह है कि मैंने हां और न में उत्तर दिए। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं कि उत्तरों से बचने की कोशिश करूं। घुमाव-फिराव से मुझे कोई नाता और संबंध नहीं है। जो बात मुझे ठीक लगे और जैसी लगे वैसा ही कह देने को मैं कर्तव्य समझता हूं। मेरे उत्तरों तक तो ठीक था, लेकिन उन उत्तरों को इस तरह बिगाड़ कर, विकृत करके अधूरे प्रसंग के बाहर उपस्थित किया गया।

मैं तो यहां नहीं था, पंजाब था। लौटा तो यहां देख कर बहुत हैरानी मालूम पड़ी और आश्चर्य मालूम पड़ा कि चीजें इस रंग में भी पेश की जा सकती हैं। लेकिन मित्र तो घबड़ाए हुए थे। मैं खुश हुआ। मैंने कहाः इससे घबड़ाने की बात नहीं। एक लिहाज से पत्रकारों ने बड़ी कृपा की है और भविष्य में भी ऐसी ही कृपा करते रहेंगे तो अच्छा होगा। बहुत लोगों तक खबर पहुंच गई, बात पहुंच गई। कोई फिकर नहीं कि गलत ढंग से पहुंची। लेकिन वे मुझे सुनने आ सकेंगे तो उन्हें ठीक बात का बोध हो सकेगा।

कई बार कुछ लोग जिन बातों को सोचते हैं कि अभिशाप बन जाएंगी, वे ही बातें वरदान भी बन सकती हैं।

मैं राजकोट गया, वहीं से लौटा आज। वहां मित्र बहुत घबड़ाए हुए थे। लेकिन परिणाम यह हुआ कि जहां दस हजार लोग मुझे सुनते थे, वहां बीस हजार लोगों ने मुझे सुना। वे समझ कर गए और आश्चर्य करते गए कि

चीजों को यह रंग और यह रूप भी दिया जा सकता है। जो मैंने बात की थी इन तीन दिनों में, उसी संबंध में पूरी बात मुझे करनी है।

मेरी दृष्टि में भारत के दुर्भाग्यों में से एक दुर्भाग्य यह रहा है कि हम अपने महापुरुषों की आलोचना करने में आज तक भी समर्थ नहीं हो पाए। और जो कौम अपने महापुरुषों की आलोचना करने में समर्थ नहीं हो पाती, उस कौम के संबंध में दो ही बातें कही जा सकती हैं। एक तो यह कि वह अपने महापुरुषों को इस योग्य नहीं समझती कि उनकी आलोचना की जा सके या अपने महापुरुषों को इतना कमजोर और साधारण समझती है कि आलोचना में वे टिक नहीं सकेंगे।

मैं गांधी के संबंध में ये दोनों ही बातें मानने को तैयार नहीं हूं। मेरी समझ में गांधी कोई कागजी महापुरुष नहीं हैं कि आलोचना की वर्षा आएगी और उनका रंग-रोगन बह जाएगा। कुछ कागजी महापुरुष होते हैं उन्हें आलोचना से बचाया जाना चाहिए, क्योंकि वे आलोचना में खड़े नहीं रह सकते हैं। लेकिन गांधी को मैं कागजी महापुरुष नहीं मानता, वे कोई कागज की प्रतिमा नहीं हैं कच्चे रंग में रंगी हुई कि वर्षा आएगी आलोचना की और सब नष्ट हो जाएगा।

गांधी को मैं दुनिया के उन थोड़े से महापुरुषों में से एक मानता हूं, जो पत्थर की प्रतिमाओं की तरह हैं, जिन पर वर्षा होती है तो धूल बह जाती है, प्रतिमा और निखर कर प्रकट होती है।

गांधी कोई कच्चे महापुरुष नहीं हैं। लेकिन गांधी के पीछे जो अनुयायियों का वर्ग है, वह शायद स्वयं कच्चा है, इसलिए गांधी को भी कच्चा मान लेता है। खुद के भय ही हम अपने महापुरुषों पर भी आरोपित कर देते हैं। हमारी अपनी ही हालतें हम अपने महापुरुषों पर भी थोप देते हैं। गांधी की आलोचना निश्चित की जानी चाहिए। क्योंकि गांधी की आलोचना से गांधी का तो कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है, हमारा जरूर कुछ हित हो सकता है।

यह बात अत्यंत अप्रौढ़ और इम्मैच्योर मालूम होती है कि हम अपने महापुरुषों की सिर्फ पूजा करें और कभी कोई सृजनात्मक आलोचना, क्रिएटिव क्रिटिसिज्म न करें। यह भी कुछ भय मालूम होता है पीछे कि कहीं हमारे महापुरुष की कोई भूल न खयाल में आ जाए।

ध्यान रखना चाहिए कि पृथ्वी पर ऐसा कोई मनुष्य कभी नहीं हुआ है जिससे भूलें न होती हों। एक बात का फर्क होता है--छोटे लोग छोटी भूलें करते हैं, महापुरुष बड़ी भूलें करते हैं। महापुरुष छोटी भूलें नहीं करते हैं।

लेकिन पृथ्वी पर कोई मनुष्य कभी नहीं होता जिससे भूल न होती हो। जिससे भूल नहीं होती है वह मोक्ष चला जाता है। उसे पृथ्वी पर आने की कोई जरूरत ही नहीं होती है।

लेकिन हमारे मन में यह घबड़ाहट रहती है कि हमारे महापुरुष की कोई भूल, कोई गलती खयाल में न आ जाए। इसलिए पूजा करो, प्रार्थना करो, उपासना करो, लेकिन विचार कभी मत करना।

क्योंकि ध्यान रहे, जैसे ही विचार शुरू होगा, आलोचना प्रारंभ होती है। बिना आलोचना के विचार कभी होता ही नहीं है। पूजा हो सकती है, स्तुति हो सकती है, प्रशंसा हो सकती है। लेकिन वह विचार नहीं है। और जो कौम अपने महापुरुषों पर विचार नहीं करती, उसके महापुरुषों का जीवन व्यर्थ हो जाता है, वह उसके कौम के काम में ही नहीं आ पाता है।

हम तीन-चार हजार वर्षों से यही कर रहे हैं! महावीर हैं, बुद्ध हैं, कृष्ण हैं, राम हैं। हमें उनकी पूजा करनी है, विचार उन पर कभी नहीं करना है? ध्यान रहे, जिन पर हम विचार नहीं करते हैं, उनका हमारे जीवन पर कोई संस्पर्श, हमारे जीवन को परिवर्तन करने वाला कोई भी प्रभाव कभी नहीं पड़ता है।

पूजा से हम रूपांतरित नहीं होते हैं, विचार से हम रूपांतरित होते हैं। और पूजा हो सकता है सिर्फ हमारी तरकीब हो महापुरुषों से बच जाने की।

और मुझे तो ऐसा ही लगता है कि जिससे हम बचना चाहते हैं, उसी को भगवान बना कर मंदिर में बिठा देते हैं। फिर हमारी झंझट समाप्त हो जाती है। कभी दो फूल चढ़ा आते हैं, कभी माला पहना आते हैं, कभी स्तुति कर लेते हैं, कभी जन्म-दिन मना लेते हैं और हमसे उसका फिर कोई संबंध नहीं रह जाता!

जिस महापुरुष को हमें व्यर्थ करना हो, उसकी हमने तरकीब निकाल ली है कि हम उसकी पूजा करेंगे, स्तुति करेंगे, लेकिन उस पर विचार नहीं करेंगे। क्योंकि विचार करने का परिणाम एक ही हो सकता है कि विचार करने से वह हमें इस योग्य मालूम पड़े कि हम अपने जीवन को बदलें।

लेकिन हम बहुत होशियार हैं, यह देश बहुत होशियार है, अपने आप को धोखा देने में। यह देश सोचता है कि हम महावीर की पूजा करते हैं तो हम बड़ा भारी काम कर रहे हैं; कि हम बुद्ध की पूजा करते हैं तो शायद बुद्ध पर कोई उपकार कर रहे हैं, या गांधी की पूजा शुरू की है तो गांधी पर हमारा कोई अनुग्रह हो रहा है। इस भ्रांति में रहने की जरूरत नहीं है। महापुरुष पूजा के लिए न पैदा होते हैं, न उनकी पूजा की कोई लालसा है। और जिसके मन में पूजा की लालसा हो; वह और कुछ भी हो, महापुरुष नहीं हो सकता है।

महापुरुष का उपयोग यह है कि वह हमारे जीवन में, हमारे खून में, हमारे विचार में, हमारी प्रतिभा में प्रविष्ट हो सके।

और हमारी प्रतिभा में किसी को द्वार तभी मिलता है, जब हम विचार करते हैं, आलोचना करते हैं, खोज-बीन करते हैं, अन्वेषण करते हैं, तब प्रवेश मिलता है हमारी प्रतिभा के भीतर।

हमारे सारे महापुरुष भारत की प्रतिभा के बाहर खड़े हुए हैं, मंदिरों में बंद। भारत के प्राणों में उनका कोई प्रवेश नहीं हो सका है।

मैं नहीं चाहता हूं कि पुराने महापुरुषों की तरह गांधी जैसा अदभुत व्यक्ति भी व्यर्थ हो जाए। इसलिए मैं चाहता हूं कि गांधी पर जितनी सतेज आलोचना और विचार हो सके उतना ही सौभाग्य मानना चाहिए। लेकिन वह जो गांधी के पीछे चलने वाले गांधीवादियों का तपका है, वह इस बात से बहुत घबड़ाता है। वह क्यों घबड़ाता है? वह इसलिए घबड़ाता है कि उसे डर है कि गांधी की आलोचना अंततः गांधीवादी की आलोचना बन सकती है। उसका भय। उसका भय यह नहीं है कि गांधी की आलोचना से उसको कोई परेशानी होने वाली है। उसका भय यह है कि गांधी की आड़ में वह खुद छिपा हुआ है और गांधी की आलोचना कहीं उसकी आलोचना न बन जाए। इसलिए वह गांधी की आलोचना और विचार करने से बचना चाहता है। वह कहता है पूजा के थाल चलाओ और गांधी को भगवान बना लो। मैं भगवान से एक ही प्रार्थना करता हूं कि कृपा करना, गांधी को भगवान मत बनने देना। क्योंकि जितने लोग हमारे पहले भगवान बन गए हैं, वे भगवान बनते ही व्यर्थ हो गए। समाज और देश के लिए उनका कोई उपयोग नहीं रह गया।

गांधी एक अदभुत व्यक्ति हैं। शायद पृथ्वी पर दो-चार लोग ही उस कोटि के पैदा हुए हैं। लेकिन पीछे चलने वाले लोग हमेशा महापुरुष की हत्या करने की कोशिश करते हैं। वह हत्या उनको भगवान बना कर की जाती है।

जिस आदमी को भी भगवान बना दिया, उसकी आदमी की तरह हत्या हो गई। भगवान की तरह स्थापना हो गई, आदमी की तरह हत्या हो गई।

और हम आदमियों से ही प्रभावित हो सकते हैं और आदमियों के साथ ही हम जी सकते हैं और आगे चल सकते हैं। गांधी के साथ फिर वही शरारत शुरू हो गई जो हमने राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर के साथ की थी। लेकिन हम अतीत की भूलों से कुछ सीखते भी मालूम नहीं पड़ते हैं।

मैं चाहता हूं कि गांधी को हम मनुष्य ही बनाए रखें, ताकि वे हमारी मनुष्यता के काम आ सकें। हम उन पर निरंतर विचार कर सकें, सोच सकें और आगे बढ़ सकें। इस खयाल से मैंने उनकी कुछ आलोचना की थी।

मुझे अनेक पत्र पहुंचे कि जो व्यक्ति मर चुका है उसकी आलोचना हमें नहीं करनी चाहिए। मैंने उन पत्रों के उत्तर में लिखा कि शायद तुम्हें पता नहीं है कि गांधी उन लोगों में से नहीं हैं जो इतनी आसानी से मर जाएं। गोडसे ने जो भूल की थी वही गांधीवादी भी भूल करते हैं। गोडसे ने भूल की थी कि गोली मार देंगे, इस आदमी का शरीर मर जाएगा, तो यह गांधी मर जाएगा। गांधीवादी भी समझते हैं कि शरीर गिर गया गांधी का तो गांधी मर गए। अब उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए।

यह बात ठीक है छोटे-मोटे लोगों के बाबत कि वे मर जाएं तो हमें उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिए, क्योंकि मरे हुए आदमी की क्या आलोचना करनी है! एक बुरा आदमी भी गांव में मर जाता है तो भी उसकी कब्र पर लोग कहते हैं कि बड़ा अच्छा आदमी था। छोटे आदमियों के साथ यह ठीक है कि उन बेचारों के पास क्या है जो उनके मरने के बाद बच रहेगा!

लेकिन गांधी जैसे महापुरुषों के साथ यह अन्याय है कि हम समझें कि वे मर गए। मैं गांधी को, उनके प्रभाव को अभी जिंदा मानता हूं और उनके साथ एक जिंदा आदमी का व्यवहार करना चाहता हूं, एक मरे आदमी का नहीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि वे मर गए, अब उनकी बात नहीं करनी चाहिए।

शायद आपने सुना हो, कि सुकरात की जिस दिन मौत हुई, उसे जहर दिया गया। जहर देने के पहले उसके मित्र उसके पास गए और उसके एक शिष्य क्रेटो ने उससे पूछा कि सांझ आपको जहर दे दिया जाएगा तो आप हमें बता दें कि हम दफनाएंगे किस तरह आपको? किस विधि से, किस मार्ग से? गड़ाएं, जलाएं, क्या करें? आप रास्ता बता दें, वैसा हम करें।

पता है? सुकरात हंसने लगा और उसने क्रेटो से कहा, पागल, जो मेरे दुश्मन समझते हैं कि मुझे जहर देकर मार डालेंगे वही तुम समझते हो कि शरीर के मरने से मैं मर जाऊंगा और तुम मेरे दफनाने का विचार करने लगे हो!

मैं तुम्हें कहता हूं क्रेटो, कि तुम सब मर जाओगे, तुम सब दफना दिए जाओगे, तब भी मैं जिंदा रहूंगा!

आज ढाई हजार साल हो गए, सुकरात अभी जिंदा है। क्रेटो का नाम सिर्फ हमें इसीलिए याद है कि सुकरात ने वह नाम लिया था। क्रेटो कभी का मर चुका। वे साथी मर चुके, जिन्होंने सोचा होगा हम सुकरात को दफना रहे हैं, लेकिन सुकरात जिंदा है।

महान व्यक्ति का एक ही अर्थ होता है कि वह शरीर के पार उठ गया। अब शरीर के मिटने से उसके मिटने की कोई संभावना नहीं है।

मैं गांधी को एक जिंदा आदमी मान कर व्यवहार करना चाहता हूं। और मुझे लगता है कि अभी गांधी को गांधीवादी दफनाने की बात न करें तो बहुत अच्छा है। इतने जल्दी मरा हुआ मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन वे भयभीत हैं कि कोई आलोचना न की जाए। और मैंने आलोचना क्या की है? मेरी आलोचना गांधी के विरोध में नहीं है, लेकिन गांधीवाद के विरोध में है। और मेरी दृष्टि है कि सच बात तो यह है कि गांधीवाद जैसी कोई चीज गांधी की कल्पना में थी ही नहीं। गांधी नहीं मानते थे कि उनका कोई वाद है। मानते थे कि जो उनकी

अंतर्दृष्टि को ठीक मालूम पड़ता है, वह प्रयोग करते चले जाते हैं। उनका कोई सिस्टम, कोई रेखाबद्ध वाद नहीं है, लेकिन गांधी के पीछे जो गिरोह इकट्ठा हुआ, उसने गांधीवाद खड़ा कर रखा है।

दुनिया में हमेशा अनुयायी--पंथ, संप्रदाय और वाद खड़े करते हैं और जितने पंथ, संप्रदाय और वाद मजबूत हो जाते हैं, उतना ही हम और हमारे महापुरुषों के बीच एक पत्थर की दीवाल खड़ी हो जाती है, जिसको पार करना मुश्किल हो जाता है।

गांधी का कोई वाद नहीं है इन अर्थों में, लेकिन गांधी ने जीवन भर जो किया है, जो सोचा है, जो विचारा है, वह है, और उस पर हमें बहुत स्पष्ट निर्णय लेना जरूरी है, क्योंकि उसी निर्णय के आधार पर इस देश के भविष्य को बनाने का हम विचार करेंगे।

गांधीवादी कहते हैं कि उस पर विचार नहीं करना है। जो उन्होंने कहा है उसे वैसा ही मान लेना है। यह बात इतनी अंधी और खतरनाक है कि अगर इन सारी बातों को इसी तरह मान लिया गया तो गांधी की आत्मा भी आकाश में कहीं होगी तो रोएगी, क्योंकि गांधी खुद अपनी जिंदगी में हर वर्ष अपनी पिछली भूलों को स्वीकार करते रहे और मानते रहे कि जो भूलें हो गई हैं उन्हें छोड़ देना है। अगर गांधी जिंदा होते तो इन बीस वर्षों में उन्होंने बहुत सी भूलें स्वीकार की होतीं। लेकिन गांधीवादी कहता है कि अब हमें कोई भूल पर ध्यान नहीं देना है। जो कहा गया है उसे चुपचाप मान लेना है।

यह अंधापन बहुत महंगा साबित होगा। बुद्ध और महावीर को अंधेपन से मान लेने से उतना नुकसान नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने व्यक्तिगत मनुष्य की आत्मोत्कर्ष की बात की है। हिंदुस्तान में एक पहले धार्मिक व्यक्ति थे गांधी जिन्होंने सामाजिक-उत्कर्ष का भी विचार किया है। बुद्ध और महावीर को मान लेने से एक-एक व्यक्ति भटक सकता है, गांधी को अंधेपन से मान लेने से पूरे समाज का भविष्य भटक सकता है, पूरा देश भटक सकता है। इसलिए गांधी पर विचार कर लेना बहुत जरूरी है।

गांधी एक अर्थों में अनूठे हैं भारत के इतिहास में। भारत के धार्मिक व्यक्ति ने कभी भी समाज, राजनीति और जीवन के संबंध में सीधी कोई रुचि नहीं ली है। भारत का महापुरुष सदा से पलायनवादी रहा है, उसने पीठ कर ली है समाज की तरफ। उसने मोक्ष की खोज की है, समाधि की खोज की है, सत्य की खोज की है--लेकिन समाज और इस जीवन का भी कोई मूल्य है यह उसने कभी स्वीकार नहीं किया।

गांधी पहले हिम्मतवर आदमी थे जिन्होंने धार्मिक होते हुए समाज की तरफ से मुंह नहीं मोड़ा। वे समाज के बीच में खड़े रहे और जिंदगी के साथ और जिंदगी को उठाने की उन्होंने कोशिश की। यह पहला धार्मिक आदमी था जो जीवन-विरोधी नहीं था, जिसका जीवन के प्रति स्वीकार का भाव था। स्वाभाविक, पहले आदमी से बड़ी भूलें होनी संभव है। पायोनियर हमेशा भूलें करता है। वह पहले आदमी थे, एक नई दिशा में प्रयोग कर रहे थे और अगर हम उनको अंधे होकर माने लेंगे तो हम बहुत खतरनाक रास्तों पर जा सकते हैं।

जो बातें मैंने आलोचना की हैं उनमें से कुछ एक-दो सूत्रों पर आज और फिर आने वाले दिनों में बात करूंगा।

मेरी दृष्टि में भारत की बहुत प्राचीन समय से कुछ बुनियादी भूलों में एक भूल यह रही है कि हमने दरिद्रता को एक तरह की महिमा, एक तरह का गौरव, एक तरह का ग्लोरीफिकेशन किया है। हम दरिद्रता को एक तरह का सम्मान देते रहे हैं। हमने एक फिलासफी विकसित की है जिसको फिलासफी ऑफ पावर्टी कहा जा सकता है, दरिद्रता का एक दर्शन विकसित किया है। हमने यह स्वीकार कर रखा है पांच हजार वर्षों से कि दरिद्र होना भी कोई बड़े गौरव की बात है। और उसके साथ ही धन-संपदा, समृद्धि इनकी एक निंदा, इनका

एक बहिष्कार भी हमारे मन में रहा है। परिग्रह का एक विरोध, अपरिग्रह की एक स्थापना। समृद्धि-विस्तार इसका विरोध, संकोच, दरिद्रता, इसकी स्वीकृति हमारे खून में प्रविष्ट हो गई है।

मैं कहना चाहता हूं कि यह इस विचार का परिणाम है कि भारत पांच हजार वर्षों की लंबी सयता के बाद भी दरिद्र है और समृद्ध नहीं हो पाया है। इस विचार का यह अंतिम परिणाम है।

गांधी ने जाने-अनजाने पुनः इसी दरिद्रता के दर्शन को फिर से सहारा दे दिया है। गांधी ने फिर दरिद्र को दरिद्रनारायण कह दिया है। दरिद्र नारायण नहीं है, दरिद्रता पाप है, दरिद्रता रोग है। उससे घृणा करनी है, उसे नष्ट करना है। दरिद्र को अगर हम पवित्र और भगवान और इस तरह की बातें करेंगे और दरिद्रता को महिमावंत करेंगे तो हम दरिद्रता को नष्ट नहीं कर सकते हैं, हम दरिद्रता को बनाए ही रखेंगे। हम दरिद्रता पर दया कर सकेंगे, सेवा कर सकेंगे दरिद्र की, लेकिन दरिद्र को मिटा नहीं सकेंगे। दरिद्र की सेवा की जरूरत नहीं है, दरिद्र के गुणगान की जरूरत नहीं है, दरिद्र को दया की जरूरत नहीं है, दरिद्र को पृथ्वी से समाप्त करना है, दरिद्र को नष्ट करना है, दरिद्र को नहीं बचने देना है। दरिद्रता के साथ एक महामारी का व्यवहार करना है। प्लेग और हैजा और मलेरिया के साथ हम जो व्यवहार करते हैं वह दरिद्रता के साथ व्यवहार करना है। लेकिन हिंदुस्तान की जो परंपरा है दरिद्रता की और त्याग की, गांधी के मन पर उसका प्रभाव है, सारे मुल्क के मन पर उसका प्रभाव है। हमने जाने-अनजाने हमारे अचेतन में, अनकांशस तक यह बात प्रविष्ट हो गई है कि दरिद्रता को कुछ गौरव है।

यह बहुत ही खतरनाक दृष्टि है, यह बहुत ही आत्मघाती दृष्टि है; क्योंकि जब हम दरिद्रता को इस भांति स्वीकार करते हैं, सम्मान देते हैं और दरिद्रता में संतोष कर लेने को एक धार्मिक गुण मानते हैं, तो फिर समाज समृद्ध कैसे होगा? समाज संपत्ति पैदा कैसे करेगा?

हम भी इसी पृथ्वी पर हैं, दूसरे देश भी इसी पृथ्वी पर हैं। हम पीछे इतिहास में उनसे कहीं ज्यादा समृद्ध थे जो आज हमें भीख दे रहे हैं। हम कहीं ज्यादा खुशहाल थे, आज हमें भीख मांगनी पड़ रही है। और शायद आगे भी हमें भीख ही मांगती रहनी पड़ेगी। अगर हमने अपने आज तक के जीवन को जीने की फिलासफी और व्यवस्था को रूपांतरित नहीं किया तो हम आगे भी यही करते चले जाएंगे, जो हमने पीछे किया है।

संपत्ति आसमान से पैदा नहीं होती है, संपत्ति श्रम से पैदा होती है। श्रम आकस्मिक नहीं होता, श्रम विचार से जन्म लेता है और अगर हमारे विचार में संपदा का विरोध है तो हम न श्रम करेंगे, न हम संपदा पैदा करेंगे।

यह जो भारत एकदम श्रम-शून्य मालूम पड़ता है--सुस्त, काहिल, अलाल मालूम पड़ता है, लेजी मालूम पड़ता है, यह लेजीनेस, यह सुस्ती, यह काम न करने की प्रवृत्ति, यह प्रवृत्ति उस विचार से पैदा होती है जो दरिद्रता में संतोष मानने की शिक्षा देता है। और यह भी ध्यान रहे कि बुद्ध और महावीर जैसे लोग राजघरों को छोड़ कर दरिद्र हो गए।

हिंदुस्तान में जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के थे। बुद्ध राजा के लड़के थे, राम और कृष्ण राजाओं के लड़के थे। हिंदुस्तान के ये सारे तीर्थंकर और अवतार राजपुत्र थे। ये सारे तीर्थंकर और बुद्ध राजमहलों को छोड़ कर दरिद्र हो गए और इनके दरिद्र होने से हमारी दरिद्रता के दर्शन को और सहारा मिला। लेकिन एक बात ध्यान रहे, अमीर आदमी का दरिद्र होना एक बात ही दूसरी है और दरिद्र का दरिद्रता में संतुष्ट हो जाना बात दूसरी है। इन दोनों बातों में बुनियादी फर्क है।

अमीर आदमी जब दरिद्र होता है तब वह अमीरी को जान कर दरिद्र होता है। अमीरी व्यर्थ हो गई, इसलिए दरिद्र होता है। उसकी दरिद्रता और उस आदमी की दरिद्रता जिसने कभी अमीरी नहीं जानी, भरपेट भोजन नहीं जाना, कपड़े नहीं जाने, इन दोनों की दरिद्रता में कोई भी संबंध नहीं है।

सच बात तो यह है कि अमीर जब दरिद्र होता है तो दरिद्रता भी एक आनंद मालूम होती है, क्योंकि दरिद्रता भी एक स्वतंत्रता मालूम होती है। गरीब आदमी जब दरिद्रता में संतोष कर लेता है तो वह संतोष सिर्फ दुख को छिपाने का और सांत्वना का एक उपाय होता है।

हिंदुस्तान के सारे बड़े शिक्षक राजघरानों से आए। वे राजघरानों से ऊब गए थे। वे संपत्ति से ऊब गए थे, परेशान हो गए थे। संपत्ति की अपनी परेशानियां हैं, दरिद्रता की अपनी परेशानी है, भिखमंगे की अपनी परेशानी है, राजघर की अपनी परेशानी है।

वे अपनी परेशानियों से पीड़ित हो गए थे, वे धन से घिरे हुए परेशान हो गए थे, वे स्त्रियां और सुख के बीच ऊब गए थे, उन्हें बदलाहट चाहिए थी। उन्होंने वह सब छोड़ कर सड़क पर नग्न खड़े हो गए। उन्हें उस नग्नता में बहुत स्वतंत्रता मालूम हुई होगी, उन्हें उस नग्नता में एक अदभुत मुक्ति मालूम हुई होगी।

वह मालूम हो सकती है, लेकिन वह हमेशा तभी मालूम होती है, जब कोई समृद्धि को लात मार कर दरिद्र बनता है। वह दरिद्रता समृद्धि के आगे का कदम है, समृद्धि के पहले का कदम नहीं है। वह दरिद्रता भी एक अर्थ में समृद्धि की लक्.जरी है, वह दरिद्रता भी समृद्धि का अंतिम विलास है। वह उसको भी लात मारने का मजा है। वह सुख गरीब आदमी नहीं उठा सकता।

लेकिन हिंदुस्तान के बड़े शिक्षक जब दरिद्र हुए, उन्होंने धन छोड़ा, तो दरिद्र को लगा कि जिस चीज को छोड़ ही देना पड़ता है उसे पाने की जरूरत क्या है। और उसे पता नहीं कि वह दरिद्र महावीर की दरिद्रता का मजा नहीं लूट पाएगा। महावीर की दरिद्रता बुनियादी रूप से क्वालिटेटिवली, गुणात्मक रूप से भिन्न है।

मैं अमृतसर था। एक संन्यासी मित्र एक घटना सुना रहे थे, वे घटना सुना रहे थे कि अमृतसर से एक ट्रेन जा रही थी हरिद्वार की तरफ। मेला है हरिद्वार में। हजारों लोग ट्रेन में भर रहे हैं। हरेक आदमी अमृतसर की स्टेशन पर यही चिल्ला रहा है कि चलो गाड़ी के अंदर भीतर बैठो, जल्दी भीतर चले जाओ, सामान रखो।

एक आदमी के पास भीड़ इकट्ठी है और वह यह कह रहा है कि मैं गाड़ी में बैठूं तो जरूर, लेकिन अमृतसर पर बैठता हूं, हरिद्वार में उतरना पड़ेगा न? जब उतरना ही पड़ेगा तो गाड़ी में बैठने की जरूरत क्या है? वह आदमी यह दलील दे रहा है कि जब उतरना ही पड़ेगा गाड़ी से, तो फिर गाड़ी में बैठे ही क्यों? जब उतरना ही है तो उतरे ही रहें।

मित्रों ने जबरदस्ती धक्के दिए और कहा, यह तर्क समझाने का समय नहीं है। अंदर बैठ जाओ, फिर तुम्हें समझाएंगे। गाड़ी जाने के करीब है। जबरदस्ती उस आदमी को भीतर ले गए, लेकिन वह आदमी यही चिल्लाता रहा कि जब उतरना ही है तो बैठने की जरूरत क्या है? फिर हरिद्वार आ गया, फिर सारी गाड़ी में दूसरी आवाज आने लगी कि उतरो, सामान उतारो, नीचे उतरो, जल्दी उतरो, कहीं गाड़ी न छूट जाए। वह मित्र उसको फिर समझा रहे हैं कि नीचे उतरो। वह कहता है कि जब चढ़ ही गए तो अब उतरना क्या? पहले ही मैंने कहा था कि चढ़ाओ मत अगर उतरना हो। अब जब चढ़ ही गए तो चढ़ ही गए, अब उतरना क्या? उसे जबरदस्ती नीचे उतारा वह व्यक्ति तर्क तो ठीक दे रहा है, यह बात सच है कि अमृतसर से जाना है हरिद्वार, तो गाड़ी पर चढ़ना भी होगा और उतरना भी होगा। और जो सोचता है कि जब उतरना ही है कभी जाकर तो चढ़ना ही क्या? तो वह फिर अमृतसर पर ही रह जाएगा हरिद्वार नहीं पहुंच सकता। और अगर हरिद्वार पर

पहुंच कर उसने यह जिद्द की कि जब चढ़ ही गए तो अब उतरना ही क्या, तब भी वह हरिद्वार नहीं पहुंच पाएगा। दोनों हालत में हरिद्वार चूक जाएगा।

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि समृद्धि की एक यात्रा है जीवन में। निश्चित ही एक दिन समृद्धि छोड़ देने जैसी हो जाती है, लेकिन वह समृद्धि की यात्रा से ही होती है। और दरिद्र आदमी अगर यह सोचे कि जब महावीर और बुद्ध जैसे लोग छोड़ कर आ रहे हैं तो फिर मुझे परेशान होने की क्या जरूरत है। तो वह ध्यान रखे, उसकी दरिद्रता अमृतसर की दरिद्रता होगी, हरिद्वार की नहीं।

हिंदुस्तान के इन धनी शिक्षकों के कारण यह बात बड़ी अजीब और पैराडाक्सिकल। धनी शिक्षकों के कारण हिंदुस्तान दरिद्रता के दर्शन को विकसित कर लिया और दरिद्र ने अपनी दरिद्रता स्वीकार कर ली। जब उसने देखा कि राजमहलों को लोग छोड़ कर आ रहे हैं, तो फिर ठीक है, मुझे और राजमहलों की तरफ जाने का सवाल क्या है। और जब एक बार दरिद्रता स्वीकृत हो जाती है तो संपत्ति को उत्पादन करने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। यह देश इसलिए गरीब है।

काउंट कैसरलिंग हिंदुस्तान से लौटा, तो उसने अपनी डायरी में एक वाक्य लिखा। मैं पढ़ रहा था तो बहुत हैरान हुआ। मुझे लगा कि कोई छापेखाने की भूल होनी चाहिए। उसने एक वाक्य लिखा कि मैं हिंदुस्तान गया, वहां से लौटा हूं, तो एक अजीब नतीजा लेकर आया हूं, वह नतीजा यह कि इंडिया इ.ज ए रिच लैंड, व्हेयर पुअर पिपुल लिव। कि हिंदुस्तान एक धनी देश है, जहां गरीब लोग रहते हैं।

मैं बहुत हैरान हुआ कि यह वाक्य कैसा हुआ? अगर धनी देश है तो गरीब लोग कैसे रहते होंगे? और गरीब लोग रहते हैं तो धनी देश कैसे है? कोई छापे की भूल है शायद, लेकिन आगे पढ़ने पर मुझे पता चला कि वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि देश तो बहुत धनी है, लेकिन रहने वाले मूढ़ हैं, वे गरीब बने हुए हैं। देश तो बहुत धन पैदा कर सकता है, लेकिन रहने वालों की जीवन-दृष्टि दरिद्र रहने की है, इसलिए वे संपत्ति पैदा नहीं कर पाते।

हिंदुस्तान की दरिद्रता नहीं मिटेगी, जब तक हम संपत्ति के प्रति भी एक स्वस्थ रुख लेने को राजी न हों। हमारा संपत्ति के प्रति अत्यंत अस्वस्थ, रुग्ण, अनहेल्दी रुख है। तो एक तरफ तो यह है कि हम संपत्ति का विरोध करते हैं और दूसरी तरफ भीतर संपत्ति की लालसा भी करते हैं, क्योंकि दरिद्रता के भीतर यह असंभव है कि आप सच में संतुष्ट हो जाएं। कैसे संतुष्ट हो सकते हैं? जबरदस्ती थोप कर अपने ऊपर संतोष के कपड़े पहन लेंगे, लेकिन संतुष्ट हो कैसे सकते हैं? भीतर असंतोष की आग जलती ही रहेगी। इसलिए ऊपर से कहेंगे, कुछ मतलब नहीं है हमें, हम तो संतुष्ट हैं और भीतर लालसा, ईर्ष्या और लोभ वे सब काम करते रहेंगे।

मैं एक फकीर के पास, एक संन्यासी के पास यहीं बंबई में कोई पांच-सात साल पहले मिलने गया था। एक मुनि हैं। बहुत उनके शिष्य हैं। बहुत लोग वहां इकट्ठे हो गए, मैं मिलने आया हूं, कुछ बात होगी। उन मुनि ने मुझे एक गीत सुनाया। गुजराती में वह गीत उन्होंने बनाया था। उसका अर्थ मुझे समझाया। सुनने वाले बैठ कर सिर हिलाने लगे और कहने लगे, वाह, वाह! मैं बहुत हैरान हुआ। क्योंकि उस गीत का मतलब यह था कि वह संन्यासी उस गीत में यह कहते हैं कि तुम अपने राजमहल में खुश हो, रहो, हम अपनी धूल में भी आनंद में हैं। तुम स्वर्ण के सिंहासन पर बैठे हो, बैठो, हमें तुम्हारे स्वर्ण के सिंहासन से कोई भी मतलब नहीं, हम लात मारते हैं स्वर्ण के सिंहासन पर, हम तो अपनी धूल में ही मस्त हैं, हम तो फकीर हैं। इस तरह का भाव था।

पूरा गीत कह कर वे मुझसे पूछने लगे, कैसा लगा?

मैंने कहा कि मैं बहुत हैरान हुआ। मैं इसलिए हैरान हुआ कि अगर आपको राजमहलों से कोई मतलब नहीं, अगर आपको स्वर्ण-सिंहासनों से कोई मतलब नहीं, तो उनकी याद क्यों आती हैं? उनके गीत क्यों लिखते हैं? मैंने किसी सम्राट को कभी ऐसा गीत लिखते नहीं देखा, नहीं सुना कि उसने कहा हो कि हम अपने स्वर्ण-सिंहासन पर ही ठीक हैं, हमें तुम्हारी धूल से कुछ भी नहीं लेना, तुम रहो मजे में, हम उपेक्षा करते हैं, हमें कोई फिक्र नहीं। कोई सम्राट ऐसा नहीं कहता, लेकिन ये फकीर निरंतर यह बात कहते हैं कि हमें स्वर्ण-सिंहासन से कोई मतलब नहीं।

मतलब नहीं है तो यह गीत क्या बताते हैं? ये मतलब बताते हैं, मतलब बहुत गहरा है और भीतरी है। स्वर्ण-सिंहासन मन को खींचता है। संतोष से मन को रोका हुआ है। संतोष से जो मन को रोकता है और स्वर्ण-सिंहासन की भीतर लालसा है, वह स्वर्ण-सिंहासन को गाली देना शुरू कर देगा, ताकि संतोष करने में सुविधा मिले।

हिंदुस्तान, पूरा का पूरा हिंदुस्तान भौतिकवाद को गालियां देता है। वह आदमी भौतिकवादी है, पश्चिम मैटीरियलिस्ट है। जितना तुम भौतिकवाद को गालियां देते हो, उतना तुम खबर लाते हो कि तुम्हारे प्राणों में भौतिकवाद की आकांक्षा है।

मन के नियम बहुत अजीब हैं।

एक आदमी अगर अपनी स्त्री को छोड़ कर जंगल में भाग जाए और संन्यासी हो जाए, और उसका मन स्त्री से मुक्त न हुआ हो तो वह घूम-फिर कर यही कहता रहेगाः कामिनी-कांचन से सावधान, स्त्री से बचना, स्त्री नरक का द्वार है! वह किसी और से नहीं कह रहा है, जोर-जोर से अपने से कह रहा है। वह भीतर स्त्री खींच रही है, निमंत्रण दे रही है, वह कह रही, आओ। स्त्री भीतर रूप बन रही है, स्त्री भीतर प्राणों को कस रही है, वह उससे बचने के लिए कह रहा है, कामिनी-कांचन पाप है, स्त्री नरक का द्वार है, स्त्री से सावधान! दूसरों को समझा रहा है। दूसरों के बहाने अपनी ही वाणी को जोर से सुनने की कोशिश कर रहा है, ताकि भीतर हिम्मत बनी रहे कि स्त्री नरक का द्वार है, बचो, सावधान रहो!

जो आदमी वासना से मुक्त हो जाएगा उसे स्त्री नरक का द्वार कैसे दिखाई पड़ेगी? जिस आदमी का मन सेक्स से मुक्त हो गया हो, उस आदमी को स्त्री और पुरुष में भेद दिखाई पड़ेगा?

बुद्ध एक जंगल में बैठे थे एक पहाड़ के पास। कुछ लोग शहर से आए थे युवक एक वेश्या को लेकर जंगल में पिकनिक के लिए, आमोद-प्रमोद के लिए। वे तो सब नशे में चूर हो गए, वेश्या ने देखा कि वे बेहोश हो गए हैं नशे में, वह भाग खड़ी हुई। उसके सारे वस्त्र उन्होंने छीन रखे थे। वह नग्न थी। जब वह भाग गई उन्हें कुछ होश आया, तो उन्होंने कहा, वह वेश्या भाग गई, तो उसे खोजने जंगल में निकले।

रास्ते पर बुद्ध को बैठे देखा तो उनके पास जाकर कहा कि भंते, यही एक रास्ता है, जरूर यहां से एक स्त्री को आपने भागते देखा होगा। स्त्री नग्न थी, वेश्या थी, आपको खयाल है वह कहां गई? यहीं से रास्ते बंट जाते हैं। हम उसे खोजने कहां जाएं?

बुद्ध ने कहा, कोई निकला जरूर था, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह पहचानना बहुत मुश्किल है, कोई निकला जरूर था, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह मुझे याद नहीं। क्योंकि जब से मेरे भीतर से वासना उठ गई, तब से मेरे भीतर का पुरुष मर गया, जब से मेरा पुरुष मर गया, तब से बाहर की स्त्री उस तरह नहीं दिखाई पड़ती, जैसे पहले दिखाई पड़ती थी।

यह बुद्ध जैसा आदमी स्त्री को नरक का द्वार कैसे कहेगा? नहीं, जो स्त्री को नरक का द्वार कह रहा है, उसके भीतर स्त्री का आकर्षण शेष है। जो संपत्ति को गाली दे रहा है, उसके भीतर संपत्ति का आकर्षण शेष है। जो कह रहा है कि सोना मिट्टी है, वह अपने को समझा रहा है, सोना अभी पूरी तरह सोना है और प्राणों को खींच रहा है।

भारत ने एक तरफ दरिद्रता की बातें सीख लीं और दूसरी तरफ लोभ, और दूसरी तरफ ईर्ष्या, और दूसरी तरफ धन की वासना तीव्र से तीव्र होती चली गई। यह एक अदभुत घटना घट गई। ऊपर से हम दरिद्र हैं। दरिद्रता में संतोष की बात भी करते हैं, और भीतर हमसे ज्यादा ग्रीडी, हमसे ज्यादा लोभी जमीन पर आदमी खोजने मुश्किल हैं।

मैं एक घर में ठहरता था। उस घर के ऊपर कुछ पश्चिम के लोग--दो परिवार रहते थे। उस घर में जब भी मैं ठहरा तो उस घर के लोगों ने मुझे कहा कि ये पश्चिम के लोग बड़े भौतिकवादी हैं। सिवाय खाने-पीने के, सिवाय नाच-गाने के इन्हें कुछ भी मतलब नहीं, एकदम भौतिकवादी हैं। जब भी मैं गया, मुझे वे यही कहते थे। रात बारह-बारह बजे तक नाचते रहते हैं। बस, खाना और पीना और नाचना--यही जिंदगी है। फिर एक बार उनके घर में ठहरा। ऊपर शांति थी, तो मैंने पूछा कि क्या वे लोग चले गए? घर की गृहिणी ने कहा, हां, वे लोग चले गए। पर बड़े अजीब लोग थे। अपना सारा सामान बांट गए। जो नौकरानी बर्तन मलती थी, स्टील के बर्तन थे सब--वह स्त्री मुझसे कहने लगी--असली स्टील के बर्तन थे, वह सब नौकरानी को ही दे गए। रेडियो था, रेडियोग्राम था, वह सब बांट गए। बड़े अजीब लोग थे।

मैंने उस स्त्री को पूछा कि तू तो निरंतर कहती थी कि ये बड़े भौतिकवादी लोग हैं, नाचते हैं, गाते हैं, खाते हैं, पीते हैं और कुछ नहीं करते हैं, बहुत मैटीरियलिस्ट हैं। लेकिन ये सारी चीजें बांट कर चले गए! तू भी इस तरह सारी चीजें बांट सकती है?

उसने कहाः मैं? कैसे बांट सकती हूं! मेरे मन में तो यही लगा रहा कि कुछ हमें भी दे जाएं तो अच्छा है।

मैंने पूछाः वे तुझे कुछ दे गए?

उसने कहा कि मुझे दे नहीं गए क्योंकि उन लोगों ने सोचा होगा, इनके पास तो सब है, शायद ये लेने से इंकार कर दें।

तो तेरे पास कोई निशानी नहीं?

तो उसने कहाः एक निशानी है, वे एक रस्सी बंधी हुई छोड़ गए थे, वह मैं खोल लाई हूं। कपड़े टांगने की रस्सी थी, लेकिन रस्सी प्लास्टिक की है और बहुत अच्छी है, वह भर मैं खोल लाई हूं, वह भर निशानी रह गई है। वे चले गए तो मैं रस्सी खोल लाई हूं।

यह स्त्री रोज मंदिर जाती है, यह रोज सुबह से उठ कर भक्तांबर पढ़ती है, यह बड़ी धार्मिक है, यह उपवास भी करती है और यह सोचती है कि मैं भौतिकवादी नहीं हूं और वे लोग जो नाचते थे और गीत गाते थे, वे इसे भौतिकवादी मालूम पड़ते थे।

वे इसे भौतिकवादी क्यों मालूम पड़ते थे?

इसके भीतर भी नाचना, गीत गाना और संपत्ति का मोह है। वह इसे खींचता है कि काश, यह सब उसके पास भी होता, यह सब वह भी करती। लेकिन नहीं-नहीं, संतोष रखना है। इन सब बातों में नहीं पड़ना है, ये बातें बहुत बुरी हैं। इसलिए गाली देती है, निंदा करती है, कंडेम करती है, अपने मन को समझा लेती है और पीछे से एक रस्सी भी खोल कर ले आती है। अध्यात्मवादी हैं हम!

एक अमरीकन यात्री की मैं किताब पढ़ता था। वह दिल्ली के स्टेशन पर उतरा। स्टेशन पर उतरा है और एक सरदार ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा है कि मैं आपका भविष्य बताऊंगा।

उसने कहा, लेकिन मुझे भविष्य पूछना नहीं है। हम अपना भविष्य खुद बनाते हैं। भविष्य कहीं है यह हम मानते नहीं।

पर सरदार जी ने तो बताना ही शुरू कर दिया। वह तो हाथ जोर से पकड़े हुए है। और वह आदमी बेचारा शिष्टाचार में सिर्फ हाथ पकड़ाए हुए है। छोड़ नहीं रहा, ठीक है। वह कह रहा है कि मुझे पूछना नहीं है, मुझे कुछ जानना नहीं है, लेकिन सरदार जी तो बताना शुरू कर दिए हैं कि यह होगा, यह होगा, यह होगा भविष्य में।

फिर उस आदमी ने कहाः मुझे जाने दीजिए।

तो सरदार जी ने कहाः मेरी फीस? मेरे दो रुपये फीस के हो गए।

उस आदमी ने कहा, ठीक है। हालांकि मैं मना कर रहा था और आपने जबरदस्ती बताया है, लेकिन फिर भी आपने इतना श्रम किया, ये दो रुपये आप ले लें। लेकिन दो रुपये लेकर सरदार जी ने हाथ छोड़ा नहीं। वह और बताने लगे हैं। उसने कहा कि देखिए, अब हाथ छोड़ दीजिए, क्योंकि फिर आपकी फीस हो जाएगी। लेकिन सरदार जी बताए चले जा रहे हैं। उसने कहा कि मुझे जाना है। जबरदस्ती हाथ छुड़ाया, तो सरदार जी ने कहा कि दो रुपये मेरी फीस और हो गई? उस आदमी ने कहा कि अब मैं दो रुपये आपको नहीं दूंगा। यह तो जबरदस्ती की बात है। तो सरदार जी ने क्या कहा? सरदार जी ने कहा, यू मैटीरियलिस्ट--दो रुपये के लिए मरे जाते हो, भौतिकवादी हो, दो रुपये में जान निकली जाती है!

उस आदमी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं तो दंग रह गया। भौतिकवादी कौन था? मैं था भौतिकवादी?

सारी पृथ्वी पर हमसे ज्यादा भौतिकवादी लोग खोजने मुश्किल हैं, क्योंकि दरिद्र आदमी कभी भी भौतिकवाद से ऊपर नहीं उठ सकता है। दरिद्र आदमी कभी भी भौतिकवाद से ऊपर नहीं उठ सकता है, समृद्ध आदमी ही भौतिकवाद से उठ सकता है ऊपर, क्योंकि समृद्धि को पाकर उसे पता चलता है कुछ भी नहीं है समृद्धि में। धन पाकर दिखाई पड़ता है धन में कुछ भी नहीं है। और जिस दिन धन निस्सार दिखाई पड़ता है, असार दिखाई पड़ता है, उस दिन भौतिकवाद के आदमी ऊपर उठता है।

संपत्ति का एक ही बड़े से बड़ा मूल्य है कि संपत्ति से आदमी संपत्ति से मुक्त हो जाता है। धन का एक ही आध्यात्मिक मूल्य है कि धन के उपलब्ध होने से आदमी धन से मुक्त हो सकता है। निर्धन आदमी धन से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। धनी आदमी धन से मुक्त हो सकता है। यह देश दरिद्रता को स्वीकार करने के कारण धनी नहीं हो पाया। धनी नहीं हो पाने के कारण धन से मुक्त नहीं हो पाया; लेकिन हम थोथी बातें अपने ऊपर थोपे चले जाते हैं और बिल्कुल ही जीवन और मन के विपरीत काम किए चले जाते हैं। ऊपर से कुछ, भीतर से कुछ हुए चले जाते हैं। सारा व्यक्तित्व पाखंड हो गया है, सारा व्यक्तित्व धोखा हो गया है। और मैंने इसलिए कहा कि गांधी की दरिद्रता की शिक्षा फिर खतरनाक है, फिर वह हमारी पुरानी शिक्षा का ही फल है। फिर वह पुरानी शिक्षा का फिर से पुनरुक्तिकरण है।

नहीं, गांधी बहुत प्यारे आदमी हैं, गांधी बहुत अदभुत आदमी हैं; लेकिन उनके दरिद्रता के दर्शन को अगर भारत ने स्वीकार किया तो भारत कभी समृद्ध नहीं हो सकेगा और समृद्ध नहीं हो सकेगा तो भारत कभी धार्मिक भी नहीं हो सकता है।

मेरी दृष्टि में धार्मिक होने के लिए देश का समृद्ध होना अत्यंत आवश्यक है। दरिद्र आदमी कैसे धार्मिक हो सकता है? जिसकी रोटी की जरूरतें पूरी नहीं होतीं वह परमात्मा की जरूरत पैदा ही कैसे कर सकता है? परमात्मा मनुष्य की अंतिम जरूरत है, लास्ट नेसेसिटी है। जब जीवन की सारी प्राथमिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तो अंतिम जरूरत का खयाल आता है और हम इस देश में गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षाएं दिए चले जाते हैं। गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षा देना अन्याय है और गरीब आदमी अगर परमात्मा की बातें सुनने भी आता है और परमात्मा के मंदिर में प्रार्थना भी करने जाता है, तो आप यह मत सोचना कि वह परमात्मा के पास जा रहा है। जब वह परमात्मा के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा होता है, तब भी उसके मन में यही प्रार्थना होती है कि कल मुझे रोटी मिल सकेगी न? मेरा बच्चा बीमार है, वह ठीक हो सकेगा न? मेरा काम छूट गया है, मुझे काम मिल सकेगा न? वह परमात्मा के पास भी रोटी-रोजी के लिए ही पहुंचता है, परमात्मा के लिए नहीं पहुंच सकता है। वह परमात्मा के पास भी जाता है तो बुनियादी कारण उसका भौतिक होता है, आध्यात्मिक नहीं हो सकता है। आध्यात्मिक जीवन की जरूरत, जीवन की सामान्य स्थिति, सुविधा उपलब्ध होने पर ही पैदा होती है।

जब भारत थोड़ा समृद्ध था तो भारत धार्मिक था। इधर दो हजार वर्षों से वह निरंतर दरिद्र से दरिद्र होता चला गया है। आज वह दरिद्रता के गड्ढे में खड़ा है। वह धार्मिक नहीं हो सकता है। उसके धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है। इस बात की संभावना है कि आने वाले पचास वर्षों में अमरीका धार्मिक हो सके, रूस धार्मिक हो सके, भारत के धार्मिक होने की कोई संभावना नहीं। अमेरिका को धार्मिक होना पड़ेगा, रूस को धार्मिक होना पड़ेगा, क्योंकि जैसे ही जिंदगी की सामान्य जरूरतें पूरी हो जाती हैं, जैसे ही शरीर की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, पहली बार आदमी की आंखें उस तरफ उठती हैं जो शरीर के ऊपर है। शरीर की झंझट, जैसे ही छुट्टी हो जाती है शरीर से आदमी की, आदमी आत्मा की तरफ उन्मुख होता है।

शायद आपने कभी खयाल भी न किया हो। पैर में एक छोटा सा कांटा गड़ जाए, तो सारे प्राण उसी कांटे के आस-पास घूमने लगते हैं। सिर में थोड़ा सा दर्द हो, तो आत्मा वगैरह सब भूल जाती है, बस सिर का दर्द ही रह जाता है। जहां पीड़ा होती है, प्राण वहीं अटक जाते हैं। भूखे पेट के प्राण पेट के आस-पास ही अटके रहते हैं, उससे ऊपर नहीं उठ सकते। लेकिन हम एक बहुत मूढ़तापूर्ण, बहुत एब्सर्ड जीवन-दर्शन को पकड़े हुए बैठे हैं। मैं मानता हूं कि समृद्ध आदमी किसी दिन दरिद्र हो सकता है, स्वेच्छा से, वालंटरीली, लेकिन स्वेच्छा से दरिद्रता बात ही और है। वह बात वैसी ही है--

मैं एक आश्रम में गया। उस आश्रम में उपवास करवाते हैं वे महीने-महीने, दो-दो महीने, तीन-तीन महीने और एक-एक महीने के उपवास करने के पांच-पांच सौ रुपये महीने का खर्च पड़ जाता है। पांच सौ रुपये महीने का खर्च एक महीना उपवास करने का! मैंने कहा, उपवास बड़ा महंगा है। इससे तो पेट भरना भी सस्ता पड़ता है। फिर वहां जो लोग उपवास करने वाले थे, वे बड़े ही आनंद से कहते थे कि बीस दिन कर लिए, पच्चीस दिन कर लिए, तीस दिन हो गए, मेरे चालीस दिन हो गए। मैं तो बहुत हैरान हुआ। मैं बिहार भी गया। वहां अकाल में भूखे मरते हुए लोग थे, किसी को चार दिन से रोटी नहीं मिली थी। उसका चेहरा भी मैंने देखा और चालीस दिन इसने उपवास किया था इसका चेहरा भी मैंने देखा। इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ा। वह चार दिन भूखा रहा था, वह इतना दीन-हीन मालूम हो रहा था! यह जो जिसने चालीस दिन उपवास किया था, यह एक ऐसी आध्यात्मिक गरिमा से भरा हुआ था। बड़ी अजीब बात है। फर्क क्या हुआ? यह उपवास है,

वह भूख है। यह उपवास वे लोगे करते हैं जो ज्यादा खा गए हैं और ज्यादा खा रहे हैं। भूखा आदमी, भूखे आदमी को कभी खाने को नहीं मिला। भूख और उपवास में फर्क है।

महावीर की दरिद्रता में और सड़क पर भीख मांगने वाले की दरिद्रता में भी उतना ही फर्क है। ज्यादा खाने वाले के लिए उपवास भी एक आनंद हो सकता है, भूख से मरने वाले के लिए उपवास कैसे आनंद हो सकता है? क्वालिटेटिव फर्क है, गुणात्मक फर्क है। और हिंदुस्तान पांच हजार वर्ष से इस गलत जीवन-दृष्टिकोण के नीचे जी रहा है कि हमें दरिद्रता में संतोष कर लेना है।

गांधी भी फिर पुनः उसी बात को दोहराते हैं और उसी बात को दोहराने के कारण उन्होंने जो उपकरण बताए हैं--चरखा, तकली, वे उपकरण भारत को दरिद्र रखने के उपकरण सिद्ध होंगे। वे भारत को समृद्ध नहीं बना सकते हैं। समृद्धि पैदा होती है टेक्नालॉजी से, समृद्धि पैदा होती है विज्ञान से, तकनीक से। समृद्धि पैदा होती है यंत्र से।

चरखा और तकली से समृद्धि कैसे पैदा हो सकती है?

चरखा और तकली कोई दस हजार पुराने वर्ष के साधन हैं, दस हजार वर्ष पहले के साधन हैं। अगर दुनिया को दस हजार वर्ष पुरानी दरिद्रता में ले जाना है, दुख में ले जाना है तो चरखे-तकली को प्रतीक बनाओ, अन्यथा चरखे-तकली से मुक्त होने की जरूरत है।

मैं यह नहीं कहता कि गांव में जिन्हें कुछ भी काम नहीं मिल रहा है, वे चरखा न कातें। मैं यह भी नहीं कहता कि जिन्हें खादी पहनने का शौक है वे खादी न पहनें।

मैं कहता यह हूं कि यह भारत के विकास के प्रतीक न बन जाएं, ये हमारे जीवन के देखने के, दृष्टिकोण के सिंबल्स न हों। गांधी ने उन्हें सिंबल बना दिया है। हमें ऐसा लगने लगा है कि नहीं बड़े टेक्नीक की कोई जरूरत नहीं है, बड़ी टेक्नालॉजी की कोई जरूरत नहीं है, बड़े यंत्रों की कोई जरूरत नहीं है, सेंट्रेलाइजेशन की, केंद्रीकरण की कोई जरूरत नहीं है, औद्योगीकरण की, इंडस्ट्रीलाइजेशन की कोई जरूरत नहीं है। हमें ऐसा लगने लगा कि एक-एक आदमी अपना साबुन बना ले, अपना कपड़ा बना ले, अपनी खेती में काम कर ले, स्वावलंबी हो जाए--बस इसकी जरूरत है।

ये खतरनाक बातें हैं। अगर आदमी को हमने इस ढांचे पर ले जाने की कोशिश की है तो आदमी का जीवन-स्तर पशु के स्तर पर गिर जाने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं होगा। आदमी का जो इतना जीवन-स्तर ऊपर उठा है, वह तकनीक का परिणाम है। और जिस दिन सारी मनुष्य-जाति का जीवन-स्तर इतना ऊंचा उठ जाएगा जितना जीवन-स्तर बुद्ध और महावीर का ऊंचा रहा होगा, तो मैं आपसे कहता हूं, पृथ्वी पर करोड़ों बुद्ध और महावीर एक साथ पैदा हो सकते हैं!

यह आकस्मिक नहीं है कि राजघरानों से इतने बड़े संन्यासी पैदा हुए। इतने बड़े संन्यासी राजघरानों से ही पैदा हो सकते हैं, क्योंकि राजघराने में ही संपत्ति की और शरीर की व्यर्थता का पहला अनुभव होता है और आंखें उस तरफ उठती हैं जहां जीवन की और गहरी सच्चाइयां हैं, जहां और बियांड और दूर और अतीत और ऊपर के शिखर हैं उन तक आंख तभी उठती है, जब जीवन की नीचे से पृथ्वी शांत, सुविधापूर्ण हो जाती है।

तो मैं मानता हूं कि चरखा और तकली को अगर हम प्रतीक मान लेते हैं और अपनी आर्थिक जीवन-व्यवस्था का केंद्र बना लेते हैं और अगर हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि विकेंद्रीकरण करना है, बड़े उद्योग से बचना है, बड़ी टेक्नालॉजी और बड़ी साइंस को नहीं आने देना है तो हम बहुत घातक स्थिति में पहुंच जा सकते हैं।

हम दरिद्र हैं हमेशा से, हम और भी दरिद्र हो सकते हैं। सारी दुनिया समृद्ध होती चली जाएगी, उसके किनारे हम एक दरिद्रता का हिस्सा बन जाएंगे।

आज भी हमारी हालत वैसी ही है जैसे किसी करोड़पति के भवन के सामने कोई भिखमंगा खड़ा हो। आज भी हमारी हालत दुनिया के राष्ट्रों के मुकाबले एक भिखमंगे राष्ट्र की हालत है। यह हालत रोज बदतर होती चली जाएगी। एक तरफ टेक्नीक का उपयोग मत करना, केंद्रीकरण की भावना को रोकना, तोड़ना, दूसरी तरफ बिल्कुल हाथ से चलने वाले साधन जो आदिम हैं उनका उपयोग करना और तीसरी तरफ बच्चों को पैदा करते चले जाना! बीस-पच्चीस वर्ष में यह मुल्क अपने हाथ से अपनी सुसाइड कर लेगा, आत्महत्या कर लेगा।

गांधी जी कहते हैं कि संतति-नियमन के पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं कि बर्थ-कंट्रोल के पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं ब्रह्मचर्य से नियमन होना चाहिए।

ब्रह्मचर्य से कितने लोगों ने कब नियमन किया है? कितने लोग नियमन कर सकते हैं? कितने लोग करेंगे? और हम प्रतीक्षा कब तक करेंगे?

लेकिन गांधी कहते हैं कि नहीं, कृत्रिम उपाय का हमको उपयोग नहीं करना है। बर्थ-कंट्रोल के साधन कृत्रिम हैं, आर्टीफिशियल हैं, उनका उपयोग नहीं करना है। गांधी की ये बातें अवैज्ञानिक हैं।

गांधी भले आदमी हैं, इसका यह मतलब नहीं होता कि गांधी जो भी कहेंगे वह वैज्ञानिक होगा। कई बार बड़े गलत आदमी बड़ी ठीक बातें कहते हैं, कई बार बड़े ठीक आदमी बड़ी गलत बातें कहते हैं और सच तो यह है कि गलत बातें हम तभी स्वीकार कर पाते हैं जब बहुत भले आदमी उनको कहते हैं। अगर चरखे और खादी की बात किसी और ने कही होती गांधी के अलावा, तो हिंदुस्तान कभी मानने की फिकर नहीं करता। वह गांधी इतने अदभुत आदमी हैं कि वह कुछ भी कहेंगे तो हमें लगता है कि इतना बड़ा व्यक्ति, इतना महिमावान व्यक्ति, इतना ओजस्वी, वह जो भी कहता है, ठीक कहता होगा।

अगर हम मार्क्स की व्यक्तिगत जिंदगी को देखें, तो मार्क्स की व्यक्तिगत जिंदगी में कुछ भी नहीं है जिसको उद्दात्त कहा जा सके, ऊंचा कहा जा सके। सुबह से सांझ तक सिगरेट पी रहा है, शराब पी रहा है। जिंदगी में कुछ ऐसी ऊंची बात नहीं है। जिंदगी में कोई ऐसा बड़ा भारी प्रभाव नहीं है। नौकरानी से गलत संबंध है, नाजायज लड़का पैदा हो गया मार्क्स को, मार्क्स की जिंदगी में कुछ भी नहीं है। छोटी सी बात में क्रोध से भर जाता है। बहुत ईगोइस्ट है, बहुत ईर्ष्यालु है। लेकिन मार्क्स ने समाज के लिए जो विश्लेषण दिया है वह सत्य है। गांधी बहुत अच्छे आदमी हैं, न सिगरेट पीते हैं, न किसी नौकरानी से कोई गलत संबंध है, न कोई नाजायज बच्चा पैदा हुआ है। जीवन एकदम पवित्र कथा है। जीवन एक शुभ्र कथा है, लेकिन गांधी ने जो विश्लेषण किया है समाज का वह अवैज्ञानिक है और गलत है। गांधी जैसे आदमी चाहिए पृथ्वी पर, लेकिन समाज मार्क्स जैसा चाहिए। गांधी का समाज का विश्लेषण अवैज्ञानिक है।

लेकिन गांधीवादी कहते हैं मैं इस पर बात ही न करूं। वे कहते हैं, इस पर बात ही मत करिए। इस पर बात नहीं करने का मतलब, इस पर बात नहीं करने का मतलब है कि देश में आग लग रही हो, हम बैठ कर देखते रहें। गांधीवादी मुझे कहते हैं कि आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप क्यों इन बातों में पड़ते हैं? एक धार्मिक आदमी निकलता है और एक मकान में आग लगी हो और चिल्ला कर कह दे कि मकान में आग लगी है, पानी ले आओ, तो उससे आप कहेंगे कि आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप इस झंझट में कहां पड़ते हैं। लगने दो आग। आप अपना भजन-कीर्तन करो।

मोरार जी भाई ने मेरे संबंध में बात करते हुए राजकोट में परसों कहा कि पहले तो राजनीतिज्ञ और आर्थिक लोग गांधी जी की आलोचना करते थे। अब आध्यात्मिक लोग भी उनकी आलोचना करने लगे। जैसे कि आध्यात्मिक आदमी का गांधी जी की आलोचना करना अनिवार्यरूपेण कोई अपराध हो।

मैं मोरार जी भाई को कहना चाहता हूं, गांधी जी को राजनीतिज्ञ और आर्थिक लोग तो समझ ही नहीं सकते, आलोचना क्या करेंगे। गांधी को तो आध्यात्मिक लोग ही समझ सकते हैं और विचार कर सकते हैं, क्योंकि गांधी मूलतः राजनीतिज्ञ नहीं हैं, न आर्थिक विचारक हैं, गांधी मूलतः एक आध्यात्मिक संत हैं। गांधी के आस-पास जो राजनीतिज्ञ इकट्ठे हो गए हैं, उन्होंने ही गांधी को बर्बाद किया है। और गांधी के पास जो राजनीति का जाल खड़ा हो गया, उस जाल ने ही गांधी की प्रतिमा को वह जितनी सुंदर हो सकती थी, जितनी पवित्र हो सकती थी, उसकी पवित्रता और सुंदरता में भी कमी की।

गांधी मूलतः एक आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। राजनीति से उनका कोई बुनियादी संबंध नहीं है। राजनीति एक आपद-धर्म थी, एक मजबूरी थी। मुल्क में एक आग थी, गुलामी थी। उसे दूर करने को उन्हें कूद पड़ना पड़ा। लेकिन मूलतः वे परमात्मा की खोज में जाने वाले एक साधक हैं। और उन पर आध्यात्मिक लोग विचार न करें ऐसा अगर मोरार जी भाई सोचते हों तो बहुत गलत सोचते हैं।

गांधी पर हिंदुस्तान के आध्यात्मिक चिंतकों को बार-बार विचार करना पड़ेगा, क्योंकि गांधी ने आध्यात्मिक जीवन और सामान्य जीवन के बीच एक सेतु निर्मित किया है।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गांधी आध्यात्मिक व्यक्ति हैं इसलिए जो भी कहेंगे वह सत्य होगा। हमारी पुरानी धारणा यह है, हम समझते हैं कि महावीर को चूंकि आत्मज्ञान मिला, परमात्मा का अनुभव हुआ, इसलिए महावीर जो भी कहेंगे वह सच होगा, यह गलत है बात। महावीर का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। बुद्ध का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। गांधी का सब कहा हुआ भी सच नहीं हो सकता, बल्कि यह भी हो सकता है कि गांधी से बहुत कम हैसियत का कोई विचारक किसी दिशा में जो बात कहे, चाहे उसके पास व्यक्तित्व हो चाहे न हो, वह भी सच हो सकता है। यही मैंने कहा कि मार्क्स गांधी के मुकाबले कोई भी व्यक्तित्व नहीं है मार्क्स का। लेकिन मार्क्स के समाज का जो विश्लेषण है वह गांधी से श्रेष्ठ है, सही है, सच्चा है, वैज्ञानिक है। इसलिए मैं मानता हूं कि गांधी जैसे पृथ्वी पर जितने लोग बढ़ जाएंगे, पृथ्वी उतनी अच्छी होगी, लेकिन गांधी की जो जीवन-रचना की कल्पना है, वह कल्पना अवैज्ञानिक है, आदिम है, प्रिमिटिव है, पिछड़ी हुई है, और उसके आधार पर चल कर इस देश के सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता है।

मैं मानता हूं कि यह आलोचना और विचार किया जाना जरूरी है। नहीं, मैं यह नहीं कहता हूं कि मैं जो कहता हूं वह सही होना ही चाहिए। वह मैं कभी भी नहीं कहता हूं। यह मैं नहीं कहता हूं कि मैंने जो कहा वह सत्य है ही। वह मैं कभी नहीं कहता हूं। यह भी मैं नहीं कहता कि मेरी बात आपको मान लेनी चाहिए। मैं इतना ही कहता हूं कि मैं जो कहता हूं वह विचारणीय है, उस पर विचार किया जाना जरूरी है। हो सकता है मेरी बातें गलत हों। तब विचार करके उनको फेंक देना चाहिए। हो सकता है उसमें कोई बात आपके विवेक को सच मालूम पड़े, तब वह मेरी नहीं रह जाती, वह आपकी अपनी हो जाती है। लेकिन जो पंथवादी होते हैं, वे कहते हैं, विचार ही नहीं करना है। विचार की हत्या करना चाहते हैं।

मैं गुजरात गया तो वहां मुझे लोगों ने कहा कि इंदुलाल याज्ञनिक ने कहा कि मेरा बहिष्कार करेंगे, गुजरात में नहीं आने देंगे। मैंने कहा, अगर गुजरात पागल होगा तो इंदुलाल की बात मानेगा। गुजरात पागल नहीं है। बहिष्कार करेंगे मेरा, अगर मैं गांधी के ऊपर कुछ विचार करूंगा तो बहिष्कार किया जाएगा। गांधी की

आत्मा कहीं भी होगी तो इंदुलाल याज्ञनिक को देख कर रो रही होगी कि ये मेरे गांधीवादी हैं! इन्हीं लोगों के लिए मैंने लड़ाई लड़ी, इन्हीं के लिए जीवन कुर्बान किया, इन्हीं के लिए बर्बाद हुआ।

गांधीवादी को अगर थोड़ी भी समझ हो तो मुझे तो उसे गांव-गांव बुला कर ले जाना चाहिए कि मैं गांधी के बाबत बात करूं और गांधी के बाबत विचार को पैदा करूं।

लेकिन वह कहता है कि नहीं, अखबार में मेरी खबर नहीं छपनी चाहिए। मेरी सभा नहीं होनी चाहिए। राजकोट में जितने मैदान गांधीवादियों के हाथ में थे उन्होंने कहा कि नहीं, यहां हम सभा नहीं होने देंगे। स्कूल उनके हाथ में हैं, सभा नहीं होने देंगे। उनके हाथ में तो सभी कुछ हैं। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है, इससे क्या सभा नहीं होगी? लेकिन इस भांति रोक कर वे क्या बताते हैं? वे बताते हैं कि कितना समझे गांधी की अहिंसा को, कितना समझे गांधी के अध्यात्म को, कितना समझे गांधी के विचार को, यही समझे?

दिल्ली में बोला। दूसरे दिन ही मुझे एक पत्र आया। किसी गांधीवादी ने पत्र लिखा और मुझे लिखा कि महाशय आपको फौरन सेंट्रल जेल भेज दिया जाना चाहिए। मैंने आंख बंद करके गांधी को धन्यवाद दिया, मैंने कहा कि मेरी उम्र कम थी, इसलिए आपके सत्संग का मौका नहीं मिला, नहीं तो आपके सत्संग में जेल जाना ही पड़ता। लेकिन आश्चर्य, आप मर गए, फिर भी प्रभाव आपका काफी है। जरा आपसे दोस्ती दिखाई, आपकी बात की कि जेल जाने की बात होने लगी। गांधी अगर जिंदा होते तो इस बात के सौ में से सौ मौके हैं कि गांधीवादियों की जेल में उनको सड़ना पड़ता। ये गांधीवादी उनको जेल में जरूर भेजते।

गांधी बुनियादी रूप से एक विद्रोही क्रांतिकारी थे। वे मुल्क को नरक में ले जाते हुए अपने शिष्यों को नहीं देख सकते थे। वे यह नहीं सोचते कि ये शिष्य मेरे हैं, इसलिए इनसे बगावत कैसे करूं। बगावत की कहानी शुरू हो गई थी। गांधी के हाथ से जैसे ही सत्ता उनके अनुयायियों को मिल गई, वैसे ही गांधी को लगने लगा कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा कोई चलन नहीं रहा। मेरी कोई सुनता नहीं। गांधी के शिष्यों को भी लगता था इस बुड्ढे से अब छुटकारा हो जाए तो अच्छा। क्योंकि यह झंझटें खड़ी करेगा। और गोडसे ने मालूम होता है गांधी के अनुयायियों की प्रार्थना सुन ली और गांधी की हत्या कर दी। गांधी से छुटकारा हो गया। अब मजे से उनकी पूजा करो, प्रार्थना करो, यश-गान करो, अब गांधी कोई गड़बड़ नहीं कर सकते। लेकिन इस भ्रम में मत रहना, कि जो देश गांधी पैदा कर सकता है--वह पचास गांधी पैदा कर सकता है।

गांधी पर विचार किया जाना जरूरी है, उनके एक-एक पहलू पर विचार किया जाना जरूरी है। जरूरी नहीं कि जो मैं कहूं वही सच है। नहीं, उतनी कोई भी जरूरत नहीं। मेरा निवेदन इतना ही है कि उस पर सोचने के लिए मुक्त मन का आमंत्रण होना चाहिए। वही आमंत्रण मैं देता हूं।

यह तो प्रारंभिक बात थी आज, आने वाले तीन दिनों में गांधी के अनेक पहलुओं पर मैं आपसे बात करना चाहूंगा।

सुबह आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा।

परमात्मा करे गांधी की कामनाएं सफल हो कि इस देश का भविष्य स्वर्णिम बने। परमात्मा करे कि गांधी जैसी इस देश की मुक्त आत्मा को विचारशील आत्मा को पैदा करना चाहते थे, वह आत्मा पैदा हो सके।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

## संचेतना के ठोस आयाम

कुछ मित्रों ने कहा है कि गांधी जी यंत्र के विरोध में नहीं थे। और मैंने कल सांझ को कहा कि गांधी जी यंत्र, केंद्रीकरण, विकसित तकनीक के विरोध में थे।

गांधी जी की उन्नीस सौ अठारह से लेकर उन्नीस सौ अड़तालीस तक की चिंतना को हम देखेंगे तो उसमें बहुत फर्क होता हुआ मालूम पड़ता है। वे बहुत सजग ऑब्जर्वर थे। वे रोज-रोज, जो उन्हें गलत दिखाई पड़ता, उसे छोड़ते, जो ठीक दिखाई पड़ता उसे स्वीकार करते हैं। धीरे-धीरे उनका यंत्र-विरोध कम हुआ था, लेकिन समाप्त नहीं हो गया था।

अगर वे जीवित रहते और बीस वर्ष, तो शायद उनका यंत्र-विरोध और भी नष्ट हो गया होता। लेकिन वे जीवित नहीं रहे, और हमारा दुर्भाग्य सदा से यह है कि जहां हमारा महापुरुष मरता है वहीं उसका जीवन-चिंतन भी हम दफना देते हैं। महापुरुष तो समाप्त हो जाते हैं, उनकी जीवन-चिंतना आगे बढ़ती रहनी चाहिए। जहां महापुरुष समाप्त होते हैं वहीं उनका जीवन-दर्शन समाप्त नहीं हो जाना चाहिए। महापुरुष का शरीर समाप्त हो जाता है, उसका जीवन-चिंतन देश को आगे बढ़ाते रहना चाहिए। लेकिन हम इतने भयभीत हैं, हम इतने डरे हुए लोग हैं कि हम चिंतन को आगे ले जाना नहीं चाहते, हम चिंतन को वहीं ठोंक कर रोक देना चाहते हैं, जहां महापुरुष का शरीर गिर जाता है वहीं हम उसके चिंतन को भी दफना देना चाहते हैं। उसके ही विरोध में मैं कह रहा हूं।

यह प्रश्न गांधी जी का ही नहीं है। इस पूरे देश की चिंतना यंत्र-विरोधी रही है। यंत्र-विरोधी हमारी चेतना नहीं होती तो हमने यंत्र बहुत पहले विकसित कर लिए होते। हमारे पास बुद्धि की कमी नहीं थी। हिंदुस्तान में इतने बुद्धिमान आदमी पैदा हुए हैं जितना कोई भी देश गौरव नहीं कर सकता है। बुद्ध और महावीर, नागार्जुन और धर्मकीर्ति, वसुबंधु और दिग्नाग, शंकर और रामानुज, वल्लभ और निम्बार्क हमारे पास अदभुत बुद्धिमान लोगों का लंबा सिलसिला है। लेकिन इतने बुद्धिमान लोग पैदा हुए, लेकिन एक आइंस्टीन और एक न्यूटन हमने पैदा नहीं किया। तीन हजार वर्ष के इतिहास में हमारे पास एक न्यूटन, एक आइंस्टीन कहने जैसा नहीं है। आइंस्टीन और न्यूटन से भी महत्वपूर्ण विचारक हमारे पास थे, लेकिन हमारे देश के विचार ने कभी भी वैज्ञानिक दिशा में कोई गति नहीं की। यह आकस्मिक नहीं है, यह एक्सिडेंटल नहीं है। इसके पीछे हमारे चिंतन का हाथ है। हमारी मान्यता यह है कि मनुष्य को विस्तार से बचना चाहिए। हमारी धारणा यह रही कि जितनी चादर हो उस चादर के भीतर अपने पैर सिकोड़ कर रखना चाहिए, चादर के बाहर पैर नहीं निकालने चाहिए। बुद्धिमान हम उसको कहते हैं जो चादर के भीतर रहता है। चादर के भीतर हम कितने ही सिकुड़ कर रहें, हम रोज बड़े होते जाते हैं और चादर रोज छोटी होती चली जाती है। जीना एक पीड़ा और कठिनाई हो जाती है लेकिन चादर के बाहर पैर नहीं फैलाने हैं।

जीवन का नियम है विस्तार, और हमने संकोच के नियम को आधार बनाया हुआ है। जो समाज विस्तार के सिद्धांत को स्वीकार किए हैं उन्होंने यंत्र को विकसित किया है, क्योंकि यंत्र है मनुष्य का विस्तार। हमारे पैर हैं, हम पैर से चलते हैं। पैर से हम कितने तेज चल सकते हैं? कार हमारे पैर का विस्तार है, हमने पैर के लिए

और विस्तृत किया, और कार तेज गति से दौड़ती है। हवाई जहाज हमारे पैर का और भी बड़ा विस्तार है, अंतरिक्ष-यान हमारे ही पैर का और भी बड़ा विस्तार है।

यंत्र का अर्थ क्या है?

यंत्र का अर्थ है कि जो मनुष्य को उपलब्ध नहीं हैं उपकरण, उनका विस्तार या जो उपकरण उपलब्ध हैं, उनका विस्तार।

अगर हम संकोच को स्वीकार करते हैं कि जीवन जैसा है, जितना है, उतने ही चादर के भीतर उसे जी लेना है, तो हम कोई यांत्रिक, वैज्ञानिक, टेक्नालॉजिकल माइंड पैदा नहीं कर सकते हैं। यह सवाल बहुत बड़ा नहीं है कि गांधी यंत्र के विरोध में हैं या पक्ष में हैं। चरखा भी यंत्र है। दलील तो दी जा सकती है कि तकली भी यंत्र है। यंत्र तो है ही। किसी दिन वह भी मशीन थी, आज भी मशीन तो है ही। छोटी है, अविकसित है, दस हजार वर्ष पुरानी है, इससे क्या फर्क पड़ता है। यंत्र तो है ही। नहीं, सवाल यंत्र के पक्ष और यंत्र के विरोध का नहीं है, सवाल टेक्नालॉजिकल माइंड और एंटी-टेक्नालॉजिकल माइंड का है। सवाल है कि तकनीकी मस्तिष्क में हम विश्वास करते हैं या तकनीक विरोधी मस्तिष्क में हम विश्वास करते हैं।

चीन ने कोई तीन हजार वर्ष पहले मशीनें ईजाद कर ली थीं, लेकिन चीन में एक विचारक था लाओत्सु, उसका बड़ा प्रभाव था। लाओत्सु ने कहा कि यंत्रों की कोई जरूरत नहीं है। आदमी परिपूर्ण है। परमात्मा ने आदमी को पूरा पैदा किया है। उसे किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। वह अपने सारे अंगों से ही सारा काम कर सकता है। लाओत्सु के दर्शन का इतना प्रभाव पड़ा कि तीन हजार वर्ष पहले जो मशीनें चीन ने विकसित की थीं, वे वहीं रह गईं, उनकी आगे कोई गति नहीं हो सकीं। उन्हीं मशीनों को यूरोप ने पिछले तीन सौ वर्षों में विकसित किया और यूरोप ने धन के अंबार लगा दिए। चीन ने अगर तीन हजार वर्ष पहले वे मशीनें विकसित की होतीं तो चीन शायद आज पृथ्वी पर सयता में अग्रणी हो सकता था, लेकिन लाओत्सु के विचार-प्रभाव के परिणाम में यंत्र वहीं ठहर गए और रुक गए।

हिंदुस्तान बैलगाड़ी पर चल रहा है हजारों साल से। वह जो बैलगाड़ी के चाक का नियम है, वही हवाई जहाज का भी नियम है। उसमें कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ गया है, उसका ही विस्तार है। लेकिन हम बैलगाड़ी पर ही रुक गए। हमारा मस्तिष्क यंत्र के विस्तार की कामना से भरा हुआ नहीं है और गांधी जी ने जब फिर हमें विकेंद्रीकरण--और विकेंद्रीकरण का क्या मतलब होता है? डिसेंट्रलाइजेशन का मतलब क्या होता है? विकेंद्रीकरण का मतलब होता है कि छोटे यंत्र; बड़े यंत्र नहीं। क्योंकि जितने बड़े यंत्र होंगे उतना केंद्रीकरण होगा। जितना बड़ा केंद्रीकरण होगा उतने बड़े यंत्रों का हम प्रयोग कर सकते हैं। जितनी विकेंद्रित व्यवस्था होगी उतने छोटे यंत्र होंगे, एक-एक आदमी जिनको चला सके, दो-चार आदमी मिल कर चला सकें, छोटे-छोटे गांव में चलाएं जा सकें। विकेंद्रीकरण का अर्थ होगा कि बहुत बड़े यंत्रों का प्रयोग नहीं हो सकता। और आने वाली जो दुनिया है वह बहुत बड़े यंत्रों पर निर्भर होगी।

फिर मेरा यह कहना है, कि यह सवाल अगर यंत्रों का ही होता तो मैं गांधी जी का विरोध भी न करता। यह सवाल यंत्रों का ही नहीं मनुष्य की चेतना के विकास का भी है। शायद आपको पता न हो, हम जितने बड़े उत्पादन के यंत्रों का प्रयोग करते हैं, मनुष्य के मस्तिष्क की अभिव्यक्ति और विकास की संभावना उतनी ही बढ़ती है। यह एकदम से आश्चर्यजनक मालूम पड़ेगा। लेकिन आपने कभी खयाल किया कि एक बैलगाड़ी एक आदमी चलाता है जीवन भर। बैलगाड़ी चलाने में कोई बहुत बुद्धिमत्ता कि लिए चुनौती नहीं मिलती। चुनौती का कोई सवाल नहीं है, कोई चैलेंज नहीं है वहां, लेकिन उसी आदमी को कल हवाई जहाज चलाना पड़े, तो

हवाई जहाज मस्तिष्क को ज्यादा चुनौती देता है, ज्यादा समझ, ज्यादा अवेयरनेस, ज्यादा होश, ज्यादा कांशसनेस रखनी पड़ती है। ज्यादा जटिल चीजों को समझना पड़ेगा, ज्यादा जटिल चीजों में व्यवहार करना पड़ेगा।

जितनी जटिल, उलझी हुई, जितनी सूक्ष्म, जितनी विस्तीर्ण हमें यंत्र के साथ सामना करना पड़ता है, हमारे मस्तिष्क को उतनी चुनौती मिलती है और मस्तिष्क उसी अनुपात में विकसित होता है। जिन कौमों ने छोटे यंत्रों या गैर-यंत्रों के बिना काम चलाया, उनकी सामाजिक चेतना और मस्तिष्क के विकास में अवरोध पड़ा है।

बंदर पहली दफा जो बंदर जमीन पर खड़ा हुआ होगा दो पैर से, बाकी बंदर उस पर हंसे होंगे कि यह बिल्कुल नासमझ है, लेकिन डार्विन कहता है कि वह बंदर जो दो पैर पर खड़ा हो गया--पहले तो बंदर हंसे होंगे और उन्होंने समझा होगा कि यह पागल है। वह ऑकवर्ड भी लगा होगा दो पैर से खड़ा हुआ। सब बंदर चार पैर से चलने वाले थे, लेकिन जो बंदर दो पैर से खड़ा हो गया उसने टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन को जन्म दे दिया। उसने तकनीक के विकास की पहली सीढ़ी रख दी। उसने यह कहा है कि जो काम दो पैर से हो सकता है उसको चार हाथ-पैर से करना गलत है। तकनीक शुरू हो गया। उसने दो हाथ मुक्त कर लिए और दो पैर से चलने का काम करने लगा।

क्या आपको पता है, अगर उस बंदर ने दो हाथ मुक्त नहीं किए होते तो मनुष्य की कोई सयता का कभी जन्म नहीं हुआ होता। वह जो दो हाथ मुक्त हो गए, वह दो खाली हाथों ने मनुष्य की सारी सयता विकसित की है। बंदर वहीं रुक गए हैं चार हाथ-पैर से चलने वाले। दो हाथ-पैर से चलने वाले बंदर ने जमीन-आसमान का फर्क पैदा कर लिया। आज कोई कहे कि बंदर और हम एक ही जाति के हैं, तो हमारा मन मानने को राजी नहीं होता। हमारे और बंदर के बीच इतना फासला पड़ गया, लेकिन यह फासला एक टेक्नालॉजिकल फर्क से पड़ा कि कुछ बंदरों ने दो हाथ मुक्त कर लिए। दो हाथ खाली हो गए, स्वतंत्र हो गए काम करने को, दो पैर से काम चलने लगा और उन दो स्वतंत्र हाथों ने सारी सयता, मकान, मंदिर, ताज, मस्जिदें, साहित्य, संगीत, धर्म, इन सबकी फिक्र की।

इस बात की संभावना है कि बहुत शीघ्र मनुष्य समस्त यंत्रों को स्वचालित निर्मित कर लेगा। अमेरिका में तो उसका चिंतन और विचार तीव्र हुआ जाता है। वे कहते हैं कि आने वाले पचास वर्षों में हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल यह होगा कि हम यंत्रों से सब पैदा कर लेंगे। मनुष्य के श्रम की कोई जरूरत न रह जाएगी। मनुष्य खाली हो जाएगा। वह खाली मनुष्य क्या करेगा, यह हमारे सामने सवाल है? अगर सारे यंत्र स्वचालित हो गए और मनुष्य का श्रम उनसे मुक्त हो गया, तो मेरी दृष्टि में मनुष्य की चेतना में आमूलभूत परिवर्तन हो जाएगा, क्योंकि पहली दफा चेतना पृथ्वी से पूरी तरह मुक्त हो जाएगी--श्रम से और उस श्रम से शून्य अवस्था में जो खोज, जो यात्रा चेतना की होगी, वह उन्हें किस लोकों में ले जाएगी कहना कठिन है।

शायद आपको पता नहीं कि जगत की सारी संस्कृति लिजर, विश्राम से पैदा हुई है। जगत का सारा साहित्य लिजर, विश्राम से पैदा हुआ है। जगत में जो भी श्रेष्ठतम उपलब्ध हुआ है वह उन लोगों से उपलब्ध हुआ है जो श्रम से किसी भांति मुक्त हो गए। एथेंस में जितनी संस्कृति विकसित हुई, वह इसलिए विकसित हो सकी कि एथेंस में एक वर्ग, गुलामों के वर्ग ने सारा श्रम किया और दूसरे अभिजात वर्ग ने, बुर्जुआ ने कोई श्रम नहीं किया। वे जो श्रमहीन लोग थे, वे भी तो कुछ करेंगे जीने के लिए? उन्होंने फिलासफी लिखी। उन्होंने साक्रेटीज, अरस्तू और प्लेटो को जन्म दिया।

भारत में भी, भारत ने भी ब्राह्मणों ने हिंदुस्तान के सारे साहित्य, सारे विचार को जन्म दिया, क्योंकि ब्राह्मण श्रम से मुक्त हो गया था, अन्यथा कोई उपाय न था। शूद्रों ने एक उपनिषद लिखी? शूद्रों ने एक वेद लिखा? शूद्रों ने आयुर्वेद खोजा? शूद्रों के ऊपर क्या उपलब्धि है भारत में? शूद्र के नाम पर कोई उपलब्धि नहीं है बेचारे के, क्योंकि वह चौबीस घंटे श्रम में लीन है।

हिंदुस्तान की सारी संस्कृति का जन्मदाता ब्राह्मण है। और ब्राह्मण क्यों हैं जन्मदाता? ब्राह्मण इसलिए जन्मदाता है कि उसके हाथ से सारा श्रम समाप्त हो गया, उसका व्यक्तित्व पूरा का पूरा विश्राम में हो गया, चेतना को ऊपर उठने का मौका मिल गया, चेतना आकाश की यात्रा करने लगी।

मनुष्य-जाति के जीवन में एक आध्यात्मिक क्रांति हो जाएगी उस दिन, जिस दिन हम सारी मनुष्य-जाति को श्रम से मुक्त कर लेंगे। जब तक हम मनुष्य-जाति को श्रम से मुक्त नहीं करते हैं, तब तक मनुष्य-जाति के जीवन में बहुत बुनियादी रूपांतरण नहीं हो सकता है।

गांधी जी के जो विश्वास हैं, उनके हिसाब से मनुष्य-जाति श्रम से कभी मुक्त नहीं होगी। अगर एक आदमी अपने लायक ही कपड़ा बनाना चाहे तो कम से कम उसे तीन-चार घंटे रोज चरखा चलाना पड़ेगा। वर्ष भर में अपने लायक कपड़ा बनाना चाहे तो उसे तीन-चार घंटे चरखा चला लेना पड़ेगा। अगर उसके ऊपर कोई निर्भर एक व्यक्ति है तो उसके आठ घंटे चरखा चलाने में व्यतीत हो जाने चाहिए। जो आदमी आठ घंटे चरखा चलाएगा--सिर्फ कपड़ा बनाने के लिए! वह और भी कुछ करेगा या नहीं? और इतनी क्षुद्र चीजों में उसकी चेतना को उलझा देना क्या मनुष्य के भावी विकास के हित में हो सकता है? यह प्रश्न सिर्फ चरखा और तकली का नहीं है, यह प्रश्न मनुष्य-जाति के जीवन में चेतना के जन्म, चेतना के विकास का प्रश्न है।

अभी अमेरिका और रूस ने जो अंतरिक्ष-यान भेजे, उन अंतरिक्ष-यानों में जो यात्री गए, उनका अनुभव आपको पता है? उन्होंने लौट कर क्या खबरें दी हैं? उन्होंने खबरें दी हैं कि अंतरिक्ष में परिपूर्ण शून्य है, सन्नाटा है। वहां टोटल साइलेंस है, वहां कोई आवाज नहीं, क्योंकि वहां कोई हवा नहीं। अगर बोलिएगा भी तो ओंठ हिलेंगे, आवाज नहीं होगी। वहां कभी कोई आवाज नहीं हुई।

अंतरिक्ष परिपूर्ण शून्य है। उस शून्य में जाकर अंतरिक्ष यात्रियों को क्या अनुभव हुआ कि यह मस्तिष्क पूरा का पूरा फटने लगता है, घबड़ाने लगता है। इतनी शांति कभी देखी नहीं, इतनी शांति कभी झेली नहीं। हमेशा शोरगुल, आवाज, आवाज, रात सोते हैं तब भी बाहर आवाजें चल रही हैं, उनकी मस्तिष्क को आदत पड़ गई है। मस्तिष्क उनसे कंडीशंड हो गया है।

अंतरिक्ष में जाने पर उनको पता चला कि मस्तिष्क तो फट जाएगा। इतनी शांति को सहना मुश्किल है। तो रूस और अमेरिका में उन्होंने कृत्रिम घर बनाए हैं, कृत्रिम कमरे बनाए हैं जिनमें उतनी शांति पैदा करने की कोशिश की है जितनी अंतरिक्ष में है। वहां यात्री को पहले ट्रेनिंग दी जाएगी, लेकिन उस कमरे में बैठ कर आधा घंटे, पंद्रह मिनट में घबड़ा कर यात्री बाहर आ जाता है कि वहां बहुत घबड़ाहट होती है, लेकिन धीरे-धीरे उस शून्य को सहने की सामर्थ्य उसकी विकसित हो जाएगी। उसका अर्थ आप समझते हैं? उसका अर्थ यह है कि जो लोग अंतरिक्ष-यान में यात्रा करेंगे उनके मस्तिष्क की बनावट में बुनियादी फर्क हो जाएगा उतनी शांति को सहने के कारण और यह हो सकता है कि एक बिल्कुल दूसरे तरह के मनुष्य का जन्म हो जाए जिसकी हमें कोई कल्पना भी नहीं हो सकती।

जीवन और उत्पादन के साधन, वाहन-कम्युनिकेशन के साधन अंततः मनुष्य की चेतना में परिवर्तन लाते हैं। अपने देखा, जो जंगल में आदिवासी रह रहा है, उस आदिवासी ने कोई साक्रेटीज पैदा किया? कोई बुद्ध पैदा

किया? कोई महावीर पैदा किया? कोई गांधी पैदा किया? वह कैसे पैदा करेगा? उसके उत्पादन के साधन इतने आदिम हैं कि उन आदिम उत्पादनों के साथ मस्तिष्क इतनी ऊंचाइयां नहीं ले सकता है जितनी ऊंचाइयां विकसित साधनों के साथ ली जा सकती है। आपको खयाल है, आज भी हिंदुस्तान में राधाकृष्णन जैसे व्यक्तियों को हम विचारक कहते हैं। राधाकृष्णन टीकाकार हो सकते हैं, विचारक जरा भी नहीं। एक मौलिक विचार को कोई जन्म नहीं दिया। जर्मनी में हाइडेगर है या जास्पर्स है, या सार्त्र है, या कामू है, या रसल है। इनकी कोटि का एक विचारक आप पैदा नहीं कर कर सकते हैं आज।

आप जिसको विचारक कहते हैं, किसको विचारक कहते हैं? गीता पर एक आदमी टीका लिख देता है तो विचारक हो जाता है? लेकिन गीता पैदा कर सके ऐसा एक विचारक आप पैदा नहीं कर सकते हैं। बस टीकाकार पैदा कर सकते हैं। उन्हीं को विचारक मान कर शोरगुल मचाते रहते हैं। हाइडेगर की हैसियत का एक विचारक हम पैदा नहीं कर सकते। उसका कारण? उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास बुद्धि कम है, उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास प्रतिभा नहीं है, उसका कारण यह है कि हमारा पूरा सामाजिक परिवेश उतनी प्रतिभा को चैलेंज देने वाला नहीं है जहां से कि हाइडेगर या जॉस्पर्स जैसे लोग पैदा हो सकें। लेकिन हम बैठे हुए हैं और हमारा विचारक चरखा और तकली की प्रशंसा करता रहेगा और हम विचार करने को राजी नहीं हैं।

इस बात के लिए समझ लेना आप ठीक से कि अगर पचास वर्ष में पश्चिम में सब कुछ स्वचालित यंत्र हो गए, अंतरिक्ष की यात्रा शुरू हुई, तो इस बात का डर है कि पश्चिम में एक नये मनुष्य का, एक नई ह्यूमैनिटी का जन्म हो जाए और पूरब के लोगों और पश्चिम के लोगों में उतना फासला पड़ जाए हजार दो हजार वर्षों में, जितना बंदर और आदमी के बीच फासला पैदा हो गया है। लेकिन हमें कोई बोध नहीं है इस बात का। हम कहेंगे, हम तो स्वावलंबन की बातें कर रहे हैं। हम हमेशा से इसी तरह की बातें कर रहे हैं और हमेशा नुकसान उठाते रहे हैं, लेकिन हम जानने को भी राजी नहीं होना चाहते।

हिंदुस्तान एक हजार साल तक गुलाम था और हजारों साल से निरंतर हारता रहा है, जीत का उसने कभी कोई सपना नहीं देखा, जीत का कभी मौका नहीं पाया। हम क्यों हारते रहे? कभी आपे सोचा? हम हारते इसलिए रहे हैं कि जब भी दुश्मन हमारे ऊपर आया, उसके पास युद्ध की विकसित टेक्नालॉजी थी। हमारे पास विकसित टेक्नालॉजी नहीं थी। सिकंदर हिंदुस्तान आया वह घोड़े पर सवार होकर आया। पोरस उससे लड़ने गया। पोरस सिकंदर से कमजोर आदमी नहीं था और उसके पास बहादुर सैनिक थे, लेकिन पोरस के पास टेक्नालॉजी जो थी वह अविकसित थी। वह हाथियों पर लड़ने गया था। हाथी कोई युद्ध का अस्त्र नहीं है। हाथी बरात निकालनी हो तो बहुत अच्छे हैं, शोभा-यात्रा निकालनी हो तो बहुत अच्छे हैं, लेकिन युद्ध के मैदान पर हाथी पिछड़ा हुआ साधन है घोड़े के मुकाबले। घोड़ा तेज है, ज्यादा जानवान है, ज्यादा चंचल है, थोड़ी जगह घेरता है, तेजी से गति करता है।

सिकंदर के घोड़ों के मुकाबले पोरस के हाथी हारे। सिकंदर से पोरस नहीं हारा है। और हाथी जब घबड़ा गए युद्ध में तो उन्होंने अपनी सेनाओं को कुचल डाला। बाबर हिंदुस्तान आया। बाबर के पास बारूद थी। हमारे पास बारूद का कोई उत्तर नहीं था। दूसरे मुल्क में हम लड़ने नहीं गए, दूसरे मुल्क के लोग लड़ने आए, हम अपने मुल्क में हारते रहे। इतनी बड़ी जनसंख्या लेकर हम बैठे हैं, परदेश से एक आदमी आएगा कितनी फौजें लाएगा, कितनी फौजें ला सकता है, और हम उससे अपने मुल्क में हार जाएंगे। बारूद का हमारे पास कोई उत्तर न था। बारूद से हारने के सिवाय कोई रास्ता न था। हम बाबर से नहीं हारे; हम बारूद से हारे। बाबर को हराने की

हमें हिम्मत न थी, लेकिन हमारे पास कोई टेक्नीक न थी। अंग्रेज हिंदुस्तान में आए, हमारे पास बंदूकें थीं, अंग्रेजों के पास विकसित तोपें थीं। हम अंग्रेजों से नहीं हारे, बंदूकें तोपों से हारेंगी ही, इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

और अब हम फिर वही बातें किए चले जा रहे हैं कि टेक्नालॉजी, नहीं-नहीं बड़े यंत्रों का क्या करना है, बड़े विकास का क्या करना है, चरखा-तकली से चलाना है। उसी से चला रहे हैं हम पांच हजार वर्षों से और रोज मात खाते रहे, रोज जमीन चाटते रहे, लेकिन वही बातें हम जारी किए हुए हैं। और अगर कोई कहे कि यह गलत है, हमें विकास के सारे साधनों का उपयोग करना है, हमें बहुत शीघ्र बीस वर्षों में सारी दुनिया के साथ खड़े हो जाना है, अन्यथा हम कहीं के नहीं रह जाएंगे, तो हम उसके विरोध में टूट पड़ेंगे कि हमारे महापुरुष की आलोचना हो गई। यह महापुरुष की आलोचना का सवाल नहीं है, यह मुल्क की जिंदगी का सवाल है।

मैं जो विकसित टेक्नीक के पक्ष में बोल रहा हूं वह इसलिए नहीं कि मुझे चरखे से कोई दुश्मनी है, न तकली से मुझे दुश्मनी है, न मैं इस खयाल का हूं कि चरखे और तकली चलने बंद हो जाने चाहिए। जब तक कोई उपाय नहीं है वह चलें, लेकिन मजबूरी हो उनको चलाना, हमारा सिद्धांत नहीं। यह फर्क समझ लेना जरूरी है। मजबूरी हो उनको चलाना, हमारा सिद्धांत नहीं। विवशता हो हमारी, हम मजबूर हैं, इसलिए अभी कुछ नहीं कर पा रहे हैं, तो चला रहे हैं। लेकिन जैसे ही हमें मौका मिलेगा, हम उनसे मुक्त हो जाएंगे। यह हमारी दृष्टि हो। वे हमारे प्रतीक न बन जाएं। हमारी कमजोरी के प्रतीक हों, हम नहीं विकसित हो पाए हैं इसके प्रतीक हों। उनको हम छाती काशृंगार न बना लें और यह न घोषणा करते फिरें कि हम बहुत ऊंचा काम कर रहे हैं।

न ही खादी से मेरा कोई विरोध है, लेकिन खादी को मैं कोई आर्थिक-संयोजन का सिद्धांत नहीं मानता हूं। खादी कोई आर्थिक चीज नहीं हो सकती। खादी का एक एस्थेटिक मूल्य हो सकता है, एक सौंदर्यगत मूल्य हो सकता है। किसी आदमी को हाथ से बनाई हुई चीज पहनने में रस हो सकता है। दुनिया कितनी ही विकसित हो जाए तो भी घर के उद्योग जारी रहेंगे। दुनिया कितनी ही विकसित हो जाए, होटलों में कितना ही अच्छा खाना बनने लगे, तो भी कोई गृहिणी अपने घर खाना बनाना पसंद करेगी। और यह भी हो सकता है कि घर बनाया हुआ खाना होटल से अच्छा न हो, तो भी घर का खाना खाने का आनंद अलग है। लेकिन उसका मूल्य एस्थेटिक है। उसका मूल्य आर्थिक नहीं है, उसका मूल्य वैज्ञानिक नहीं है। अगर मेरी मां मुझे कुछ खाना बना कर खिलाती है, हो सकता है होटल के रसोइए उससे बहुत बेहतर बनाते हों, लेकिन होटल के रसोइयों के खाने से मुझे मेरी मां का खाना अच्छा लगेगा। लेकिन मैं यह कभी नहीं कहूंगा कि यह डाइटीशियन के हिसाब से ज्यादा बेहतर खाना है। मैं इतना ही कहूंगा, यह मेरी मां है और मेरा एक प्रेम है और एक लगाव है इसलिए यह मुझे अच्छा लग रहा है। इसका संबंध फीलिंग से हुआ, डाइट के साइंस से नहीं। लेकिन जब मैं यह घोषणा करने लगूं कि मां के हाथ का बनाया हुआ खाना डाइट की दृष्टि से, भोजनशास्त्र की दृष्टि से ऊंचा होता है, तो फिर मैं गड़बड़ में पड़ गया, तो फिर मैं कठिनाई में पड़ गया।

खादी एक एस्थेटिक मूल्य रखती है। जिन्हें प्रीतिकर हो वे खादी पहन सकते हैं, जिन्हें प्रीतिकर हो वे चरखा चला सकते हैं। किसी को रुकावट डालने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन खादी को आर्थिक-संयोजना का, इकॉनामिक प्लानिंग का हिस्सा नहीं समझा जा सकता और खादी को आर्थिक-सिद्धांत नहीं माना जा सकता।

मैं खुद खादी पहनता हूं। मुझे खुद दूसरे कपड़े के बजाय खादी ज्यादा पोएटिक, ज्यादा काव्यात्मक मालूम पड़ती है। मुझे खुद खादी में ज्यादा पवित्रता, ज्यादा स्वच्छता, ज्यादा सफेदी मालूम पड़ती है। लेकिन यह मेरी पसंद हुई व्यक्तिगत। यह हॉबी हो सकती है, यह अपना सुख हो सकता है। और हॉबी कि लिए महंगे से महंगा

खर्च करना पड़ता है--सो खादी काफी महंगा हॉबी है, काफी महंगी हॉबी है। जो धोती दस रुपये में मिल सकती है मील की, वह खादी कि पचास रुपये में मिलेगी। और वह पचास में भी सिर्फ इसलिए मिलती है कि कर चुकाने वालों से पंद्रह रुपये लेकर खादी पहनने वालों को चुकाए जा रहे हैं। पैंसठ रुपये की चीज पचास रुपये में पड़ती है पहनने वाले को। पंद्रह रुपये सरकार दे रही। यह हैरानी की बात है। जिसको शौक हो वह पैंसठ, सत्तर, अस्सी खर्च करे। लेकिन जो खादी नहीं पहनता है, उससे पंद्रह रुपये उसकी जेब में से निकाल कर मुझे खादी पहनाई जाए यह समझ के बाहर है। इसका कोई अर्थ नहीं, यह खतरनाक बात है।

लेकिन हम विचार करने को राजी होने को राजी नहीं हैं। हम सोचने को ही राजी नहीं हैं। इससे क्या पता चलता है? सोचने से इतना भयभीत होने का मतलब क्या होता है? इसका साफ मतलब यह होता है कि हम बहुत भलीभांति जानते हैं कि इन चीजों पर सोचा तो सोचने में ये चीजें बह जाएंगी, ये बच नहीं सकतीं। जब आदमी डरता है कि जिन चीजों पर सोचने से चीजों के मिट जाने का डर है, अनकांशसली वह अनुभव करता है कि हमने सोचा कि ये गईं, तो वह सोचने से भयभीत हो जाता है। फिर वह कहता है सोचो मत, जो है वह ठीक है, आंख बंद रखो। आंख बंद रखने का मतलब यह है कि आप जानते हैं आंख खोलते से जो दिखाई पड़ेगा वह वही नहीं होने वाला है, जो आप समझते रहे हैं। वह तथ्य दूसरा है जो आंख खोलने से दिखाई पड़ेगा। इसलिए कमजोर लोग आंखें बंद करना शुरू कर देते हैं, लेकिन अगर पैर में फोड़ा है और उसे छिपा लें आप, तो आप स्वस्थ नहीं हो जाते और अगर कोई कहे कि जरा आपका कपड़ा उठाइए और आप कहें कि क्यों कपड़ा उठाऊं, क्यों तुमने मेरी कपड़ा उठाने की बात की, तो उससे भी आप स्वस्थ नहीं हो जाते हैं, बल्कि आपकी यह घबड़ाहट बताती है कि कपड़े के पीछे कुछ आप छिपाए हैं जिसे आप जानते भी हैं और नहीं भी जानना चाहते हैं; जिसे आप पहचानते भी हैं लेकिन पहचानना भी नहीं चाहते हैं, मुकरना चाहते हैं, पीठ फेर लेना चाहते हैं।

जब भी कोई कौम विचार करने से डरने लगती है तो समझ लेना उस कौम ने कुछ बेवकूफियां पाल रखी हैं जिनकी वजह से वह विचार करने से डरती है।

सत्य कभी भी विचार करने से भयभीत नहीं होता, असत्य हमेशा विचार करने से भयभीत होता है।

हमारे महापुरुष असत्य हैं या सत्य, अगर उन पर विचार करने से भय मालूम होता है तो तुम समझ लेना कि तुम बहुत भीतर मन में जानते हो कि ये महापुरुष हमारे बनाए हुए हैं, ये असली महापुरुष नहीं हैं। लेकिन अगर तुम विचार करने की हिम्मत कर सकते हो, तो ही पता चलता है कि तुमने स्वीकार किया है कि महापुरुष में कुछ बल है। तुम्हारे विचार करने से वह नष्ट हो जाने वाला नहीं है। जो व्यर्थ होगा वह जल जाएगा। हम सोने को आग में डालने से डरते नहीं, क्योंकि जो कचरा होगा वह जल जाएगा और जो सोना है वह बच कर बाहर निकल आएगा। लेकिन कचरा ही कचरा पास में हो तो उसको हम फिर आग में डालने से बहुत डरेंगे।

मैं गांधी को आग में डालने से नहीं डरता हूं, क्योंकि मैं मानता हूं उनमें बहुत कुछ सोना है; कचरा जल जाएगा और सोना निखर कर बाहर आ जाएगा। लेकिन उनके भक्त बहुत भयभीत होते हैं। उनके भक्त क्या डरते हैं कि गांधी जल जाएंगे विचार करने से उन पर? उनके एक भक्त ने अभी चिट्ठी लिखी है कि मैं और कुछ भी करूं, कम से कम गांधी को सिर्फ गांधी न कहा करूं, महात्मा गांधी या गांधी जी कहा करूं।

अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। यह थोड़ा सोचना जैसा है कि हम गांधी को गांधी जी कहें, इसमें ज्यादा आदर है या गांधी कहने में ज्यादा आदर है? परमात्मा के साथ हम जी नहीं लगाते कि परमात्मा जी। परमात्मा को हम कहते हैं परमात्मा। परमात्मा को हम कहते हैं तू। आप आएंगे तो मैं आपसे कहूंगा आप। परमात्मा से कभी किसी से "आप" कहा है? परमात्मा से हम कहते हैं "तू", हे परमात्मा तू! तू अनादर नहीं है। तू अनादर नहीं

है और न गांधी अनादर है। इतना प्रेम है मेरे मन में कि "जी" लगाने से मुझे नहीं लगता कि गांधी की इज्जत बढ़ती है। ये छोटे-मोटे लोगों के साथ जी लगाने से इज्जत बढ़ती होगी। गांधी के साथ जी लगाने से इज्जत कम होती है। जी हम उनके साथ लगाते हैं जिनके साथ लगाने जैसा भीतर कुछ भी नहीं है, बाहर से जी लगा कर इज्जत जोड़ देते हैं।

महावीर को मैं महावीर कहता हूं, उनको महावीरजी कहने से ऐसा लगेगा कोई किराने की दुकान के मालिक हैं। गौतम बुद्ध को मैं बुद्ध कहता हूं, बुद्धजी लगाने से वे ओछे और छोटे पड़ जाएंगे। गांधी को मैं उसी कोटि में मानता हूं जहां आदमी "आप" के ऊपर उठ जाता है और "तू" में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए मैं जी वगैरह नहीं लगाऊंगा और न महात्मा कहूंगा। लेकिन ये घबड़ाते कैसे हैं लोग कि जी नहीं लगाया तो मुश्किल हो गई। ये अपनी ही बुद्धि से सोचते हैं। वह जितनी उनकी हैसियत है। अगर उनसे कोई जी न लगाए और आप न कहे तो वे बेचैनी में पड़ जाएंगे। बेचारे अपनी ही शक्ल में वे महापुरुषों को भी सोचते रहते हैं। नहीं, मैं नहीं लगाऊंगा और आप लगाते हो तो आपसे कहूंगाः मत लगाना, अपमानजनक है, इनसल्टिंग है।

हम अपने महापुरुष को तो उतने प्रेम से पुकार सकते हैं, बीच में जी और आदर सब लगाने की जरूरत नहीं है। शायद आपको खयाल न हो कि हम जब आदर प्रकट करते हैं तो हम क्यों प्रकट करते हैं? जब हम शब्दों में आदर बताते हैं तो क्यों बताते हैं? शब्दों में आदर इसलिए बताना पड़ता है कि अगर शब्दों में न बताएं तो और तो कोई आदर हमारे पास नहीं है। शब्द ही आदर है।

जब हृदय में आदर होता है तो शब्दों में हम विचार नहीं करते, फिक्र नहीं करते और जब हृदय में आदर नहीं होता तो हम शब्दों की बहुत फिक्र करते हैं कि क्या कहा क्या नहीं कहा, कौन सा शब्द उपयोग किया, कौन सा नहीं किया।

बर्नार्ड शॉ, उसका संक्षिप्त नामः जे.बी.एस.। वह कहता थाः जॉर्ज बर्नार्ड शॉ। उसकी मां मर गई, तो उस दिन से उसने जे.बी.एस. लिखना बंद कर दिया, सिर्फ बी.एस. लिखने लगा, बर्नार्ड शॉ लिखने लगा। उसके मित्रों ने पूछा कि तुम जे.बी.एस. क्यों नहीं लिखते हो अब? उसने कहा कि सिर्फ मेरी एक मां थी जिसका मेरे ऊपर इतना प्रेम था जो मुझे जॉर्ज कहती थी। वह चली गई दुनिया से। अब इतना प्रेम मेरे ऊपर किसी का भी नहीं है कि कोई मुझे जॉर्ज कहे। वह सब मुझे बर्नार्ड शॉ कहते हैं। बर्नार्ड शॉ उतना प्यारा नाम नहीं है। मेरी मां उठ गई दुनिया से। उसका इतना प्रेम था कि वह मुझसे जॉर्ज कहती थी। अब वह जॉर्ज मैंने अलग कर दिया। अब कोई भी उससे मुझे बुलाएगा नहीं, कोई भी मुझे जॉर्ज कह कर नहीं कहेगा। बर्नार्ड शॉ ने कहा कि मेरी मां के मरने से मैं पहली दफा ब.ूढा हो गया हूं। मेरी मां जिंदा थी तो मैं बूढ़ा नहीं था। मुझे लगता था कि मैं अभी बच्चा हूं, क्योंकि मुझे जार्ज कह कर बुलाती थी। इतना प्रेम था उसका। अब मैं बूढ़ा हो गया, अब मेरी मौत करीब आने लगी। अब मुझे लगता है कि अब इतना प्रेम कोई भी मुझे नहीं करता है।

प्रेम के अपने रास्ते हैं, श्रद्धा के अपने रास्ते हैं। लेकिन जो न प्रेम जानते हैं, न श्रद्धा जानते हैं सिर्फ थोथा शिष्टाचार जानते हैं, उनको बेचारों को प्रेम और श्रद्धा के रास्तों का कोई भी पता नहीं हो पाता। वे शिष्टाचार को ही सब कुछ समझते हैं। शिष्टाचार उनके बीच होता है जिनके बीच प्रेम नहीं है। जिनके बीच प्रेम है उनके बीच शिष्टाचार समाप्त हो जाता है। महापुरुष हम उसे कहते हैं जिसके साथ समाज का शिष्टाचार समाप्त हो गया है, उससे हम सीधी-सीधी बात कर सकते हैं। इसलिए मैं क्षमा नहीं मांगूंगा कि गांधी जी को गांधी जी नहीं कहता या महात्मा नहीं लगाता। नहीं, कभी नहीं लगाऊंगा, लगाने की कोई जरूरत नहीं है।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि गांधी जी ने, गांधी के विचार ने देश को आजादी दिलाई। मैं मना नहीं करता। यह भी मैं मना नहीं करता कि उन्होंने देश के लिए कितना काम किया। शायद इस देश के पूरे इतिहास में किसी एक मनुष्य ने देश के लिए इतना काम नहीं किया है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है, इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उनके प्रति अंधे हो जाएं। वे भी पसंद नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति अंधे हो जाए, वे भी पसंद नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति सोचना-विचारना बंद कर दें। उनका हमारे ऊपर ऋण बहुत ज्यादा है। इसीलिए तो मैं सोचता हूं कि उन पर हमें बार-बार विचार करना चाहिए। उन पर बार-बार विचार करने का अर्थ ही यही है कि मैं मानता हूं कि उनका ऋण हमारे ऊपर बहुत ज्यादा है और उस ऋण से उऋण होने का एक ही रास्ता है कि हम निरंतर सोचें, सोचें, निखारें उनके विचार को और उनके विचार में जो श्रेष्ठतम है उसके अनुकूल देश को ले जा सकें।

लेकिन श्रेष्ठतम का पता कैसे चलेगा? एक बड़ी जिंदगी बहुत बड़ी जिंदगी है, जिंदगी में हजारों-लाखों घटनाएं होती हैं, उन लाखों घटनाओं में चुनना पड़ता है कि क्या है श्रेष्ठ, क्या है भविष्य के योग्य, क्या व्यर्थ हो गया, क्या अप्रासंगिक हो गया, क्या समय के बाहर हो गया--यह सब सोचना पड़ता है। महापुरुष भी पचास वर्ष, साठ वर्ष, सत्तर वर्ष जीता है, तो सत्तर वर्ष में हजारों घटनाएं घटती हैं। वे सारी की सारी घटनाएं देश के भविष्य के लिए उपयोगी नहीं होतीं, नहीं हो सकती हैं। उनमें से क्या हैं, छांट लेना हैं। लेकिन हम ऐसे अंधे लोग हैं कि जब हम किसी को महापुरुष कहते हैं तो उसके सब कुछ को महापुरुष मान लेते हैं। इससे बड़ी भूल पैदा हो सकती है। इससे बड़ी बुनियादी भूल पैदा हो सकती है।

महापुरुष जो करता है, महापुरुष जिस समय में जीता है, जिस सामयिक प्रसंगों पर चुनौती झेलता है उसमें से बहुत सा उसी दिन व्यर्थ हो जाता है। उसमें से बहुत सा बाद में व्यर्थ हो जाता है। शाश्वत बहुत थोड़ा रह जाता है। अधिकतम तो कंटेम्प्रेरी प्रॉब्लम होता है। इटरनल प्रॉब्लम तो बहुत कम होता है। और गांधी के जीवन में बुद्ध या महावीर की बजाय कंटेम्प्रेरी प्रॉब्लम ज्यादा है। महावीर और बुद्ध की बात में सनातन प्रश्न ज्यादा है, क्योंकि उन्होंने समाज और जीवन के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ ही नहीं।

गांधी ने जीवन और समाज के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ है। गांधी के व्यक्तित्व और विचार में, गांधी के कर्म में और जीवन में नब्बे प्रतिशत सामयिक है, दस प्रतिशत सनातन है। उस सामयिक से हमको छुटकारा करना होगा और सनातन की खोज करनी पड़ेगी, लिखा नहीं है कि क्या सनातन है और क्या सामयिक है, खोज करनी पड़ेगी। सोच करना पड़ेगा, विचार करना पड़ेगा, काट-छांट करनी पड़ेगी। जो गांधी व्यतीत हो गए, अतीत हो गए, उन्हें हटा देना होगा। जो गांधी आगे भी सार्थक होंगे, कल भी साथ होंगे, उनको बचा लेना होगा। अंततः निखरते-निखरते वही सूत्र शेष रह जाएंगे जो सनातन हैं, जिनका समय से कोई संबंध नहीं, जिनका मनुष्य के शाश्वत जीवन से संबंध है। तब हम गांधी को निखार पाएंगे।

लेकिन भक्त अंधा होता है, वादी अंधा होता है। वह कहता है कि हम पूरा स्वीकार करेंगे या पूरा अस्वीकार करेंगे। वह दो बातें मानता है। या तो पूरा स्वीकार करेंगे या पूरा अस्वीकार करेंगे। जीवन में इस तरह हां और न में उत्तर नहीं होते। जीवन में कुछ स्वीकृति होती है, कुछ अस्वीकृति होती है। जीवन कोई इकट्ठा हां और न नहीं है कि हमने कह दिया हां और हमने कह दिया न। भक्त कहता है कि या तो हम कहेंगे ना, कहेंगे कि नहीं मानते गांधी को या कहेंगे कि मानते हैं तो पूरा मानते हैं। ये दोनों ही दृष्टियां गलत हैं। अंधी दृष्टियां हैं। सोचना होगा, अपने विवेक से खोजना होगा, देखना होगा, परखना होगा, जांच करनी होगी, प्रयोग करने होंगे और तब जो विवेक के अनुकूल बचता जाएगा वही शाश्वत होता चला जाएगा। शेष समय की परिधि में खोता

चला जाएगा। खो ही जाना चाहिए। समय के साथ ही वह खो जाना चाहिए जिसे समय ने पैदा किया था। लेकिन हम अपने पागलपन में उसको बचा कर रखना चाहते हैं। उससे हमारे महापुरुष को फायदा नहीं होता, नुकसान होता है, क्योंकि महापुरुष रोज-रोज नया नहीं हो पाता, ताजा नहीं हो पाता, बासा पड़ जाता है, पुराना पड़ जाता है। वह जो-जो बासा पड़ जाता है उसे काट देने की जरूरत है ताकि नया ताजा रोज निखर कर बाहर आता चला जाए और जिसे हमने प्रेम किया हो, जिसे हमने श्रद्धा दी हो वह हमारे लिए सनातन साथी बन सके। लेकिन हम जिस तरह से व्यवहार करते हैं, इस तरह से यह नहीं हो सकता है।

मैं नहीं कहता हूं कि गांधी का हमारे ऊपर कोई ऋण नहीं है, कोई पागल होगा जो ऐसा कहेगा। ऋण उनका महान है। लेकिन उस ऋण के कारण इतने मत दब जाना कि गांधी का जो सामयिक तत्व है वह हमें सत्य जैसा मालूम पड़ने लगे। वह उचित नहीं है।

किसी मित्र ने पूछा है कि आप तो गांधी जितने बड़े नहीं हैं, तो आप उनकी आलोचना क्यों करते हैं?

अभी तक कोई तराजू कहीं दुनिया में नहीं है कि तौला जा सके कि कौन बड़ा है और कौन छोटा है। कोई तराजू दुनिया में आज तक विकसित नहीं हुआ कि हम तौल सकें कौन बड़ा है, कौन छोटा है। सच बात तो यह है, एक-एक आदमी अपने-अपने जैसा है। कंपेरिजन की कोई संभावना नहीं है, कोई उपाय नहीं है, कोई तुलना नहीं है। गांधी की किसी से तुलना नहीं हो सकती। आपकी भी किसी से तुलना नहीं हो सकती। एक साधारण से साधारण आदमी भी अनूठा और अद्वितीय है। न किसी से छोटा है, न किसी से बड़ा, क्योंकि छोटे और बड़े हम तब हो सकते हैं जब हम एक जैसे हों। एक जैसे अगर हम हों, तो पता चल सकता है कौन छोटा है, कौन बड़ा। लेकिन हममें से प्रत्येक अपने जैसा है, दूसरे जैसा है ही नहीं, इसलिए छोटे-बड़े को तौलने की, कंपेयर करने की, तुलना करने की कोई सुविधा नहीं है। गांधी को जब आप बड़ा कहते हैं तब भी आप भूल कर रहे हैं, क्योंकि जैसे ही आपने तौला, बड़ा आपने कहा, तो आपने तौल शुरू कर दी, आपने गांधी को तौल लिया, गांधी आपके हाथ से तुल गए। फिर कल कोई दूसरा मिल सकता है, वह कहेगा, महावीर और बड़े हैं, बुद्ध और बड़े हैं। यही पागलपन तो हजारों साल से चल रहा है। जैन कहते हैं कि महावीर से बड़ा कोई भी नहीं है। बौद्ध कहते हैं, बुद्ध से बड़ा कोई भी नहीं है। मुसलमान कहते हैं, मोहम्मद से बड़ा कोई भी नहीं है। ईसाई कहते हैं, जीसस से बड़ा कोई भी नहीं है। इसी पागलपन से सारी मनुष्य-जाति कट गई और नष्ट हो गई। फिर वही जारी रखोगे कि कौन बड़ा है, कौन छोटा? कैसे तय करोगे? कौन तय करेगा? कौन है निर्णायक? जजमेंट कौन देगा? जजमेंट आप दोगे? अगर आप जजमेंट दे सकते हो कि गांधी बड़े हैं तो आप गांधी से बड़े हो गए, क्योंकि जजमेंट देने वाला हमेशा बड़ा हो जाता है। आप हो निर्णायक? तब तो स्वभावतः गांधी खिलौना हो गए। तराजू पर आपने रख कर तौल लिया। कौन किसको तौलेगा?

ये हमारे सोचने के ढंग, व्यक्तियों को तौलने के ढंग निहायत इम्मैच्योर, अपरिपक्व हैं। कोई मनुष्य तौला नहीं जा सकता है। गांधी तो ठीक हैं, साधारण से साधारण मनुष्य नहीं तौला जा सकता। कोई नहीं जानता है कि छोटे से मनुष्य में क्या घटना घटे।

एक गांव में बुद्ध का आगमन हुआ था। गांव में था एक गरीब चमार। गांव के सम्राट को तो पता चल गया था कि बुद्ध आते हैं, लेकिन गरीब चमार को कहां फुर्सत थी, कहां पता चला, उसे पता भी नहीं था कि बुद्ध आते हैं। बुद्ध के आने का पता चलने की भी सुविधा तो चाहिए। वह बेचारा दिन भर अपने काम में रहा, रात थका-

मांदा सो गया। सुबह अपने झोपड़े में उठा। उस चमार का नाम था सुदास। उठा, झोपड़े के पीछे छोटी सी एक गंदी तलैया थी। उठा सुबह तो देखा कि उसमें एक कमल का फूल खिला है। बे-मौसम का फूल था, अभी मौसम नहीं था कमल का। वह सुदास बहुत हैरान हुआ। फिर बहुत खुश हुआ। फूल तोड़ कर भागा बाजार की तरफ कि कोई न कोई जरूर रुपया दो रुपया इस फूल का दे देगा। फूल बड़ा था, सुंदर था, बे-मौसम का था। जरूर इसके पैसे मिल जाएंगे।

वह बाजार की तरफ भागा चला जा रहा है कि नगर का जो धनपति था, सेठ था, नगर सेठ था, वह रथ पर बैठा हुआ आ रहा है। वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया। उस धनपति ने कहा कि कितना लोगे इस फूल का? सुदास ने कहाः जो भी आप दे देंगे, आपकी कृपा। उसने अपने सारथी को कहा कि पांच रुपये इसे दे दो। सुदास तो हैरान हुआ, क्योंकि पांच बहुत ज्यादा थे--वह सोचता था एक भी मिल जाए तो बहुत। वह एकदम हैरान हुआ। उसने कहाः पांच रुपये! यह बात ही चलती थी कि पीछे से उस देश का वजीर, मंत्री घोड़े पर सवार आ गया। उसने कहा कि बेचना मत फूल। फूल मैंने खरीद लिया। धनपति जितना देते होंगे उससे पांच गुना मैं दूंगा। सुदास तो हक्का-बक्का हो गया! उसने कहाः पच्चीस रुपये! आप कहते क्या हैं, इस साधारण से फूल के! क्या बात है? आप पांच देते थे, धनपति ने कहा कि फूल मैं खरीदूंगा किसी भी कीमत पर, वजीर जितना बोलता जाए, मैं पांच गुना ज्यादा दूंगा। वह तो मांग बढ़ती चली गई। और सुदास भौचक्का! वह ठहराव मुश्किल हो गया। तभी राजा का रथ भी आ गया और उस राजा ने कहा, फूल खरीद लिया गया। जो भी दाम तू मांगेगा, मुंहमांगा दाम दे दूंगा, जो तू मांगेगा।

सुदास कहने लगा कि आप सब पागल हो गए हैं! इस फूल की कोई कीमत नहीं है। हजारों कीमत तो बढ़ चुकी हैं और आप कहते हैं मुंहमांगा, जो मैं मांगूंगा। बात क्या है सम्राट? सम्राट ने कहाः शायद तुझे पता नहीं, बुद्ध का आगमन हो रहा है गांव में। हम उनके स्वागत को जाते हैं। बे-मौसम का फूल उनके चरणों में चढ़ाएंगे, वे भी हैरान हो जाएंगे कि कमल, बे-मौसम का फूल! बुद्ध के चरणों में यह फूल मैं ही चढ़ाऊंगा। नगर सेठ ने कहा कि नहीं, यह नहीं हो सकेगा, सम्राट! फूल को मैंने पहले देखा है। पहले मैंने खरीद-फरोख्त शुरू की है। मैं पहला ग्राहक हूं। इनका विवाद चलता था। सुदास ने कहाः क्षमा करिए, फूल मुझे बेचना नहीं। जब बुद्ध आते हैं गांव में तो फूल मैं ही चढ़ा दूंगा। पर वे कहने लगे, सुदास तू पागल है क्या? जितना पैसा चाहे ले ले, तेरी चमारी मिट जाए सदा को, गरीबी मिट जाए सदा को। तेरे जन्म-जन्म आगे के बच्चे को भी सुख हो जाएगा। जितना मांगे ले ले। सुदास ने कहा कि नहीं, अब पैसे का क्या करेंगे, मैं ही चढ़ा दूंगा बुद्ध को।

नहीं बेचा फूल। सम्राट नहीं खरीद सके एक गरीब का फूल, एक चमार का। सम्राट तो रथ पर पहुंच गए पहले, नगर सेठ पहुंच गया, वजीर पहुंच गया। उन्होंने बुद्ध से जाकर यह कहा कि आज एक अदभुत घटना घट गई। एक गरीब आदमी, जिसकी कोई हैसियत नहीं, जिसके पास कल का खाना नहीं होता, उसने लाखों रुपये पर लात मार दी और कहता है, फूल मैं ही चढ़ाऊंगा। सुदास आया पीछे पैदल चलता हुआ। बुद्ध के चरणों में फूल रख कर हाथ जोड़ कर सिर पैर पर रख कर रोने लगा।

बुद्ध ने कहाः पागल है सुदास तू, फूल बेच देना था।

सुदास ने कहा कि भगवन, संपत्ति ही सब कुछ नहीं है। संपत्ति से भी बड़ा कुछ है और आपके पैरों में फूल रख कर मुझे जो मिल गया वह मुझे कितनी भी संपत्ति से कभी नहीं मिल सकता था।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि भिक्षुओ, देखो इस सुदास को। एक साधारण से जन में भी, एक साधारण से मनुष्य में भी परमात्मा का इतना प्रकाश पैदा हो सकता है। सुदास है गांव का एक चमार, एक

दीन-हीन, लेकिन इतने प्रेम की संभावना, इस सुदास में; इतने प्रेम की संभावना, इतनी श्रद्धा की संभावना, इस सुदास में।

बुद्ध कहने लगे कि मैं घूमता हूं वर्षों से गांव-गांव, कितने-कितने लोग मिले। नहीं सुदास, तू अद्वितीय है। तेरा जैसा बस तू ही है।

कौन कहेगा, कौन है बड़ा, कौन है छोटा? कौन कहेगा, किसके भीतर से क्या प्रकट हो सकता है? कौन जानता है कौन सा बीज कितना बड़ा फूल बनेगा? लेकिन जल्दी से तौलने की हमारी इच्छा बड़ी तीव्र होती है।

नहीं कोई जरूरत है तौलने की। गांधी गांधी हैं, मैं मैं हूं, आप आप हैं। तौलने का कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन यह गांधी को बड़ा कहने का कारण क्या हो सकता है फिर? अगर हम तौल नहीं सकते, समर्थ नहीं तौलने में, तो यह कहने का कारण क्या हो सकता है कि गांधी महान हैं? शायद आपको इस सीक्रेट का कोई पता न हो, यह एक बड़ा राज है।

जब हिंदू यह कहता है कि हिंदू धर्म महान है तो आप समझते हैं उसका मतलब क्या है? वह यह कहता है कि हिंदू धर्म महान है और मैं हिंदू हूं, मैं महान हूं। यह तर्क है, यह तर्कसरणी है। जब एक आदमी कहता है भारत, भारत पृथ्वी पर सबसे महान देश है, तो मतलब आप जानते हैं क्या है? वह यह कह रहा है कि भारत सबसे बड़ा देश है, मैं भारत का निवासी हूं, मैं बड़ा आदमी हूं। पीछे अहंकार है इस तुलना के पीछे, पीछे ईगो है, आदमी बहुत होशियार है। सीधे वह कहेगा कि मैं बड़ा हूं, तो बड़ी मुश्किल बात है। वह कहता है, मेरा गुरु बड़ा है और बड़े गुरु का मैं बड़ा चेला हूं।

मैंने सुना है, फ्रांस में फिलॉसफी का एक प्रोफेसर था, एक दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर था। पेरिस के विश्वविद्यालय में वह दर्शनशास्त्र का अध्यक्ष था। एक दिन वह सुबह-सुबह आया और उसने क्लास के विद्यार्थियों को कहने लगा कि तुम्हें पता है, मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। उसके विद्यार्थियों ने कहाः आप? बेचारा गरीब शिक्षक था, फटे कपड़े पहने हुए था। समझ गए उसके विद्यार्थी कि हो गए सज्जन पागल। दार्शनिकों के पागल हो जाने की संभावना रहती ही है, दिमाग इनका खराब हो गया मालूम होता है।

एक विद्यार्थी ने पूछाः महाशय आप अपने बाबत कह रहे हैं कि आप दुनिया के सबसे बड़े आदमी हैं? आप? उसने कहाः हां, मैं कह रहा हूं कि मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। न केवल मैं कह रहा हूं, मैं तर्कशास्त्र का अध्यापक हूं, मैं सिद्ध भी कर सकता हूं।

उसके विद्यार्थियों ने कहाः बड़ी कृपा होगी, अगर आप सिद्ध कर सकेंगे।

उसने छड़ी उठाई और नक्शे के पास गया जहां दुनिया का नक्शा टंगा था क्लास में। उसने कहा कि मेरे बच्चो, मैं तुमसे पूछता हूं कि इस सारी बड़ी पृथ्वी पर सबसे महान और सबसे श्रेष्ठ देश कौन सा है? वे सभी फ्रांस के रहने वाले थे। उन सबने कहा कि निश्चित ही फ्रांस, इसमें कोई संदेह है? यह तो सुनिश्चित है कि फ्रांस से महान कोई भी देश नहीं है।

उसने कहाः तब एक बात तय हो गई कि फ्रांस सबसे महान है इसलिए बाकी दुनिया की फिकर छोड़ो। अब अगर मैं सिद्ध कर सकूं कि फ्रांस में मैं सबसे महान हूं तो मामला हल हो जाएगा।

विद्यार्थी तब भी नहीं समझे कि तर्क कहां जाएगा। फिर उसने कहा कि फ्रांस में सबसे महान और श्रेष्ठ नगर कौन सा है?

तो विद्यार्थियों ने कहा कि पेरिस। वे सभी पेरिस के रहने वाले थे

उसने कहाः तब फ्रांस की भी फिकर छोड़ दो। अब सवाल सिर्फ पेरिस का रह गया। अगर मैं सिद्ध कर दूं कि पेरिस में मैं सबसे महान हूं तो बात खत्म हो जाएगी। तब विद्यार्थियों को शक पैदा हुआ कि यह तो मामला बहुत अजीब है, यह कहां ले जा रहा है आदमी। और तब उस प्रोफेसर ने पूछा कि अब पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान कौन सा है? युनिवर्सिटी, विश्वविद्यालय, विद्या का केंद्र, मंदिर।

विद्यार्थियों ने कहा कि यह तो ठीक है, विश्वविद्यालय ही सबसे पवित्रतम और श्रेष्ठतम स्थान है। तब उनको तर्क साफ हो चुका था।

उस प्रोफेसर ने कहाः अब मैं तुमसे पूछता हूं, पेरिस को जाने दो, रह गई युनिवर्सिटी का कैंपस। युनिवर्सिटी के इस कैंपस में सबसे श्रेष्ठतम विषय और डिपार्टमेंट कौन सा है?

वे सभी विद्यार्थी फिलासफी के विद्यार्थी थे। उन्होंने कहाः फिलासफी।

और उसने कहा कि अब तुम समझे कि मैं फिलासफी का हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट हूं।

इतना लंबा तर्क इस छोटे से "मैं" को सिद्ध करने के लिए! लेकिन आदमी की चालाकियां, कनिंगनेस पहचानना बहुत मुश्किल है। वह कहता है, भारत महान देश है, और उसके भीतर जाकर पूछो उसके प्राणों के प्राण में, तो वह यह कह रहा है कि मैं महान हूं।

बर्नार्ड शॉ ने एक बार अमरीका के दौरे में यह कहा कि यह गैलीलियो, यह कोपेरनिकर, ये वैज्ञानिक सब गलत कहते हैं। सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। पृथ्वी सूरज का चक्कर नहीं लगाती। अब इस बीसवीं सदी में कोई ये बातें करेगा तो पागल समझा जाएगा। बर्नार्ड शॉ को लोगों ने पूछाः आप क्या कह रहे हैं? तीन सौ साल पहले लोग ऐसा जरूर मानते थे कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। लेकिन अब तो यह सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। आपके पास दलील क्या है जो आप कहते हैं कोपेरनिकर, गैलीलियो, सब गलत। बर्नार्ड शॉ ने कहाः दलील साफ है--जिस पृथ्वी पर बर्नार्ड शॉ रहता है वह पृथ्वी किसी का चक्कर कभी नहीं लगाती।

उसने हमारे अहंकार पर बड़ा गहरा मजाक कर दिया। उसने कह दिया कि सूरज ही लगाता होगा चक्कर, क्योंकि मैं बर्नार्ड शॉ इस पृथ्वी पर रहता हूं। मेरे रहने की वजह से यह पृथ्वी किसी का चक्कर लगा सकती? असंभव। यही है सेंटर वर्ल्ड का। यही पृथ्वी सारे जगत का केंद्र है। सारा जगत इसका चक्कर लगाता है। पृथ्वी का केंद्र मैं हूं जॉर्ज बर्नार्ड शॉ।

हर आदमी का तर्क यही है। भारतीय कहता है, भारत महान है। चीनी कहता है, चीन महान है। तुर्की कहता है, तुर्क महान है। मामला क्या है? हिंदू कहता है, हिंदू महान है। मुसलमान कहता है, मुसलमान महान है। जैन कहता है, महावीर महान हैं। ईसाई कहता है, जीसस महान हैं। मामला क्या है? मार्क्सिस्ट कहता है, मार्क्स महान है। गांधीवादी कहता है, गांधी महान हैं। मामला क्या है? न गांधी से किसी को मतलब, न मार्क्स से किसी को मतलब, न महावीर से किसी को मतलब, न भारत से किसी को मतलब, न चीन से किसी को मतलब। मतलब उस "मैं" से है कि मैं जहां हूं जिस केंद्र पर, उस केंद्र से संबंधित सब महान हैं, क्योंकि मैं महान हूं।

नहीं, गांधी को नहीं तौलते हैं आप, न महावीर को, न बुद्ध को। तरकीब से अपने को तौल रहे हैं और अपने को केंद्र पर खड़ा कर रहे हैं। ये तरकीबें बड़ी अधार्मिक हैं। ये तरकीबें बड़ी अपवित्र हैं। लेकिन इनका हमें होश भी नहीं आता। बर्ट्रेंड रसल ने एक किताब लिखी और किताब में उसने यह बात लिखी भूमिका में कि मेरी किताब को पढ़ने वाले आप जो सज्जन हैं, अपने रीडर को, अपने पाठक को उदबोधन किया कि मेरे प्रिय पाठक,

आप जिस देश में पैदा हुए हैं उस देश से महान कोई भी देश नहीं। उसको कई मुल्कों से पत्र पहुंचे, क्योंकि बर्ट्रेंड रसल की किताबें सारी दुनिया में पढ़ी जाती हैं। उसने भूमिका में लिखा कि मेरे प्रिय पाठक आप जिस देश में पैदा हुए हैं उस देश से महान कोई भी देश नहीं है। कई मुल्कों से पत्र पहुंचे उसके पास।

पोलैंड से एक स्त्री ने लिखा कि तुम पहले आदमी हो जिसने पोलैंड की महानता को स्वीकार किया है। जर्मनी से किसी ने लिखा कि शाबाश, तुमने स्वीकार कर लिया कि जर्मनी महान है। क्योंकि उसने तो मजाक किया था। वह मजाक कोई भी नहीं समझे। वे समझे कि हमारे मुल्क की प्रशंसा की जा रही है। हमारे मुल्क की प्रशंसा नहीं; हमारी प्रशंसा, मेरी प्रशंसा। और जो आपको भय मालूम पड़ता है कि गांधी की आलोचना मत करो, बुद्ध की आलोचना मत करो, मोहम्मद की आलोचना मत करो--नहीं तो दंगा हो जाएगा। वह आपका मोहम्मद, बुद्ध और गांधी के प्रति प्रेम नहीं है। उनकी आलोचना से आपके अहंकार को ठेस पहुंचती है। उसकी वजह से आप पीड़ित और परेशान हो उठते हैं। यह योग्य नहीं है, यह हितकर नहीं है, यह कल्याणदायी नहीं है। इससे मंगल सिद्ध नहीं होता।

मैंने यह जो कुछ बातें कहीं, एक मित्र मेरे पास आए, उन्होंने कहा कि मैं काका कालेलकर के पास गया था, तो काका कालेलकर ने कहा, मेरे बाबत कहा कि अभी उनकी उम्र कम है इसलिए गड़बड़ बातें कह देते हैं। जब उम्र बढ़ जाएगी तो बिल्कुल ठीक बातें कहने लगेंगे। वे मित्र मेरे पास खबर लेकर आए कि काका कालेलकर ने ऐसा कहा है। मैंने उनसे कहाः काका कालेलकर से कहना कि जब शंकराचार्य ने तैंतीस वर्ष की उम्र में बुद्ध का खंडन और आलोचना की, तो लोगों ने कहा इसकी उम्र कम है, उम्र बड़ी हो जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा। जब जीसस ने तीस वर्ष की उम्र में यहूदियों की आलोचना की, तो यहूदियों ने कहा, यह पागल छोकरा है, आवारा है, इसकी उम्र अभी कम है, उम्र बढ़ जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा। जब विवेकानंद ने तैंतीस-चौंतीस वर्ष की उम्र में वेदांत की व्याख्या की, तो वेदांत के बूढ़े गुरु ने कहा, अभी नासमझ है, अभी कुछ समझता नहीं, उम्र कम है।

यह उम्र की दलील बड़ी पुरानी है। लेकिन उम्र कम होने से न कोई गलत होता और न उम्र ज्यादा होने से कोई सही होता है। उम्र से बुद्धिमत्ता का कोई भी संबंध नहीं है। काका कालेलकर यह कह रहे हैं कि अगर जीसस क्राइस्ट अस्सी साल तक जीते तो ज्यादा बुद्धिमान हो जाते। वे यह कह रहे हैं कि जीसस क्राइस्ट तैंतीस साल की उम्र के थे इसलिए मंदिर में घुस गए और मंदिर में ब्याज खाने वाली दुकानों के तख्ते उलट दिए और कोड़ा उठा कर उन्होंने पुरोहितों को मार कर मंदिर के बाहर निकाल दिया। अगर जीसस ज्यादा उम्र के होते तो इस तरह की नासमझी कभी नहीं कर सकते थे। काका कालेलकर उनकी जगह होते तो इस तरह की नासमझी वे कभी भी नहीं करते। उनकी उम्र ज्यादा है, लेकिन उम्र ज्यादा होने से बुद्धिमत्ता नहीं बढ़ जाती है। उम्र ज्यादा होने से सिर्फ चालाकी और कनिंगनेस बढ़ जाती है।

मैं भी जानता हूं, मैंने गांधी की आलोचना की, उसी दिन सुबह दो मित्रों ने मुझे आकर कहा कि आप यह बात ही मत करिए, अन्यथा गुजरात की सरकार नारगोल में छह सौ एकड़ जमीन देती है, वह बिल्कुल बंद कर देगी, बिल्कुल नहीं देगी। अभी बात मत करिए, पहले जमीन मिल जाने दीजिए, फिर जो आपको कहना हो कहना। वे कहने लगे, आपकी उम्र अभी कम है। आपको पता नहीं जमीन खो जाएगी। मैंने उनसे कहा, भगवान करे मेरी उम्र इतनी ही नासमझी की बनी रहे ताकि सत्य मुझे संपत्ति से हमेशा मूल्यवान मालूम पड़े। वह जमीन जाए, जाने दें। मुझे जो ठीक लगता है, मुझे कहने दें।

भगवान न करे, इतना चालाक मैं हो जाऊं कि संपत्ति सत्य से ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ने लगे। मुझे भी दिखाई पड़ता है, काका कालेलकर को ही दिखाई पड़ता है ऐसा नहीं। मुझे भी दिखाई पड़ता है कि गांधी की आलोचना करके गाली खाने के सिवाय और क्या मिलेगा। अंधा नहीं हूं, इतनी उम्र तो कम से कम है कि इतना दिखाई पड़ सकता है कि गाली मिलेगी। लेकिन कुछ लोग अगर समाज में गाली खाने की हिम्मत न जुटा पाएं, तो समाज का विचार कभी भी विकसित नहीं होता है। कुछ लोगों को यह हिम्मत जुटानी ही चाहिए कि वे गाली खाएं। प्रशंसा प्राप्त करना बहुत आसान है, गाली खाने की हिम्मत जुटानी बहुत कठिन है। श्री देबर भाई ने मुझे उत्तर देते हुए किसी मीटिंग में अभी कहा है कि मैं गांधी जी को समझ नहीं सका हूं, इसलिए ऐसी बातें कर रहा हूं। मेरा उनसे निवेदन है कि प्रशंसा तो बिना समझे भी की जा सकती है, आलोचना करने के लिए बहुत समझना जरूरी होता है। प्रशंसा तो कुत्ते भी पूंछ हिला कर जाहिर कर देते हैं, उसके लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता की आवश्यकता नहीं है। लेकिन आलोचना के लिए सोचना जरूरी है, विचार करना जरूरी है, हिम्मत जुटानी जरूरी है और अपने को दांव पर लगाना भी जरूरी है। अब गांधी से मेरा झगड़ा क्या हो सकता है, गांधी से झगड़ कर मुझे फायदा क्या हो सकता है? कोई भी तो फायदा नहीं हो सकता। नुकसान हो सकता है। अखबार मेरी खबर नहीं छापेंगे। गांवों में मेरी सभा होनी मुश्किल हो जाएगी। अहिंसक लोग पत्थर फेंक सकते हैं, यह सब हो सकता है। इससे मुझे क्या फायदा हो जाएगा?

लेकिन मुझे लगता है कि चाहे कितना ही नुकसान हो, जो हमें सत्य दिखाई पड़ता हो उसे हमें कहना ही चाहिए, जो हमें ठीक मालूम पड़ता हो, चाहे उसके लिए कितना ही हानि उठानी पड़े, वह हमें कहना ही चाहिए। इस दुनिया को वे ही थोड़े से लोग आगे विकसित किए हैं, जिन्होंने समाज की मान्य परंपराओं की आलोचना की है, जिन्होंने समाज के बंधे हुए पक्षपातों को तोड़ने की हिम्मत की है। जिन्होंने समाज से विद्रोह किया है वे ही थोड़े से लोग इस जीवन और जगत को विकसित कर पाए हैं। जगत को उन्होंने विकसित नहीं किया है जिन्होंने अंधश्रद्धा में अंधी हां भर दी है, जगत को विकास उन्होंने किया है जिन्होंने किसी तरह का विद्रोह किया है।

मेरा आपसे निवेदन है अगर इस देश के हित में आप हैं, अगर इस देश को विकसित होना देखना चाहते हैं तो आपको विद्रोह की, विचार की आलोचना की हिम्मत जुटानी ही चाहिए, उसके बिना हम अपने देश के भविष्य को स्वर्णिम नहीं बना सकते हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि जो मैं कहता हूं वह सही है, इसका यह भी मतलब नहीं कि जो मैं कहता हूं वही सत्य है, यह तो फिर वही पागलपन हुआ, मेरे अनुयायी आपसे कहने लगेंगे कि जो मैंने कहा वह सत्य है। पहली तो बात मेरा कोई अनुयायी नहीं है, क्योंकि अनुयायी जुटाने का सर्कस करने का मुझे कोई भी रस और कोई भी सुख नहीं। वह सर्कस मुझे पसंद ही नहीं है।

मेरा कोई अनुयायी नहीं, मेरे मित्र हैं। लेकिन फिर मुझे पत्र पहुंचे कई मित्रों के कि हम तो आपके अनुयायी हैं और आपने हमको बड़ा धक्का पहुंचा दिया। मैंने कहाः तुम अनुयायी बने इससे धक्का पहुंचा। अनुयायी नहीं बनते तो धक्का नहीं पहुंचता। अनुयायी बने क्यों? तुमसे कहा किसने कि तुम मेरे अनुयायी बन जाओ? मैं अकेला काफी हूं। मेरी बात विचार करने के लिए, मेरी बात आलोचना करने के लिए, आप खूब आलोचना करें मेरी बात का, उसका खंडन करना, उसका विरोध करना, उस पर विचार करना, सारी तोड़-फोड़ के बाद अगर कोई बात मजबूरी में आपको ठीक दिखाई पड़े तो मानना। ऐसे मत मान लेना, जल्दी मत मान लेना। जल्दी मानने की कोई जरूरत नहीं है। मैं देश के विचार को गति देना चाहता हूं देश के विश्वास को नहीं। और देश का विचार गतिमान हो जाए, तो वह गांधी की भी आलोचना करेगा, वह मेरी भी आलोचना

करेगा, वह किसी की भी आलोचना करेगा। लेकिन ये जो लोग देश के विश्वास को गतिमान करना चाहते हैं, वे कहते हैं, गांधी की भी आलोचना मत करो।

मेरे भी हित में यही है कि मैं गांधी की आलोचना न करूं, तो मैं भी आलोचना किए जाने से बच सकता हूं। लेकिन आलोचना से बचने की इच्छा ही कमजोरी और कायरता का लक्षण है।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

## एक और असहमति

मेरे प्रिय आत्मन्!

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं और न ही मैंने अपने किसी पिछले जन्म में ऐसे कोई पाप किए हैं कि मुझे राजनीतिज्ञ होना पड़े। इसलिए राजनीतिज्ञ मुझसे परेशान न हों और चिंतित न हों। उन्हें घबड़ाने की और भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं है। मैं उनका प्रतियोगी नहीं हूं, इसलिए अकारण मुझ पर रोष भी प्रकट करने में शक्ति जाया न करें। लेकिन एक बात जरूर कह देना चाहता हूं, हजारों वर्ष तक भारत के धार्मिक व्यक्ति ने जीवन के प्रति एक उपेक्षा का भाव ग्रहण किया था।

गांधी ने भारत की धार्मिक परंपरा में उस उपेक्षा के भाव को आमूल तोड़ दिया है। गांधी के बाद भारत का धार्मिक व्यक्ति जीवन के और पहलुओं के प्रति उपेक्षा नहीं कर सकता है। गांधी के पहले तो यह कल्पनातीत था कि कोई धार्मिक व्यक्ति जीवन के मसलों पर चाहे वह राजनीति हो, चाहे अर्थ हो, चाहे परिवार हो, चाहे सेक्स हो--इन सारी चीजों पर कोई स्पष्ट दृष्टिकोण दे। धार्मिक आदमी का काम था सदा से जीवन जीना सिखाना नहीं, जीवन से मुक्त होने का रास्ता बताना। धार्मिक आदमी का स्पष्ट कार्य था लोगों को मोक्ष की दिशा में गतिमान करना। लोग किस भांति आवागमन से मुक्त हो सकें, यही धार्मिक दृष्टि की उपदेशना थी। इस उपदेश का घातक परिणाम भारत को झेलना पड़ा।

मोक्ष है, इस जीवन के बाद और जीवन भी हैं, लेकिन यह जीवन भी है और यह जीवन आने वाले जीवनों से जुड़ी हुई अनिवार्य कड़ी है। जो इस जीवन की उपेक्षा करता है, वह आने वाले जीवन के लिए नींव नहीं रखता। वह आने वाले जीवन को भी नष्ट करने का प्रारंभ करता है। इस जीवन के प्रति उपेक्षा नहीं चाहिए। धर्म अब तक उपेक्षा किया था। अब धर्म उपेक्षा नहीं कर सकता है, क्योंकि धर्म की उपेक्षा, इनडिफरेंस का यह परिणाम हुआ कि सारी पृथ्वी अधार्मिक हो गई। यह सारी पृथ्वी के अधार्मिक हो जाने में अधार्मिक लोगों का हाथ नहीं है, इसमें उन धार्मिक लोगों की उपेक्षा है जो जीवन के प्रति पीठ करके खड़े हो गए। अब आने वाले भविष्य में धार्मिक व्यक्ति अगर जीवन के प्रति पीठ करता है, तो उस व्यक्ति को हम पूरे अर्थों में धार्मिक नहीं कह पाएंगे।

गांधी के बाद भारत में एक नया युग प्रारंभ होता है और वह नया युग यह है कि धर्म जीवन के प्रति भी रस लेगा, जीवन के समस्त पहलुओं पर धर्म भी अपना निर्णय देगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति दिल्ली की यात्रा करे, इसका यह अर्थ भी नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति सक्रिय राजनीति में खड़े हो जाएं। लेकिन इसका मतलब यह जरूर है कि धार्मिक व्यक्ति राजनीति के प्रति उपेक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, क्योंकि राजनीति पूरे जीवन को प्रभावित करती है।

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं लेकिन आंखें रहते देश को रोज अंधकार में जाते हुए देखना भी असंभव है। उतनी कठोरता, उतनी धार्मिक आदमी की कठोरता और पथरीलापन मैं नहीं जुटा पाता हूं। देश रोज-रोज प्रतिदिन नीचे उतर रहा है। उसकी सारी नैतिकता खो रही है, उसके जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है, जो भी सत्य है, वह सभी कलुषित हुआ जा रहा है। इसके पीछे जानना और समझना जरूरी है कि कौन सी

घटना काम कर रही है। और चूंकि मैंने कहा कि गांधी के बाद एक नया युग प्रारंभ होता है, इसलिए गांधी से ही विचार करना जरूरी है।

गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे, लेकिन गांधी के आस-पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे धार्मिक नहीं थे। और इससे हिंदुस्तान के भाग्य के लिए एक खतरा पैदा हो गया। गांधी राजनीतिज्ञ नहीं थे। गांधी के लिए राजनीति आपद-धर्म थी, इमरजेंसी थी। गांधी का मूल व्यक्तित्व धार्मिक था। मजबूरी थी कि वे राजनीति में खड़े थे, लेकिन उस राजनीति में भी उनके प्राणों को वह राजनीति कहीं भी छू नहीं सकी थी। उससे वैसे ही दूर थे जैसा कमल पानी में दूर होता होगा।

लेकिन उनके आस-पास जो लोग इकट्ठे थे, वे राजनीतिज्ञ थे, वे धार्मिक लोग नहीं थे। राजनीति उनका प्राण थी। गांधी के साथ रहने की वजह से धर्म और नीति उनका आपद-धर्म बन गई थी। उनके लिए नैतिकता मजबूरी थी। गांधी के साथ चलना हो तो नैतिकता की मजबूरी उन्हें ढोनी पड़ी। गांधी के लिए राजनीति मजबूरी थी, उनके आस-पास अनुयायियों के लिए, गांधीवादियों के लिए नैतिकता मजबूरी थी। गांधी के लिए राजनीति बाहर-बाहर थी, भीतर नीति थी। उनके अनुयायियों के लिए राजनीति भीतर थी, नीति बाहर-बाहर थी।

फिर जैसे ही सत्ता आई, एक क्रांतिकारी उलट-फेर हो गया। सत्ता आते ही गांधी का जो आपद-धर्म था--राजनीति--वह विलीन हो गया, गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गए और उनके अनुयायियों का जो आपद-धर्म था--नीति--वह विलीन हो गई, वे शुद्ध राजनीतिज्ञ रह गए। सत्ता के आते ही गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गए और उनके अनुयायी शुद्ध राजनीतिक व्यक्ति हो गए और उन दोनों के बीच जमीन-आसमान का फासला हो गया। एक इतनी बड़ी खाई हो गई जो आजादी के पहले कभी भी नहीं थी। आजादी के पहले गांधी और गांधी के अनुयायी के बीच खाई बहुत कम थी। झूठी ही सही, लेकिन नैतिकता की एक पर्त थी। और झूठी ही सही, गांधी के आस-पास राजनीति का एक आवरण था। इन दोनों के कारण बीच में एक सेतु था, एक संबंध था। सत्ता आने पर यह सेतु टूट गया और यह सेतु का टूट जाना गांधी को भी दिखाई पड़ गया। और गांधी ने कहाः अब कांग्रेस की कोई भी जरूरत नहीं, उसे लोक-सेवक दल में परिवर्तित हो जाना चाहिए। क्योंकि गांधी की पैनी आंखों को यह दिखाई पड़ना कठिन नहीं हुआ कि अब यह जो राजनीतिक संस्थान खड़ा रह जाएगा, यह मुल्क को नरक की यात्रा करा देगा।

बीस साल में उसने नरक की यात्रा करा दी है। और गांधी को यह भी दिखाई पड़ गया कि मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी कोई बात अब सुनता नहीं है। गांधी, जिसकी आवाज हम चालीस वर्षों से सुनते थे, अचानक सत्ता रूपांतरित हो जाने पर, सत्ता हस्तांतरित हो जाने पर अनुभव करने लगा, मेरी कोई आवाज नहीं सुनता है। मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरा अब चलन नहीं रहा। गांधी ने यह कहा कि पहले मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीना चाहता था, लेकिन अब मेरी जीने की इच्छा भी नहीं रह गई। यह थोड़ा विचारणीय है।

यह गांधीवादी के ऊपर इससे बड़ा और कोई इल्जाम नहीं हो सकता, और कोई बड़ा अपराध नहीं हो सकता है।

गोडसे के ऊपर गांधी को मारने का अपराध छोटा है, इस अपराध के मुकाबले। कि गांधी जिनके साथ लड़े और जिनके लिए लड़े, जीत हो जाने पर गांधी को यह कहना पड़े कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी अब कोई सुनता नहीं, अब मुझे ज्यादा जीने की इच्छा नहीं होती। गोडसे ने जो गोली मारी वह तो परमात्मा की इच्छा के बिना गोडसे नहीं मार सकता था। शायद और गांधी को इससे सुंदर मृत्यु मिल भी नहीं सकती थी।

लेकिन गांधी के पीछे चलने वाले लोगों ने गांधी को जिस बुरी तरह से निराश और हताश किया, वह आश्चर्यजनक है। और वे ही सारे लोग गांधी के मर जाने के बाद बीस वर्षों से गांधी का जय-जय गान और गांधी का गुणगान कर रहे हैं। वे कहते हैं, गांधी पर विचार नहीं करना, सिर्फ प्रशंसा करनी है।

वे ऐसा क्यों कहते हैं?

वे भलीभांति जानते हैं कि गांधी की आलोचना शीघ्र ही गांधीवादियों की आलोचना बन जाएगी। इसलिए गांधी की आलोचना मत करो, ताकि पीछे छिपे हुए गांधीवादी की आलोचना संभव न हो सके। गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है। इस खेल को गांधी पर आलोचना और विचार किए बिना नहीं तोड़ा जा सकता। और इसलिए गांधीवादी एकदम भयभीत हो उठा। मैंने थोड़ी सी बातें कहीं और महीने भर से मैं इधर लौटा हूं, तो मुझे पता चला कि महीने भर से सिवाय इसके कोई और बात नहीं है--पत्रों में, चर्चाओं में, घर में, गांवों में, एक ही बात है।

इतनी आतुरता से उसने उत्सुकता क्यों ली है? वह इतनी तीव्रता से मेरे ऊपर क्यों टूट पड़ा?

उसका कारण है। स्पष्ट कारण है। गांधी पर आलोचना अंततः गांधीवादी की आलोचना बन जाएगी। और गांधी तो आलोचना के बाद और निखर कर निकल आएंगे, जैसे सोना आग से निकल आता है। लेकिन गांधीवादी के प्राण निकल जाने वाले हैं। वह नहीं बच सकता है। उसके प्राण को खतरा है, गांधी को कोई खतरा नहीं है। गांधी को क्या खतरा हो सकता है?

गांधी जैसे सच्चे आदमी को खतरे का कोई सवाल नहीं। खतरा आलोचना से सदा झूठे आदमियों को होता है और उन झूठे आदमियों की कतार गांधी के नाम पर खड़ी हो गई है। हमेशा जहां सत्ता होती है, जहां सत्ता होती है, जहां पद होता है वहां बेईमान और चोरों की कतार इकट्ठी हो जाती है। यह हो ही जाएगी।

गांधी के साथ जो लोग थे आजादी की लड़ाई में, वे धीरे-धीरे बिखर कर अलग होते चले गए। नई शकलें पीछे से आनी शुरू हो गईं। ये जो नये लोग आए थे इन नये लोगों को सत्ता से प्रेम था। वे सत्ता के लिए आए थे। और आज देश में राजनीति के नाम पर सिवाय सत्ता की होड़ के और कुछ भी नहीं हो रहा है। उनमें से किसी को इस बात की फिक्र नहीं है कि देश कहां जा रहा है और कहां जाएगा। उनको एक ही बात की फिक्र है कि उनकी सत्ता, उनका पद, उनका सम्मान, उनकी शक्ति किस तरह बनी रहे। वे इसी विचार में चिंतित, लीन और परेशान हैं। सारे देश का क्या हो रहा है इससे कोई सवाल नहीं है बड़ा, बड़ा सवाल अपने-अपने पद को बचा रखने का है।

गांधी ने कभी कल्पना भी न की होगी कि जिस सेना को उसने खड़ा किया था वह इस तरह की धोखेबाज साबित हो सकती है। लेकिन वह धोखेबाज साबित हो गई।

और उसमें भूल, एक भूल गांधी की भी थी, और वह भूल समझ लेना जरूरी है, अन्यथा हम उस भूल को आगे भी दोहरा सकते हैं। वह भूल यह थी कि गांधी ने कभी इस बात की फिक्र न की कि ये जो लोग उनके आस-पास इकट्ठे हैं, इनके जीवन में कोई धार्मिक किरण उतरी है? इनके जीवन में कोई परमात्मा का स्पर्श है? इनके जीवन में सत्य की भी कोई गहरी आकांक्षा पैदा हुई है? इनके जीवन में कोई ध्यान है? कोई समाधि है? इनके जीवन में आत्मा से जुड़ने का कोई मार्ग, कोई द्वार खुल गया है? नहीं, इसकी उन्होंने फिकर नहीं की। वे केवल सत्य और अहिंसा की वैचारिक बातें करते रहे। उनके आस-पास का आदमी सत्य और अहिंसा को विचारपूर्वक स्वीकार करता रहा, लेकिन जो विचारपूर्वक स्वीकार होता है, वह जरूरी रूप से आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो जाता है। विचार बाहर ही रह जाते हैं, भीतर नहीं जाते। भीतर तो निर्विचार जाता है। विचार भीतर नहीं जाता।

विचार तो बाहर रह जाता है। गांधी समझाने की कोशिश करते रहे--सत्य अच्छा है, अहिंसा अच्छी है, अपरिग्रह अच्छा है, वह सब समझाते रहे। जो उन्हें अच्छा दिखाई पड़ता था, उन्होंने लोगों को समझाया और जिन्होंने समझा उन्होंने सुना, ठीक समझ में आया और उन्होंने थोड़ा-बहुत उस तरह का आचरण करने का प्रयास भी किया।

लेकिन ध्यान रहे, एक आचरण आत्मा से पैदा होता है, एक आचरण बाहर से थोपा जाता है। जो आचरण बाहर से थोपा जाता है, वह आचरण जब तक हाथ में शक्ति न हो तब तक टिक सकता है, शक्ति के आते ही नष्ट हो जाता है। जो आचरण हम ऊपर से थोपते हैं, इम्पोज्ड जो होता है व्यक्तित्व, अभिनय जो होता है, ऊपर से थोपा हुआ जो होता है, वह प्राणों तक गहरा तो नहीं होता, कपड़ों की तरह बाहर होता है। यह तभी तक हमारे साथ रह सकता है, जब तक इसको टूटने का प्रतिकूल अवसर न मिल जाए। और जैसे ही प्रतिकूल अवसर मिलेगा, यह कचरा बह जाएगा, ये कपड़े बह जाएंगे और भीतर का नंगा आदमी साफ हो जाएगा।

नैतिक आदमी, जो धार्मिक नहीं है सिर्फ नैतिक है, उसके हाथ में सत्ता जाना हमेशा खतरनाक है। सत्ता में जाते ही नीति बह जाएगी और नंगा आदमी प्रकट हो जाएगा। लेकिन गांधी तो धार्मिक व्यक्ति थे, अपने आस-पास विचारपूर्वक जो नैतिक हो गए थे, उन्होंने उन पर ही सारा विश्वास कर लिया। और उस विश्वास के कारण इस देश के साथ एक अनिवार्यरूपेण विश्वासघात हो गया है। आगे भी हम यह भूल कर सकते हैं। यह हमेशा भूल संभव है। क्योंकि धार्मिक और नैतिक आदमी एक जैसे मालूम पड़ते हैं। एक व्यक्ति जिसके प्राणों से अहिंसा उठती हो, और एक व्यक्ति जिसने यह किताबों में पढ़ कर, सदगुरुओं से सुन कर सोच लिया हो कि अहिंसा अच्छी चीज है, मुझे अहिंसा का पालन करना चाहिए। इन दोनों में बुनियादी फर्क होता है। जो आदमी अहिंसा का पालन करता है, उसके भीतर तो हिंसा मौजूद रहती है, नहीं तो पालन करने की कोई जरूरत न हो। पालन हमें उसे ही करना पड़ता है जिसके विपरीत हमारे भीतर मौजूद होता है।

जिस आदमी को ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है, उसके भीतर कामवासना मौजूद होगी, अन्यथा पालन किस चीज का करेगा?

जिस आदमी को सत्य का पालन करना पड़ता है, उसके भीतर झूठ की लहरें उठती रहती हैं।

संयमी आदमी जिसे हम कहते हैं, नैतिक आदमी, वह ऊपर कुछ होता है, भीतर ठीक उलटा होता है। और अगर प्रतिकूल स्थिति आ जाए तो जो भीतर है वही सच्चा साबित होगा, जो बाहर है वह सच्चा साबित होने वाला नहीं है। बाहर बहुत कमजोर चीजें हैं, भीतर असली प्राण हैं।

धार्मिक मनुष्य भीतर से रूपांतरित होता है, नैतिक मनुष्य बाहर से।

इसलिए नैतिक मनुष्य के हाथ में सत्ता पहुंच जाना हमेशा खतरनाक बात होती है।

गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे, गांधीवादी एक नैतिक व्यक्ति हैं। और इस भेद को नहीं समझ पाने के कारण मुल्क एक अनिवार्यरूपेण एक ऐसी गलती में पड़ गया, जिससे छुटकारा होने में बहुत समय लग सकता है।

इस देश को, इस देश के प्राणों को आगे विकसित करने के लिए नीति और धर्म का बुनियादी फासला हमें समझ लेना चाहिए, अन्यथा कल हम जिन्हें फिर शक्ति देंगे, फिर सत्ता देंगे, फिर हम नैतिक आदमियों को सत्ता दे सकते हैं। सत्ता में पहुंचते से हर तरह का नैतिक आदमी चाहे वह किसी पार्टी का हो, इसी तरह का साबित होगा जिस तरह क्रांग्रेस का आदमी साबित हुआ। इसमें फर्क नहीं पड़ेगा। चाहे वह समाजवादी हो, चाहे वह साम्यवादी हो। अगर उसका सारा आचरण ऊपर से थोपा हुआ है और उसके प्राणों से कोई सच्चाई नहीं उठी है, तो वह जाकर सत्ता में पहुंच कर एकदम रूपांतरित हो जाएगा। महल के बाहर वह आदमी बहुत सेवक मालूम

होता था, महल के भीतर जाकर बहुत शासक हो जाएगा। महल के बाहर वह कहता था, मैं विनम्र हूं, आपके चरणों का दास हूं। महल के भीतर पहुंच कर वह आपको पहचान नहीं सकेगा कि आप कौन हैं और भीतर कैसे आ गए। यह होगा।

अगर भारत को सच में ही सत्य का, समता का, स्वतंत्रता का एक समाज और एक देश निर्मित करना है तो हमें यह जान लेना जरूरी है कि हिंदुस्तान में जिनके हाथ में सत्ता जानी हो उन लोगों के आमूल व्यक्तित्व के रूपांतरण की दिशा में कुछ काम होना जरूरी है।

गांधी वह काम कर सकते थे। शायद गांधी को खयाल नहीं आ सका। उन्होंने केवल नैतिक शिक्षा दी। साथ में अगर उन्होंने योग की शिक्षा पर भी चिंता की होती, समाधि और ध्यान की भी चिंता की होती, अगर उन्होंने सिर्फ रामधुन न करवाई होती, साथ में समाधि और ध्यान के भी गहरे प्रयोग चालीस वर्ष किए होते, तो इस भारत का भाग्य एक स्वर्णभाग्य बन सकता था। लेकिन वह नहीं हो सका। और आज भी वह नहीं हो रहा है।

मैं कल्पना करता हूं इस देश को एक ऐसी पार्टी की जरूरत है, एक ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, एक ऐसे बड़े आंदोलन की जरूरत है, जो आंदोलन ध्यान और समाधि के मार्ग से सत्ता के द्वार तक पहुंचता हो। तो हम इस देश को सुंदर बना सकेंगे, नहीं तो नहीं सुंदर बना सकते।

भारत की कल्पना बहुत पुरानी है, ऐसे यह है। बहुत बार यूनान में भी प्लेटो ने यह कल्पना की थी कि कब ऐसा समय होगा कि दार्शनिक राज्य कर सकेंगे। गांधी के साथ आशा बंधी थी कि शायद दुनिया में पहली बार दार्शनिकों का राज्य भारत में आ जाएगा। लेकिन गांधी के पीछे आने वाले लोगों ने सारी आशा पर पानी फेर दिया। नहीं, दार्शनिकों का राज्य नहीं बन सका। न बनने का कारण यह है कि हम दार्शनिक ही बनाने में समर्थ न हो पाए--ऐसे लोग जिनके पास अंतर्दृष्टि हो।

अब फिर सत्ता की होड़ चल रही है और सत्ता के बाजार में जितने लोग हैं, उनके पास, किसी के पास कोई अंतर्दृष्टि नहीं है। उनके पास कोई प्रभु के तरफ जाने वाला मार्ग नहीं है। उनके पास कोई प्रकाश की भीतर किरण नहीं है। बस वे सोच-विचार और सत्ता की होड़ में लगे हैं। और तब आप हैरान हो जाएंगे यह बात जान कर कि आप एक को बदलेंगे दूसरे से और आप बदल भी नहीं पाएंगे और दूसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा, तीसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा।

मैं सुनता था, कोई मुझे कहता था कि अमेरिका में कुछ मनोवैज्ञानिकों ने एक अध्ययन किया। उन्होंने यह अध्ययन किया कि जो लोग एक पति अपने जीवन में अगर आठ स्त्रियों को तलाक दे देता है या एक पत्नी अपने जीवन में आठ पतियों को तलाक देकर बदलती है, तो हर बार उसे पहले से बेहतर पति या पत्नी मिलती है या नहीं?

और अध्ययन से वे अजीब नतीजे पर पहुंचे। वे इस नतीजे पर पहुंचे कि जो पति पहली पत्नी को खोज कर लाता है, दो साल बाद उसे तलाक देता है, दूसरी स्त्री को खोज कर लाता है, महीने दो महीने में पाता है कि उसने फिर पहली जैसी स्त्री ही वापस खोज ली। पत्नी बदलती है पति को जिंदगी में आठ बार, लेकिन हर बार यह अनुभव होता है कि हर आदमी पुराना जैसा ही पति सिद्ध होता है। थोड़े दिन तक नई रौनक रहती है, फिर पुराना आदमी उसके भीतर से प्रकट हो जाता है।

तो मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे कि यह सवाल व्यक्तियों के बदलने का नहीं है। जब तक एक पत्नी अपने मन को नहीं बदल लेती, तो जिस मन से उसने पहले पति को चुना था उसी मन से वह दूसरे पति को

चुनेगी और इस बात की संभावना है कि दूसरा पति भी उन्नीस-बीस पहले पति जैसा ही सिद्ध होगा, क्योंकि चुनाव करने वाला मन वही का वही है। वह आठ पति चुन ले, तो हर बार वह करीब-करीब उन्नीस-बीस एक जैसे पति चुन लेगी। पति तो बदल जाएंगे, लेकिन चुनाव करने वाला मन, चुनाव करने वाला माइंड तो वही है।

अगर हिंदुस्तान के समाज को नई दृष्टि और नया मार्ग देना हो, तो हिंदुस्तान में जो लोग सत्ताधिकारियों को चुनते हैं, उनके मन का बदल जाना जरूरी है, अन्यथा हम रोज पुराने जैसे लोग चुन लेंगे। हम फिर, नये कपड़े होंगे, नई शक्लें होंगी, नया झंडा होगा, नये नारे होंगे, लेकिन हम फिर वही आदमी चुन लेंगे जैसे हमने पहले चुने थे। और जैसे ही सत्ता में वे लोग जाएंगे, वे फिर पुराने आदमी साबित होंगे। उनमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है।

दो बातें ध्यान रखनी जरूरी हैं। गांधी का नैतिक आंदोलन सफल नहीं हो सका। आजादी मिली, लेकिन आजादी जिस कामना से मांगी गई थी वह कामना असफल हो गई है। स्वतंत्रता मिली, उपलब्ध हुई, लेकिन स्वतंत्रता से हमने जो चाहा था, जो सपना देखा था, वह सपना पूरा नहीं हो पाया।

हां, कुछ लोगों का सपना पूरा हुआ। वृहत्तर भारत का सपना पूरा नहीं हुआ। अंग्रेज पूंजीपति के हाथ से सत्ता भारतीय पूंजीपति के हाथ में चली गई। भारतीय पूंजीपति का सपना जरूर पूरा हुआ। लेकिन भारतीय पूंजीपति भारत नहीं है। गांधी के एक शिष्य पूंजीपति ने, और अब दूसरे पूंजीपति पछताते होंगे कि जब गांधी जिंदा थे तो हमने भी सेवा क्यों न कर ली?

उनके एक शिष्य पूंजीपति ने, भारत जब आजाद हुआ तो मैंने सुना, उनके पास संपत्ति तीस करोड़ की थी। बीस साल आजादी के बाद उनके पास संपत्ति तीन सौ तीस करोड़ की है। बीस वर्षों में तीन सौ करोड़! शास्त्रों में लिखा हैः सत्संग का फल होता है। इससे सिद्ध होता है कि सत्संग का फल होता है।

मुझे पहले शक होता था कि सत्संग से फल होता है कि नहीं। अब शक नहीं होता। तीस करोड़ रुपये से तीन सौ तीस करोड़! बीस वर्ष में! संभवतः दुनिया के इतिहास में किसी एक परिवार ने इतने थोड़े समय में इतना धन संग्रह नहीं किया है। प्रत्येक वर्ष पंद्रह करोड़ रुपया! प्रत्येक महीने सवा करोड़ रुपया! प्रत्येक दिन चार और पांच लाख रुपया! पूरे बीस वर्ष से!

लेकिन वृहत्तर भारत गरीब से गरीब होता चला गया। एक तरफ संपत्ति इकट्ठी होती चली गई है, दूसरी तरफ दीनता और हीनता बढ़ती चली गई है। हिंदुस्तान के गांव में गरीब से पूछो, वह कहता है, कुछ फर्क नहीं पड़ा, इससे तो ब्रिटिश राज्य अच्छा था। कोई नहीं कहना चाहता यह कि गुलामी अच्छी थी, लेकिन जब कोई गरीब कहता है कि इससे तो गुलामी अच्छी थी, तो उसकी पीड़ा हम समझ सकते हैं। गरीब भी स्वतंत्र होना चाहता है। लेकिन स्वतंत्रता उसके लिए कुछ भी नहीं लाई। उसने भी सपने बांधे थे, उसने भी कल्पनाएं की थीं, उसने भी गोली खाई थी, वह भी जेल गया था, लेकिन उसे पता नहीं था कि यह स्वतंत्रता एक तरह के पूंजीपति के हाथ से दूसरी तरह के पूंजीपति के हाथ में रूपांतरित हो जाएगी।

गांधी को भी यह कल्पना नहीं थी। गांधी भी सोचते थे कि पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन हो जाएगा। अच्छे आदमी हमेशा अच्छी बातें सोचते हैं, लेकिन सभी अच्छी बातें सही सिद्ध नहीं होती हैं। गांधी भले आदमी थे। भले आदमी को कोई बुरा आदमी नहीं दिखाई पड़ता है।

लेकिन ध्यान रहे, बुरे आदमी को कोई भला आदमी नहीं दिखाई पड़ता है। बुरे आदमी को सब बुरे आदमी दिखाई पड़ते हैं, भले आदमी को सब भले आदमी दिखाई पड़ते हैं। लेकिन दोनों की दृष्टियां अधूरी हैं और गलत हैं। दोनों सब्जेक्टिव दृष्टियां हैं, ऑब्जेक्टिव नहीं हैं। जो है उसको नहीं देखतीं, जो हम देख सकते हैं उसको

देखती हैं। गांधी को खयाल था कि हृदय-परिवर्तन हो जाएगा। और गांधीवादी अभी भी कहे चले जाते हैं कि हृदय-परिवर्तन हो जाएगा। लेकिन जरा देखें तो, चालीस वर्ष की मेहनत के बाद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन कर पाए? और अगर खुद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाए तो गांधीवादी कितने हजार वर्षों में कर पाएंगे? इसका सोच सकते हैं, विचार कर सकते हैं? गांधी नहीं कर पाए, गांधी जैसा महिमावान व्यक्ति पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाया, बल्कि पूंजीपति ने उसकी आड़ से भी फायदा उठाने की कोशिश की। तो यह गांधीवादी कैसे हृदय-परिवर्तन कर पाएंगे?

नहीं, यह हृदय-परिवर्तन की बात के पीछे शोषण के तंत्र को चलाए रखने का आयोजन चल रहा है। हृदय-परिवर्तन नहीं होगा। फिर हम चोरों का हृदय-परिवर्तन करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं करते। हम नहीं कहते कि पुलिस नहीं रखेंगे, चोर के लिए दंड नहीं देंगे। हम चोर का हृदय-परिवर्तन करेंगे। नहीं, चोर के हृदय-परिवर्तन की हम फिक्र नहीं करते। हम कहते हैं, कोई चोरी करेगा तो दंड पाएगा, लेकिन शोषक का हम हृदय-परिवर्तन की फिक्र करते हैं। हम कहते हैं, शोषक को दंड नहीं देना है, उसका हृदय-परिवर्तन करना है। और बड़े मजे की बात यह है कि चोर बहुत छोटा चोर है, शोषक बहुत बड़ा चोर है।

मैंने सुना है कि चीन में लाओत्सु एक अदभुत विचारक हुआ। और लाओत्सु एक बार एक राज्य का कानून-मंत्री हो गया था। कानून-मंत्री होते ही पहले दिन अदालत में बैठा तो एक चोर का मुकदमा आया। एक आदमी ने चोरी की थी। चोरी पकड़ गई, सामान पकड़ गया। उस आदमी ने स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी की है। साहूकार भी खड़ा था और कहता था इसे दंड दो, इसने चोरी की है। लाओत्सु ने कहाः दंड जरूर दूंगा और उसने फैसला लिखा, उसने कहा कि छह महीने चोर को सजा और छह महीने साहूकार को भी सजा। साहूकार ने कहाः तुम पागल हो गए हो! दुनिया में कभी साहूकारों को सजा हुई है? जिनकी चोरी हुई उनको सजा दोगे? यह कौन सा कानून है? यह कहां का न्याय है? लाओत्सु ने कहाः जब तक सिर्फ चोरों को सजा मिलती रहेगी, तब तक दुनिया से चोरी बंद नहीं हो सकती, क्योंकि तुमने गांव की सारी संपत्ति एक कोने में इकट्ठी कर ली है। अब गांव में चोरी नहीं होगी तो और क्या होगा। एक आदमी के पास गांव की सारी संपत्ति इकट्ठी हो जाए तो गांव में आदमी कितने दिन तक धर्मात्मा रह सकेंगे? चोरी होगी। चोरी उनकी मजबूरी हो जाएगी। लाओत्सु ने कहा है कि मैं तो छह महीने की सजा चोर को भी दूंगा और छह महीने की सजा तुम्हें भी। क्योंकि चोर पीछे पैदा हुआ है, शोषण पहले है। शोषण पहले है, तब पीछे चोरी है। पूरा हिंदुस्तान चोर होता चला जा रहा है और सारे नेता चिल्लाते हैं कि चोरी नहीं होनी चाहिए, बेईमानी नहीं होनी चाहिए, भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए। भ्रष्टाचार होगा, चोरी होगी, बेईमानी होगी, बढ़ेगी; क्योंकि सबसे बड़ी चोरी और बेईमानी शोषण की जारी है और देश गरीब होता चला जा रहा है। नहीं, गरीब देश चोरी से नहीं बच सकता, बेईमानी से नहीं बच सकता, भ्रष्टाचार से नहीं बच सकता, रिश्वत से नहीं बच सकता।

जब संपत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाती हो तो संपत्तिहीन कितने दिन नैतिक हो सकता है, कितने दिन तक धार्मिक हो सकता है। प्राण बचाने को भी उसे अनैतिक होना पड़ता है। और नेता भी भलीभांति जानते हैं कि न चोरी रुकेगी, न बेईमानी रुकेगी। बीस वर्षों में वह रोज बढ़ती चली गई है। बीस वर्षों में हमारा प्रत्येक व्यक्तित्व का सारा महत्वपूर्ण हिस्सा नीचे गिरता चला गया है और हमारा नंगापन प्रकट होता चला गया है। लेकिन वह कहे चला जाता है कि नीति की शिक्षा दो स्कूलों में और कालेजों में, धर्म की शिक्षा दो, गीता पढ़ाओ, राम-नाम जपाओ। लेकिन सब बेईमानी की बातें हैं। गीता पढ़ाने से, राम-नाम जपाने से कोई चोरी बंद

नहीं होगी, भ्रष्टाचार बंद नहीं होगा, अनीति बंद नहीं होगी। इस देश में अनीति उस दिन बंद होगी, जिस दिन इस देश में शोषण का तंत्र टूटेगा। उसके पहले अनीति बंद नहीं हो सकती है।

लेकिन शोषण के तंत्र को तोड़ने की बात करें तो वह गांधी जी की दुहाई देते हैं। वे कहते हैं, गांधीजी कहते थे, हृदय-परिवर्तन करना होगा। वे कहते हैं कि हम गांधी जी के प्रतिकूल नहीं जा सकते। गांधी जी कहते हैं, हृदय-परिवर्तन करना होगा। गांधी जी भले आदमी थे। वे सोचते थे कि हृदय-परिवर्तन हो जाना चाहिए। वे सोचते थे, जैसा उनका हृदय था, वे सोचते थे, सबका हृदय होगा। ऐसा सबका हृदय नहीं है। हृदय-परिवर्तन नहीं होगा। हृदय-परिवर्तन करना पड़ेगा, होगा नहीं। और करना पड़ने का मतलब यह है कि देश के तंत्र को, देश की व्यवस्था को यह निर्णय लेना होगा कि शोषण हमें समाप्त करना है, किसी भी मूल्य पर समाप्त करना है। जैसे हम चोरी समाप्त करते हैं, बेईमानी को तोड़ने की कोशिश करते हैं, हत्याओं की कोशिश करते हैं रोकने की, उसी तरह हमें शोषण को भी रोकना पड़ेगा। तो यह बंद होगा।

कल ही मैं किसी से यह बात कर रहा था तो उन्होंने कहा कि आपके भी बहुत से पूंजीपति मित्र हैं, उनमें से आपने किसी को बदला अब तक कि नहीं? मैंने उनसे कहा, मैं तो मानता नहीं कि बदला जा सकता है। इसलिए बदलने का सवाल नहीं। फिर मैं यह भी नहीं मानता कि पूंजीपति को बदलना है। पूंजीपति को नहीं बदलना, पूंजीवाद को बदलना है। पूंजीपति को बदलने से क्या होगा? पूंजीपति के बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। बड़ा तंत्र है पूंजीवाद का, पूंजीपति, कसूर भी नहीं है उसका कोई। मजदूर भी विक्टिम है इस तंत्र का, पूंजीपति भी विक्टिम है इस तंत्र का। वे दोनों ही इसके शिकार हैं, इस बड़े तंत्र के जो पूंजीवाद है। इस बड़े तंत्र के, पूंजीवाद के तंत्र का पूंजीपति भी उतना ही परेशान और पीड़ित हिस्सा है, जितना कि मजदूर और दलित पीड़ित हिस्सा है। एक दलित और पीड़ित है संपत्ति के न होने से; एक पीड़ित और परेशान है संपत्ति के होने से और चारों तरफ निर्धन की कतार जुड़ी होने से। एक आदमी अगर एक गांव में स्वस्थ हो और सारा गांव बीमार हो तो सारा गांव बीमारी से परेशान रहेगा और वह आदमी जो अकेला स्वस्थ रह गया है, स्वास्थ्य से परेशान रहेगा कि कब बीमार न पड़ जाऊं। अब बीमार न पड़ जाऊं। चारों तरफ बीमारी ही बीमारी है और ये बीमार सब मिल कर कहीं मुझे बीमार न कर दें। वह स्वास्थ्य का सुख नहीं ले पाएगा, जहां चारों तरफ टी.बी. और कैंसर और घाव भरे लोग घूम रहे हों।

एक गांव में सारे लोग सड़क पर सो रहे हों और एक आदमी महल बना ले तो महल में आराम से सो सकेगा? कैसे सो सकेगा? द्वार पर पहरेदार रखना पड़ेगा। पहरेदार के ऊपर दूसरा पहरेदार रखना पड़ेगा, क्योंकि पहरेदार भी रात को घुस सकता है महल में और छुरा भोंक सकता है। कैसे सो सकेगा आराम से? और इतनी दीनता, दरिद्रता उसके आस-पास फैल जाए तो उसके चित्त पर कोई परिणाम होगा कि नहीं? वह आदमी है या पत्थर? उसके चित्त में शांति कैसे हो सकेगी? मैं बड़े से बड़े धनपतियों को जानता हूं, वे भी मेरे पास आते हैं और कहते हैं मन को शांत करने का कोई उपाय बताएं? मन बड़ा अशांत रहता है। मन अशांत नहीं रहेगा तो क्या होगा। जहां हमारे चारों तरफ इतना दुख होगा, इतना दारिद्रय होगा, इतनी दीनता होगी, हम कब तक अपने महल में यह विश्वास रख सकेंगे कि सब ठीक चल रहा है? यह कैसे हो सकेगा? और वह नीचे जो बढ़ती हुई दीनता और दरिद्रता है, उसकी लहरें, उसकी आहें, उसका रुदन, उसका उपद्रव रोज महलों से टकराएगा। रोज महलों की दीवालें घबड़ाएंगी कि कब गिर जाएं, कब गिर जाएं। उनको बचाने में उसके प्राण लग जाते हैं। जिसको हम पूंजीपति कहते हैं वह भी पीड़ित है, वह भी विक्टिम है।

पूंजीवाद के दो विक्टिम हैं। एक वे जिनके पास पूंजी नहीं है और एक वे जिनके पास पूंजी है। जिस दिन पूंजीवाद जाएगा उस दिन गरीब गरीबी से मुक्त होगा और अमीर अमीरी से मुक्त होगा। और ये दोनों रोग हैं, ये दोनों ही रोग हैं। इसलिए पूंजीवाद के जाने का मतलब पूंजीपति का अहित नहीं है। पूंजीवाद के जाने पर ही वह जो पूंजीवाद से पीड़ित व्यक्तित्व है वह भी मुक्त होकर मनुष्य का व्यक्तित्व बन सकेगा। जब तक कोई पूंजीपति है, तब तक मनुष्य नहीं हो पाता। तब तक आदमी नहीं हो पाता। तब तक वह खुल नहीं पाता, तब तक वह सहज नहीं हो पाता, तब तक इतने ज्यादा गलत समाज में इतने गलत ढंग से उसे जीना पड़ता है कि वह इतने टेंशन में, इतने तनाव में, इतनी अशांति में जीता है कि वह कैसे सहज हो सकता है? वह सहज नहीं हो पाता।

मैं एक घर में कलकत्ते में ठहरा हुआ था। उस घर में पति और पत्नी के अतिरिक्त कोई भी न था। बस वे दो ही प्राणी थे। बड़ा था महल। सब थी सुविधा। सब कुछ था उनके पास। रात बारह बजे जब मैं थक गया दिन भर के बाद और सोने जाने लगा तो उस घर के गृहपति ने कहा, क्या आप अब सो जाएंगे? मैंने कहा कि अब बारह बज गए, क्या अब भी मैं जागता रहूं? उन्होंने कहाः ठीक है, आप सो जाइए, लेकिन मैं सोचता था थोड़ी देर और बात करते। मैंने कहाः प्रयोजन? कि मुझे रात भर नींद नहीं आती। क्या हो गया तुम्हें, नींद क्यों नहीं आती? इतनी अच्छी गद्दियां तुम्हारे पास हैं। इन पर तो किसी को नींद न भी आ रही हो, जागते आदमी को बिठाल दो, तो नींद आ जाए। इतना अच्छा भोजन तुम्हारे पास है, इतना बड़ा बगीचा तुम्हारे पास है, इतनी ताजी और ठंडी हवा तुम्हारे पास है, तुम्हारी खिड़कियों से आकाश के तारे दिखाई पड़ते हैं, चांद झांकता है, तुम्हें नींद नहीं आती, हुआ क्या है? वे कहने लगे, नींद, नींद मुझे बहुत वर्षों से नहीं आती है। बस दिन-रात चिंता ही चिंता। आज इस फैक्टरी में गड़बड़ है, कल उस फैक्टरी में गड़बड़ है। वहां कम्युनिस्ट उपद्रव कर रहे हैं। वहां सोशलिस्ट उपद्रव कर रहे हैं, वहां ऊपर सरकार गड़बड़ किए चली जाती है, यहां नीचे... सब गड़बड़ ही गड़बड़ है, इस गड़बड़ में कैसे नींद आए?

इसको आप समझ रहे हैं यह आदमी बहुत सुख में है, यह पूंजीपति बहुत सुख में है, तो आप भूल में हैं, बिल्कुल भूल में हैं। संपत्ति सुख ला सकती थी, लेकिन पूंजीवाद के कारण संपत्ति सुख नहीं ला पाती है। संपत्ति उस दिन सुख बनेगी जिस दिन संपत्ति वितरित होगी, समान होगी। संपत्ति उस दिन सुख बन जाएगी। अभी संपत्ति भी दुख है। संपत्तिहीनता तो दुख है ही, संपत्ति भी अभी दुख है। संपत्ति जिस दिन वितरित होगी और समाज में जब दीन-हीन, रुग्ण और अपाहिज का वर्ग विलीन होगा और जब मनुष्य मनुष्य की भांति एक समानता के तल पर खड़ा होगा, तो समाज से बेईमानी मिटेगी, चोरी मिटेगी, गुंडागर्दी मिटेगी, नहीं तो नहीं मिट सकती है। यह सारी की सारी जो व्यवस्था हमें दिखाई पड़ती है, बाई-प्रॉडक्ट है, शोषण की, एक्सप्लायटेशन की। और ऊपर के नेता चिल्लाए चले जाते हैं कि नीति समझाओ बच्चों को। बच्चे कैसे नीति समझेंगे? नहीं समझ सकते हैं। लेकिन वे दलील देते हैं कि गांधीजी कहते थे हृदय-परिवर्तन करना है, इसलिए कोई जोर जबरदस्ती नहीं करनी है। लेकिन तुम हैदराबाद में पुलिस एक्शन ले सकते हो, तुम रजवाड़ों को मिटाने के लिए जोर जबरदस्ती कर सकते हो। तब तुम्हें खयाल नहीं आया कि राजाओं का हृदय-परिवर्तन करना चाहिए। लेकिन शोषण के मामले में एकदम हृदय-परिवर्तन और अहिंसा की ऊंची-ऊंची बातें याद आने लगती हैं।

इसका मतलब है कुछ जरूर। इसका मतलब है, तुम बोलते जरूर हो, वाणी तुम्हारी नहीं है, वाणी शोषक की है जो तुम्हारी पीठ के पीछे खड़ा है और बोल रहा है। यह वाणी तुम्हारी नहीं है गांधीवादियो! यह तुम नहीं बोल रहो हो, तुम्हारी जबान बिकी हुई है, तुम्हारी बुद्धि बिकी हुई है। तुम्हारे पीछे जो खड़ा है वह बोल रहा है

और कह रहा है कि अगर यह वाणी नहीं बोले तो अगले इलेक्शन में मुश्किल में पड़ जाओगे। यह दान-धन फिर हमसे नहीं मिलने वाला है। ये पैसे फिर हमसे नहीं मिलेंगे। वह वाणी सत्ता से जो बोल रही है वह संपदाशाली की वाणी है। सत्ता से बोलने वाले के पास अपनी अब कोई जबान नहीं है। और वह अपनी इस झूठी जबान को गांधीवाद का नाम देकर सुंदर, सत्य दिखलाना चाहता है। नहीं, चाहे गांधीजी ने कहा हो, चाहे किसी ने भी कहा हो कि हृदय-परिवर्तन से कुछ होगा, वह नहीं हो सकता है। गांधीजी के चालीस साल का अनुभव यह कहता है कि वह नहीं हो सकता है और अब तो गांधी जैसा व्यक्ति भी हमारे पास नहीं है जो हृदय-परिवर्तन के लिए जोर डाल सके। अब कौन डालेगा, कौन बदलेगा, हृदय-परिवर्तन कैसे बदलेगा?

विनोबा ने इधर कोशिश की थी एक। गांधी के पीछे गांधी से मिलता-जुलता कोई आदमी था, तो वही है। उन्होंने कोशिश की थी। बहुत श्रम किया, लेकिन कोई परिणाम न निकला। कोई परिणाम न निकला। जमीन मिली, दान मिला। इस देश में दान तो हजारों वर्षों से मिलता है। दान कोई नई बात नहीं है। दान भी मिला, जमीन भी मिली, गरीब को थोड़ी-बहुत राहत भी मिली होगी; लेकिन शोषण का तंत्र इस तरह थोड़े ही टूटता है? जिस आदमी ने दान दिया एक तरफ जमीन का, वह जाकर घर फिर योजना बना रहा है कि जितनी जमीन हाथ से निकल गई है, वह जल्दी से कैसे वापस कितनी कमाई कर लूं। इससे शोषण का तंत्र थोड़े ही बदलेगा कि एक आदमी ने दान दिया यहां दस लाख का और जाकर उसने घर योजना बनाई कि अगले वर्ष दस लाख कैसे वापस कमा लूं! उसका हृदय थोड़े ही बदल गया है। रुपये देने से थोड़े ही यह समाज बदलेगा। यह समाज तो बदलेगा इसके तंत्र के बदलने से। इसकी सिस्टम, इसकी व्यवस्था बदलने से।

तो विनोबा ने दस-पंद्रह साल दौड़-धूप करके बेचारे ने पैदल भाग-भाग कर गांव-गांव अपना जीवन नष्ट किया। कोई परिणाम नहीं हुआ। हां, जमीन मिली, और वह सर्वोदयवादी कहते हैं कि वही परिणाम है। देखो, इतनी लाख एकड़ जमीन मिल गई। जमीन के मिलने से कुछ भी होने का नहीं है। इस पूंजीवाद के तंत्र को, शोषण के तंत्र को जमीन के बंट जाने से, कुछ थोड़ी सी जमीन गरीब को मिल जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बल्कि पूंजीपति, पूंजीशाही और गांधीवादी इससे खुश हैं कि विनोबा ने थोड़ी-बहुत जमीन बांटी। थोड़ा-बहुत दान दिलवाया। उससे गरीब को थोड़ी राहत मिली। राहत मिलने से हिंदुस्तान में आने वाली समाजवादी क्रांति में रुकावट पड़ती है। जितनी राहत मिलती है, उतनी क्रांति में रुकावट पड़ती है। जितना गरीब को ऐसा लगता है कि बहुत अच्छा है, सब ठीक है, किसी तरह चल रहा है, चल जाएगा, थोड़ी जमीन भी मिल गई एक-दो एकड़, अब कुछ हो जाएगा, अब कुछ हो जाएगा। उतना ही वह जो सर्वहारा है, वह जिसके पास कुछ भी नहीं, वह क्रांति करने के लिए तत्पर नहीं हो पाता है। विनोबा ने भला काम किया, लेकिन उन्हें पता नहीं, वे हिंदुस्तान की शोषण की व्यवस्था के हाथ में खेल गए। इसीलिए दिल्ली के सत्ताधीश, करोड़पति, उनके चरणों में जाकर बैठते हैं और नमस्कार कर आते हैं। वह नमस्कार विनोबा को नहीं है, वह नमस्कार क्रांति में पड़ती हुई रुकावट को है।

बीस साल के भूदान-आंदोलन ने भारत की क्रांति में बाधा पहुंचाई, समय को लंबा किया है। शोषण का तंत्र नहीं टूटा, लेकिन शोषण का तंत्र सहने योग्य बन जाए, इसकी थोड़ी सी कोशिश भर हो पाई है और कुछ भी नहीं हो सका है। नहीं, इस तरह के कामों से कुछ भी नहीं हो सकता है। हिंदुस्तान को अपनी पूरी समाजी-व्यवस्था को अनिवार्यरूपेण बदल लेना जरूरी है। और न हृदय-परिवर्तन के लिए प्रतीक्षा करने की जरूरत है, न किसी और बात की प्रतीक्षा करने की जरूरत है। लेकिन सत्ताधिकारी जो सत्ता में है उसके पास अपनी वाणी नहीं है। जब तक इस देश का लोकमत, जब तक इस देश की लोकात्मा, जब तक इस देश के पूरे प्राण इस बात

को नहीं समझेंगे कि हम सब चाहे गरीब, चाहे अमीर, एक ही शोषण-तंत्र के परेशान पीड़ित अंग हैं और इस शोषण के तंत्र को हटा देना है तभी कुछ हो सकेगा। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आएगा, लेकिन समाजवाद से सर्वोदय आ सकता है। समाजवाद के बाद ही सर्वोदय आ सकता है, क्योंकि सर्वोदय का अर्थ है सबका उदय, सबका हित। सबका हित तभी हो सकता है जब सबका हित समान हो।

अभी गरीब और अमीर का हित समान नहीं है। इसलिए सर्वोदय नहीं हो सकता है। उनके हित प्रतिकूल हैं, विरोधी हैं, शत्रु के हित हैं। उनके हित में समानता नहीं है, इसलिए अभी समान हित का उदय नहीं हो सकता। अभी सर्वमंगल नहीं हो सकता है। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आएगा। सर्वोदय की जितनी बातें चलेंगी, समाजवाद के आने में उतनी देर होगी। उतना समय जाया होगा। लेकिन समाजवाद आए तो सर्वोदय निश्चित आ जाएगा। सर्वोदय समाजवाद की छाया है। जैसे ही शोषण का तंत्र टूटता है, तब सबका समान हित रह जाता है। तब वर्गीय हित नहीं रह जाते। तब श्रेणीगत हित नहीं रह जाते। तब क्लास इंट्रेस्ट नहीं रह जाता। तब हम सब समान हो जाते हैं और तब इस देश का उदय हो सकता है। इस देश का श्रम भी तभी जागेगा, उत्साह भी तभी जागेगा, प्राण श्रम करने के लिए, सृजन करने के लिए तभी आतुर होंगे जब प्रत्येक को ऐसा मालूम पड़ेगा यह देश हमारा है। अभी प्रत्येक को ऐसा नहीं मालूम पड़ता।

और यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब तक प्रत्येक को यह अनुभव न हो जाए कि यह देश हमारा है, दीनतम को यह अनुभव न हो जाए कि देश मेरा है--यह उसे कब अनुभव होगा? यह उसे तभी अनुभव होगा कि देश की जो संपदा है--वह मेरी है। देश की संपदा कुछ लोगों की और देश मेरा, यह बात बड़ी गड़बड़ है। यह नहीं हो सकता। संपदा किन्हीं कुछ लोगों की और देश मेरा! देश का मतलब क्या है? देश का मतलब है, देश की संपदा; देश का मतलब है, देश का सब कुछ। भूमि और आकाश, और हवा, संपत्ति और मनुष्य की शक्ति और सब कुछ। मेरा है यह देश तभी कह सकता हूं बल से, जब इस देश की सारी संपत्ति में भागीदार हूं, समान भागीदार हूं। लेकिन जब मैं समान भागीदार नहीं हूं तो यह देश मेरा कैसा है। यह दस-पांच लोगों का होगा देश। यह सत्ताधारियों का होगा देश। यह दीन का, दरिद्र का देश कैसा है? और इसलिए इस देश में एक देश का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है, एक समाज का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है। इस देश में एक अटूट एकता पैदा नहीं हो पा रही है। वह नहीं होगी। यह इंटिग्रेशन की सारी बातचीत चलेगी और कुछ भी नहीं होगा। इंटिग्रेशन, एकता, इस देश में समाजवाद का परिणाम होगी। उसके पहले नहीं हो सकती।

ये बातें मैं कहता हूं तो वे कहते हैं कि मैं गांधी जी का दुश्मन हूं। गांधी जी का मैं दुश्मन हूं या दोस्त? अगर गांधी जी की कहीं भी आत्मा होगी तो यह सोचती होगी कि जब आप ताली बजाएं समाजवाद के लिए तो आकाश में अगर वे कहीं भी होंगे तो उन्होंने भी ताली बजाई होगी! आपकी ताली के साथ उनकी ताली रही होगी। और अगर मेरी आवाज उन तक पहुंचती होगी, उन्हें लगता होगा कि मैं कहा रहा हूं कि यह देश तब होगा खुशहाल, जब प्रत्येक व्यक्ति इस देश की संपत्ति का समान मालिक होगा। तो गांधी खुश होंगे या दुखी होंगे? तो मैं गांधी के पक्ष में बोल रहा हूं या विपक्ष में बोल रहा हूं, यह मैं आप पर छोड़ देता हूं। मैं गांधीवादी के विरोध में बोल रहा हूं, गांधी के विरोध में नहीं बोल रहा हूं।

एक बार कराची में एक बड़ी कांफ्रेंस में, कांग्रेस के कुछ लोगों ने गांधी का विरोध किया और काले झंडे दिखाए और उन्होंने काले झंडे दिखा कर नारा लगाया--गांधीवाद मुर्दाबाद। गांधी मंच पर थे, माइक पर थे। उन्होंने उत्तर में कहा कि ध्यान रहे, गांधी मर जाएगा, लेकिन गांधीवाद अमर रहेगा। मैं उनसे कहना चाहता हूं, गलती बात कह दी उन्होंने। मेरा वश होता, लेकिन अब तो कोई उपाय नहीं उनसे शब्द बदलवाने का, लेकिन

फिर भी निवेदन तो कर देना चाहिए। मेरा वश होता तो उनसे मैं कहता, लेकिन आज तो कह देना चाहिए। मैं कहना चाहता हूं, गांधी अमर रहेंगे, गांधीवाद नहीं। गांधी अमर रहेंगे, गांधीवाद नहीं। गांधी की प्रतिभा, गांधी का व्यक्तित्व, गांधी की करुणा, गांधी का प्रेम, गांधी की अहिंसा, गांधी का वह महिमामंडित स्वरूप अमर रहेगा, गांधीवाद नहीं। क्योंकि गांधीवाद के अमर रहने का मतलब गांधीवादी का अमर रहना है। गांधीवादी के अमर रहने का मतलब गांधीवादी का अमर रहना है। गांधीवाद की जय नहीं, लेकिन गांधी की जय जरूर। मैं गांधी का शत्रु नहीं हूं, लेकिन गांधीवाद देश को गड्ढे में ले जा रहा है। और गांधीवाद से मुक्त हो जाना अत्यंत आवश्यक है। जितने शीघ्र हम मुक्त हो सकें और जितने शीघ्र हम एक वर्ग-विहीन और शोषण-मुक्त समाज को जन्म दे सकें, उतना हितकर है, उतना उचित है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष के भारत का स्वप्न पूरा हो सकेगा।

भारत के ऋषियों ने, भारत के संतों ने, सपना ही यह देखा है कि एक पृथ्वी ऐसी हो जहां सब बंधु हों, लेकिन शोषण से भरी पृथ्वी बंधुओं की पृथ्वी कैसे हो सकती है? एक सपना देखा है कि प्रत्येक आदमी की आत्मा समान है, बराबर है, लेकिन आत्मा समान और बराबर होगी, जब तक शरीर को समान अवसर और सुविधा नहीं मिलती, तब तक आत्मा की समानता का कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है। आत्मा तभी प्रकट होती है जब शरीर हो। और आत्मा की समानता भी उसी दिन प्रकट होगी जिस दिन शरीर के जगत में समानता की व्यवस्था हो, अन्यथा आत्मा की समानता भी कैसे प्रकट हो सकती है? करोड़ों-करोड़ों वर्ष से जिसने जीवन को सोचा है, जाना है, उसके प्राणों में एक ही प्रार्थना रही है कि सारे लोगों को समान शांति, समान आनंद उपलब्ध हो। लेकिन वह कैसे उपलब्ध होगा? अभी तो जीवन की समान जरूरतें भी उपलब्ध नहीं हैं, जीवन को विकसित करने का समान अवसर भी उपलब्ध नहीं है। कितने गांधी झोपड़ों में मर जाते होंगे और पैदा नहीं हो पाते होंगे। कितने बुद्ध और महावीर शूद्रों के घर में जन्मते होंगे और क ख ग भी नहीं सीख पाते होंगे। कितने ऋषि और मुनि पैदा नहीं हो सके, क्योंकि जहां वे पैदा हुए वहां ज्ञान की कोई खबर, कोई हवा नहीं पहुंच सकी। हजारों वर्ष से भारत में शूद्र हैं। एक शूद्र बुद्ध की हैसियत को उपलब्ध हुआ? एक शूद्र राम बना? एक शूद्र कृष्ण बना? एक शूद्र पतंजलि बना? नहीं बन सका। क्या शूद्र के घर आत्माएं पैदा नहीं होतीं? प्रतिभाएं पैदा नहीं होतीं?

अंग्रेजों की कृपा थी कि एक डाक्टर अंबेदकर पहली बार पैदा हुआ एक कीमत का आदमी शूद्रों में। एक आदमी पूरे इतिहास में। यह भी पैदा नहीं होता। इसे मौका मिला इसलिए पैदा हुआ। कितनी आत्माओं को मौके नहीं मिले, जो पैदा हो सकती थीं। कितना अनंत अपकार हुआ है जगत का। कुछ थोड़े से लोग अवसर पाते हैं। उन थोड़े से लोगों के थोड़े से बच्चे आगे बढ़ पाते हैं। शेष बड़ा समाज जीता है, सड़ता है, मर जाता है। उसके जीवन में न कोई ऊंचाई पैदा होती, न कोई शिखर छूता, न कोई संगीत बजता, न कोई प्रभु के मंदिर की घंटी सुनाई पड़ती। यह कब तक चलेगा?

लोग समझते हैं कि समाजवाद धर्म का विरोधी है। गलत है यह बात। समाजवाद से ज्यादा धार्मिक और कोई आंदोलन जगत में नहीं है। लोग समझते हैं कि समाजवाद ईश्वर का विरोधी है। गलत है यह बात। जब जमीन पर पूरी तरह समाजवाद होगा तभी हम पहली दफा ईश्वर की तरफ उठ सकेंगे, ईश्वर की तरफ आंख उठा सकेंगे। समाजवाद के बाद ही धार्मिक जीवन का ठीक-ठीक समुचित विकास हो सकता है। लेकिन गांधी जी के सामने स्वतंत्रता का सवाल बड़ा था। आजादी का सवाल बड़ा था। समाजवाद का सवाल बड़ा नहीं था। स्वभावतः परिस्थिति नहीं थी। गांधी जी के सामने सवाल था कि यह देश परदेशी गुलामी से कैसे मुक्त हो जाए। अगर वे जिंदा रहते तो शायद वे आर्थिक गुलामी से, देशी गुलामी से भी मुक्त करने के लिए कोई प्रयास करते।

लेकिन वे जिंदा नहीं रहे। आजादी जरूरी थी उस वक्त। इसलिए उन्होंने जो भी चिंतन और विचार विकसित किया, वह मूलतः स्वतंत्रता को ध्यान में रख कर था। उनका चिंतन समानता को ध्यान में रख कर समुचित रूप से विकसित नहीं हो सका। लेकिन उन पर ही हम रुक जाएंगे या आगे बढ़ेंगे?

स्वतंत्रता आ गई। जैसी भी समझिए, क्लीव, इंपोटेंट, अधूरी, जैसी भी आ गई। अब इस स्वतंत्रता के अवसर का उपयोग क्या हो सकता है? एक ही उपयोग हो सकता है कि समानता भी आए। और ध्यान रहे, जब तक समानता पूरी तरह न आए तब तक स्वतंत्रता सिर्फ धोखा होती है, कामचलाऊ होती है, नाममात्र होती है। क्योंकि जिनके पास पेट में रोटी भी नहीं है, उनके लिए स्वतंत्रता का क्या अर्‌थ है, क्या उपयोग है, क्या प्रयोजन है? जिनके पास वस्त्र भी नहीं हैं उनके लिए स्वतंत्रता शब्द सुनाई तो पड़ता है, लेकिन उसका कुछ अर्थ प्रकट नहीं होता कि स्वतंत्रता यानी क्या है। जब तक आर्थिक समानता न हो तब तक राजनैतिक स्वतंत्रता आत्मवंचना है, सेल्फ डिसेप्शन है। लेकिन गांधी के सामने वह सवाल न था। हमारे सामने वह सवाल है और हमें गांधी के आगे सोचना होगा, आगे विचार को ले जाना होगा। देश ने एक आजादी की लड़ाई लड़ी थी। अब देश को फिर एक लड़ाई लड़नी है समानता की। नहीं किसी और से लड़नी है, लड़नी है अपने ही तंत्र से, अपने ही शोषण की व्यवस्था से। नहीं किसी व्यक्ति से; समाज की व्यवस्था से।

और यह व्यवस्था बदले, तो ही गांधी की आत्मा प्रसन्न हो सकती है। लेकिन गांधीवादियों ने गांधी को कहां-कहां बिठा रखा है, पता है? पुलिसथाने में, हेड कांस्टेबल के पीछे गांधी की तस्वीर लगी है। पुलिसथाने में बैठा है हेड कांस्टेबल, मां-बहन की गालियां दे रहा है और पीछे राष्ट्रपिता की तस्वीर लगी है। अदालत में जहां सब तरह की बेईमानियां चल रही हैं, रिश्वतखोरियां चल रही हैं वहां गांधी की तस्वीर लगी है। तुमने गांधी को कोई पंचम जॉर्ज समझ रखा है? तुम गांधी के साथ अच्छा सलूक कर रहे हो? तुम गांधी को कहां बिठा दिए हो? लेकिन तुम्हें गांधी से कोई मतलब नहीं। तुम्हें स्वयं से मतलब है। तुम गांधी की तस्वीर खड़ी करके अपने को छिपाने की कोशिश कर रहे हो। लेकिन कितनी देर तक इस देश की जनता को धोखा दिया जा सकेगा? तुम तो नहीं छिप सकोगे। खतरा यह है कि कहीं गांधी का सम्मान समाप्त न हो जाए। तुम नहीं छिप सकोगे, लेकिन कहीं गांधी का सम्मान समाप्त न हो जाए। गांधीवादियों से गांधी को बचा लेना बहुत जरूरी है, अन्यथा गोडसे उनको नहीं मार पाया, गांधीवादी उनको मार डाल सकते हैं।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, इस संबंध में जो प्रश्न होंगे, वह कल सुबह आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

## लकीरों से हट कर

मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि गांधी जी ने दरिद्रों को दरिद्रनारायण कहा, इससे उन्होंने दरिद्रता को कोई गौरव-मंडित नहीं किया है, कोई ग्लोरिफाई नहीं किया है।

शायद आपको पता न हो, दरिद्रनारायण शब्द गांधी जी की ईजाद है। हिंदुस्तान में एक शब्द चलता था, वह था लक्ष्मीनारायण। दरिद्रनारायण शब्द कभी नहीं चलता था, चलता था लक्ष्मीनारायण। मान्यता यह थी कि लक्ष्मी के पति ही नारायण हैं। ईश्वर को भी हम ईश्वर कहते हैं, ऐश्वर्य के कारण। वह शब्द भी ऐश्वर्य से बनता है। लक्ष्मी के पति जो हैं वह नारायण हैं। समृद्धनारायण, ऐसी हमारी धारणा थी। हजारों साल से वही धारणा थी। धारणा यह थी कि जिनके पास धन है उनके पास धन पुण्य के कारण है, परमात्मा की कृपा के कारण है। धन का एक महिमावान रूप था, धन गौरव-मंडित था, धन की ग्लोरी थी हजारों वर्षों से। दरिद्र दरिद्र था पाप के कारण, अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण दरिद्र था। धनी धनी था अपने पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण। धन प्रतीक था उसके पुण्यवान होने का, दरिद्रता प्रतीक थी उसके पापी होने का। यह हमारी धारणा थी।

इस धारणा में गांधी ने जरूर क्रांति की और बहुमूल्य काम किया कि उन्होंने लक्ष्मीनारायण शब्द के सामने दरिद्रनारायण शब्द गढ़ा और उन्होंने कहा कि नहीं दरिद्र भी नारायण है। लेकिन जैसा अक्सर होता है, जब भी किसी शब्द, किसी विचार, किसी धारणा की प्रतिक्रिया में, रिएक्शन में कोई धारणा गढ़ी जाती है तो जो भूल इस तरफ होती थी अतिशय में वही भूल दूसरी तरफ हो जाती है। दरिद्र नारायण है, एक समय था समृद्धनारायण से। नारायण तो सभी हैं। न समृद्धनारायण है, न दरिद्रनारायण है। नारायण तो सभी हैं। एक अति, एक इक्सक्सिव यह बात थी कि समृद्ध नारायण है, समृद्धि को ग्लोरिफाई किया गया था। उसकी प्रतिक्रिया में दूसरी अति यह हो गई कि दरिद्रनारायण है, अब दरिद्र को ग्लोरिफाई किया गया। वह जो ग्लोरि, वह जो महिमा समृद्ध के साथ जुड़ी थी, वही महिमा समृद्ध से छीन कर दरिद्र से जोड़ देनी पड़ी।

रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है, रवींद्रनाथ ने गीत लिखा हैः कहां खोजते हो प्रभु को, कहां खोजते हो भगवान को, कहां खोजते हो परमात्मा को, मंदिरों में? नहीं है मंदिरों में। मूर्तियों में? नहीं है मूर्तियों में। आकाश में? चांद-तारों में? नहीं है, नहीं है। भगवान वहां है जहां राह के किनारे मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति हो गई। चांद-तारों में भी परमात्मा है, फूलों में भी, सब जगह, मंदिरों में भी, जो भी है वही परमात्मा है। लेकिन कल तक एक अति थी कि इस दीन और दरिद्र में परमात्मा को नहीं देखा जा रहा था, आज उसकी प्रतिक्रिया में, रिएक्शन में दूसरी अति हो गई कि नहीं है वहां। यहां है, जहां मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति है। महिमा बदल दी गई।

गांधी जी ने एक क्रांतिकारी कदम उठाया दरिद्र को नारायण कह कर, लेकिन जैसा कि सदा होता है, एक अति से दूसरी अति पर व्यक्ति चला जाता है, एक अति से दूसरी अति पर विचार चला जाता है। जब किसी ने, गांधी इंग्लैंड गए और गांधी के सेक्रेटरी बर्नार्ड शॉ को मिले और बर्नार्ड शॉ को गांधी के सेक्रेटरी ने कहा कि आपकी गांधी के संबंध में क्या धारणा है? बर्नार्ड शॉ ने कहाः और सब तो ठीक है, लेकिन दरिद्रनारायण शब्द

मेरे बरदाश्त के बाहर है। दरिद्र को तो मिटाना है, उससे तो घृणा करनी है, उसे तो समाप्त कर देना है, दरिद्र को बचने नहीं देना है। और सब तो ठीक है, यह दरिद्रनारायण शब्द मेरी समझ के बाहर है।

नेहरू ने भी अपनी आत्म-कथा में लिखा कि गांधी की बहुत सी बातें मेरी समझ में नहीं आती हैं। यह दरिद्रनारायण शब्द मेरी समझ में नहीं आ सका है। यह शब्द ठीक नहीं है। दरिद्र को तो मिटाना है, दरिद्र को तो समाप्त करना है, दरिद्र को तो बचने नहीं देना है। और उसे जब हम नारायण जैसे महत्वपूर्ण महिमा से मंडित करेंगे तो जाने-अनजाने जिसे हम महिमा देना शुरू करते हैं उसे हम मिटाना बंद कर देते हैं। वह मनोवैज्ञानिक घटना है, जिसे हम महिमा देते हैं उसे नष्ट करने का विचार छूटना शुरू हो जाता है। अगर दरिद्र को महारोग कहें तो मिटाने का खयाल आएगा, दरिद्र को नारायण कहें तो पूजा का खयाल आएगा। यह तो मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन होगा उसका।

सवाल यह नहीं है कि गांधी महिमामंडित करते हैं या नहीं। दरिद्रनारायण कहने से दरिद्रता महिमामंडित होती है और दरिद्रनारायण कहने से ऐसा नहीं लगता कि इसको मिटाना है। दरिद्रनारायण कहने से ऐसा लगता है कि पूजा करनी है। नारायण की हम सदा से पूजा करते रहे हैं, लेकिन हम कहेंगे कि दरिद्र महारोग है तो सीधा खयाल उठता है कि मिटाना है, नष्ट करना है, समाप्त कर देना है। यह प्रश्न तो हमारी मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन का है कि हमारे मन पर क्या प्रतिफलन होता है। छोटे-छोटे शब्द भी हमारे मानस को गतिमान करते हैं और हमारे मानस में, हमारे कलेक्टिव मानस में, हमारे अचेतन में, हमारे समूह-मन में शब्दों की करोड़ों वर्ष की परंपरा है और स्थान है। नारायण को मिटाने की हमने कभी कल्पना ही नहीं की है मनुष्य-जाति के इतिहास में। नारायण को सदा हमने पूजा है, उसे मंदिर में उसके चरणों पर सिर रखा है। नारायण को सदा हमने हाथ जोड़े हैं। नारायण को मिटाने की कल्पना ही असंभव है हमारे चित्त को। जब भी हम किसी के साथ नारायण जोड़ देंगे तो स्वभावतः वह जो हमारा हजारों वर्षों का बना हुआ मन है वह नारायण को मिटाने को आतुर नहीं रह जाएगा।

दरिद्रनारायण शब्द दुर्भाग्यपूर्ण है। उससे समृद्धनारायण को उत्तर तो मिल गया, लेकिन घड़ी का पेंडुलम एक कोने से दूसरे कोने पर पहुंच गया। एक बीमारी से दूसरी बीमारी पर पहुंच गया। न तो समृद्ध नारायण है और न दरिद्र नारायण है। नारायण तो सभी हैं, इसलिए किसी को विशेष रूप से नारायण कहना खतरनाक है। एकदम खतरनाक है। लेकिन प्रतिक्रिया में ऐसा होता है। अब तक ब्राह्मण प्रभु के लोग थे, परमात्मा के लोग थे, गॉड चूजन थे, ईश्वर के चुने हुए लोग थे। गांधी जी ने उसकी प्रतिक्रिया में हरिजन शब्द चुना, शूद्रों के लिए। जो कि कभी भी प्रभु के कृपापात्र नहीं रहे, जिनको प्रभु की कृपापात्र होने का कोई सवाल न था। कृपापात्र थे सवर्ण, कृपापात्र थे ब्राह्मण, क्षत्रिय। शूद्र? शूद्र तो बाहर था जीवन के। उस पर कृपा की कोई किरण परमात्मा की कभी नहीं पड़ी थी। ठीक किया गांधी ने। हिम्मत की कि उसको कहा हरिजन, लेकिन हरिजन कहने से वही भूल फिर दोहरा दी गई। हरिजन थे ब्राह्मण अब तक, परमात्मा के लोग वे थे। उनसे छीन कर महिमा हमने शूद्र को दे दी। लेकिन जरूरत इस बात की है कि महिमा किसी के पास बंधी न रह जाए। महिमा वितरित हो जाए और सबकी हो जाए। हरिजन हैं सब। जब तक ब्राह्मण हरिजन थे तब तक शूद्र हरिजन न था। और अगर हम शूद्र को हरिजन कहते हैं तो हम दूसरी भूल करते हैं। ब्राह्मण के प्रति एक विरोध और वैमनस्य पैदा होगा। वह जो दक्षिण भारत में ब्राह्मण के प्रति वैमनस्य और विरोध पैदा हो रहा है वह दूसरी प्रतिक्रिया है, वह दूसरी प्रतिक्रिया है कि अब नीचे जो शूद्र है वह हो गया हरिजन। अब वह चूजन पिपुल अब वे हो गए। तो अब ब्राह्मण को नीचे, अपदस्थ करना है।

यह खेल कब तक चलेगा? इस खेल को हम समझेंगे, इसके राज को? इसके राज को हम समझेंगे तो यह समझना जरूरी है कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा है। चाहे वह दरिद्र हो, चाहे समृद्ध हो, चाहे बीमार हो, चाहे स्वस्थ हो, चाहे काला हो, चाहे गोरा हो, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो--प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। इसे किसी भी वर्ग विशेष को परमात्मा का नाम देना उसे महिमामंडित करना है। मैं जानता हूं कि गांधी की मजबूरी थी। वह एक प्रतिक्रिया में, एक विरोध के लिए उन्होंने एक बात चुनी होगी। लेकिन अब चालीस-पचास साल के बाद उस शब्द को एकदम तत्काल छोड़ देना जरूरी है। अब उस शब्द को पकड़ लिए जाना ठीक नहीं है। और यह भी ध्यान रहे कि दरिद्र को न तो महिमा देनी है और न दरिद्र के साथ सहानुभूति प्रकट करनी है, यह भी ध्यान रहे। दरिद्र के साथ सहानुभूति, दया खतरनाक बातें हैं। दरिद्र के साथ दया नहीं करनी है, दरिद्रता को मिटाना है ताकि दरिद्र न रह जाए। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता मिटती नहीं है। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता चलती है, पोषित होती है। भिखमंगे को हम रोटी दे देते हैं, इससे भिखमंगापन नहीं मिटता। भिखमंगे को दी गई रोटी भिखमंगेपन को दी गई रोटी सिद्ध होती है। वह रोटी भिखमंगे के पेट में ही नहीं पहुंचती, भिखारीपन के पेट में पहुंच जाती है। और भिखारीपन जीता है और मजबूत होता है। भिखारी को मिटाना है। दया पर्याप्त नहीं है, दया बहुत तरकीब की बात है।

शोषक समाज ने हजारों वर्षों में दया का आविष्कार ईजाद किया है; दान और दया का। ये तरकीबें हैं। जिससे नीचे के पीड़ित वर्ग को राहत देने का उपाय किया जाता है। अन्यथा बगावत हो सकती है, क्रांति हो सकती है। इसलिए दया और दान, थोड़ी सी व्यवस्था बनाए रखनी पड़ती है, ताकि वह जो नीचे पीड़ित है उसको ऐसा न लगे कि मुझे बिल्कुल छोड़ दिया गया। उसे लगे कि नहीं दया की जाती है, दान किया जाता है, धर्म किया जाता है। यह दया, दान और धर्म गरीब का अपमान है। और जिस समाज में दान, दया, धर्म की जरूरत पड़ती है, वह समाज स्वस्थ, सुंदर समाज नहीं है, वह समाज रुग्ण है। और जब तक दुनिया में दया, दान और सहानुभूति की जरूरत हम पैदा करते रहेंगे, तब तक हम अच्छे मनुष्य को पैदा नहीं कर सकेंगे।

एक ऐसा समाज चाहिए जहां कोई दया मांगने के लिए तैयार न हो। एक ऐसा समाज चाहिए जो ऐसे लोगों को पैदा न कर देता हो, जिनको आपकी सहानुभूति की जरूरत पड़े। कभी आपने खयाल किया कि जिस पर आप दया करते हैं वह दया आपके अहंकार को मजबूत कर जाती है, वह दया आपको मजबूत कर जाती है कि मैं कुछ हूं, मैंने कुछ किया। और जिस पर आप दया करते हैं उसके मन को पश्चात्ताप, ग्लानि और चोट से भर जाती है कि मेरा अपमान किया गया है। आप ध्यान रखना, जिस पर भी आपने दया की उसको आपने बहुत गहरे में अपना शत्रु बना लिया है, मित्र नहीं। वह आपसे बदला लेगा। क्योंकि कोई भी आदमी अपमानित होता है जब उसे दया मांगनी पड़ती है। पीड़ित होता है, ऊपर से मुस्कुरा कर कहता है कि भगवान तुम्हें सुखी रखे, लेकिन वह जानता है, वह भलीभांति जानता है कि उसे इस हालत में कौन ले आया है? कैसे वह इस हालत में आ गया है? ऊपर से धन्यवाद देता है। लेकिन भीतर? भीतर उसके भी ईर्ष्या पलती है और अपमान पलता है।

नहीं, दया के आधार पर दो व्यक्तियों के बीच मैत्री कभी पैदा नहीं होती। इसलिए अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि मैंने उस आदमी के साथ भला किया और वह मेरे साथ बुरा कर रहा है। नेकी का फल बदी से मिल रहा है। हमेशा मिलेगा। क्योंकि नेकी अपमान करती है किसी का, और नेकी तुम्हारे अहंकार को मजबूत करती है और दूसरे मनुष्य को पीड़ित करती है। नहीं, अब हम दया और धर्म पर नहीं जी सकते हैं और न जीने की जरूरत है। अब तो हमें समझना होगा कि दरिद्र क्यों पैदा होता है? दरिद्रता कहां से जन्म लेती है? उस जड़ को काट देना होगा। एक तरफ जड़ को मजबूत किए चले जाते हैं और शाखाओं और पत्तों को काटते हैं। यह कैसा

पागलपन है! एक आदमी रोज पानी देता हो एक वृक्ष में, और फिर पत्तों को काटता हो, और रोज पानी देता हो वृक्ष में। हम जो कर रहे हैं सब मिल कर उससे दरिद्र पैदा हो रहा है। फिर एक-एक दरिद्र को हम भिक्षा देते हैं, धर्मशाला बनाते हैं, औषधालय खोलते हैं।

इधर ऊपर से हम यह व्यवस्था करते हैं और जो हम कर रहे हैं सारा समाज मिल कर उससे दरिद्र पैदा हो रहा है। यह बड़ी अजीब बात है कि सारा समाज मिल कर रोग पैदा करे और फिर रोग के इलाज के लिए अस्पताल खोले। यह कुछ समझ में आने जैसी बात नहीं है। लेकिन अब तक हमें समझ में आती थी, क्योंकि हमने व्यक्तिगत संपत्ति को प्रत्येक व्यक्ति के अपने कर्मों का फल समझा हुआ था। वह बात गलत है। कर्मों के फल हैं, जन्म हैं, पुनर्जन्म हैं, लेकिन संपत्ति कर्मों के फल से उपलब्ध नहीं, संपत्ति समाज के वितरण की व्यवस्था पर निर्भर है।

लेकिन अब तक हमारी धारणा यही थी कि गरीब गरीब है अपने कर्मों के कारण, अमीर अमीर है अपने कर्मों के कारण। इस दृष्टिकोण ने, इस कंसेप्ट ने, इस सिद्धांत ने हिंदुस्तान की गरीबी को तोड़ने के सब उपाय मुश्किल कर दिए थे। और आज भी हिंदुस्तान में गरीबी नहीं टूट रही, तो उसके पीछे हमारी फिलासफी है, हमारा दृष्टिकोण है। वह हमारा दृष्टिकोण यह है कि गरीब समझता है कि मैं गरीब हूं अपने फलों के कारण, अमीर अमीर है अपने फलों के कारण। हमारे दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है, अपने-अपने फलों से संबंध है। यह तरकीब बहुत होशियारी की साबित हुई। यह तरकीब बहुत होशियारी की साबित हुई। इससे मेरे पिछले जन्मों को मुझसे जोड़ दिया गया, लेकिन समाज से मुझे तोड़ दिया गया। समाज के ऊपर मेरी गरीबी-अमीरी का कोई सवाल न रहा, कोई प्रश्न न रहा।

यह धर्म की धारणा ने निश्चित ही व्यक्तिगत संपत्ति को बचाने का अदभुत उपाय किया है। इसीलिए सारे धर्मशास्त्र दुनिया के कहते हैं, चोरी पाप है, लेकिन दुनिया का एक भी धर्मशास्त्र नहीं कहता कि शोषण पाप है। दुनिया का कोई धर्मशास्त्र कैसे कह सकता है कि शोषण पाप है? वे कहते हैं, चोरी पाप है। कभी आपने सोचा कि इसके इंप्लीकेशंस क्या हैं, इसके मतलब क्या हैं? इसका मतलब यह है कि चोरी हमेशा गरीब का कृत्य है अमीर के खिलाफ, चोरी हमेशा उनका कृत्य है जिनके पास संपत्ति नहीं, उनके खिलाफ जिनके पास संपत्ति है। धर्म संपत्तिशाली की रक्षा कर रहा है। वह कहता है, चोरी पाप है। लेकिन वह यह नहीं कहता कि शोषण पाप है। शोषण अमीर का कृत्य है दरिद्र के खिलाफ। धर्मग्रंथ कोई भी नहीं कहता कि शोषण पाप है। एक अर्थों में मार्क्स की किताब दुनिया का एक नया धर्मग्रंथ है, जो शोषण को पाप कहता है। और अगर मार्क्स हिंदुस्तान में पैदा हुआ होता, तो हमने अपने अवतारों में उसकी गिनती की होती। हम निश्चित उसको अपने अवतारों में गिनते। क्योंकि उसने धर्म और जीवन के संबंध में एक नये सूत्र को स्थापित किया है और वह यह कि शोषण पाप है। और जब तक शोषण का पाप जारी है तब तक चोरी जैसे छोटे पाप पैदा होते रहेंगे। वह उसकी बाई-प्रॉडक्ट है। वह उससे आएंगे और मिट नहीं सकेंगे। मैं यह नहीं कहता हूं कि शोषक पापी है, मैं कहता हूं, शोषण पाप है।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं पूंजीपति में और पूंजीवाद में क्या फर्क करता हूं? क्या मैं कहना चाहता हूं कि पूंजीवाद जिम्मेवार है, पूंजीपति जिम्मेवार नहीं है?

हां, मैं फर्क करता हूं और कहना चाहता हूं कि पूंजीपति और पूंजीहीन, शोषक और शोषित, दोनों शोषण के यंत्र के परिणाम हैं। शोषण का यंत्र जारी है। उस शोषण के यंत्र में सारे लोग श्रम कर रहे हैं। वे जिनके पास धन नहीं है, आप सोचते हैं, वे धन पाने के लिए श्रम नहीं कर रहे हैं? वे धन पाने के लिए श्रम कर रहे हैं। नहीं कर पा रहे हैं यह दूसरी बात है। जो गरीब है, वह अमीर होने की कोशिश नहीं कर रहा? नहीं हो पा रहा यह दूसरी बात है। जो धनहीन है, वह भी धनाकांक्षी है। जो धनवान है, वह गरीब होने से बचने की कोशिश नहीं रह रहा? वह धनवान है लेकिन गरीब न हो जाए, इसकी पूरी कोशिश में लगा हुआ है। जो गरीब है वह अमीर कैसे हो जाए, इसकी पूरी कोशिश में लगा हुआ है। कुछ लोग सफल हो गए हैं, कुछ लोग असफल हो गए हैं, यह दूसरी बात है। हम सारे लोग इस कमरे में दौड़ने की कोशिश करें और हमारे इस भवन का यह नियम हो कि जो प्रथम आ जाएगा वह सर्वश्रेष्ठ होगा। हम सारे लोग दौड़ेंगे, लेकिन प्रथम तो एक ही आ सकता है। जो आ जाएगा वह जिम्मेवार है प्रथम आने के लिए या कि वह व्यवस्था जो कहती है कि प्रथम आना श्रेयस्कर है, वह व्यवस्था जिम्मेवार है? जो नहीं आ सके उनका कोई बड़ा पुण्य कर्म है कि वे नहीं आ सके? उन्होंने भी दौड़ने की पूरी कोशिश की है जी जान से। वे नहीं आ सके यह दूसरी बात है। जिनके पास धन है, जिनके पास धन नहीं है उन दोनों की दौड़ समान है। दोनों धनाकांक्षी हैं--धनाढय भी, धनहीन भी--दोनों धनाकांक्षी हैं।

धनाकांक्षा का यह जो समाज है वह जिम्मेवार है। धनपति जिम्मेवार नहीं है पूंजीवाद के लिए, पूंजीवाद जिम्मेवार है धनपति को पैदा करने के लिए। हमारी जो चिंतना है पूंजी को संगृहीत करने की, हमारा जो विचार है कि पूंजी को उपलब्ध कर लेना, पूंजी का मालिक हो जाना, पूंजी पर कब्जा कर लेना, श्रेयस्कर है जीवन में। यह जो हमारी पूरी व्यवस्था है... फिर जो आदमी पूंजी को उपलब्ध कर लेता है, उसे हम देते हैं सम्मान। बड़े मजे की बात है, दरिद्र भी उसे सम्मान देता है जो पूंजी उपलब्ध कर लेता है। दरिद्र भी हाथ बंटा रहा है पूंजी के सम्मान में। दरिद्र पूरा आदर देता है उसे जो जीत जाता है। दरिद्र खुद उसे अपमानित करता है जो उससे दरिद्र है। वह उसको स्वीकार नहीं करता। सम्राट सम्राटों से मिलते हैं, पूंजीपति पूंजीपतियों से मिलते हैं, चमार चमारों से मिलते हैं। चमार भी भंगी से मिलना पसंद नहीं करते। वह नीचे उनका और भी ज्यादा दरिद्र है। उससे मिलने को वह भी राजी नहीं है। वे उसके साथ भी चाहते हैं कि रास्ते पर नमस्कार वह उन्हें करे।

पूरे समाज की मनोवृत्ति धनाकांक्षी है, पूरे समाज का चित्त पूंजीवादी है। गरीब का भी, भिखमंगे का भी, सम्राट का भी, धनपति का भी, इसमें धनपति को जिम्मा देने की जरूरत नहीं है। हम सब जिम्मेवार हैं, हम इकट्ठे जिम्मेवार हैं। निकृष्टतम, दरिद्रतम और श्रेष्ठतम और धनवान, हम सब इकट्ठे जिम्मेवार हैं इस समाज को निर्मित करने में। और इसलिए यह बात गलत है कि कोई कहे कि पूंजीपति जिम्मेवार है। पूंजीपति भी उसी व्यवस्था की पैदावार है, जिस व्यवस्था की पैदावार गरीब है। वे दोनों एक ही व्यवस्था से उत्पन्न हुए। और गरीब भी पूंजीवाद को जमाए रखने में उतना ही सहयोगी है जितना अमीर।

पूंजीवाद जिस दिन जाएगा उस दिन अमीरी ही नहीं जाएगी, गरीबी भी चली जाएगी। पूंजीवाद के जाने के साथ ही गरीब-अमीर दोनों चले जाएंगे। वे दोनों पूंजीवाद के हिस्से हैं। उसमें गरीब उतना ही जिम्मेवार है। यह हमें कभी-कभी दिखाई नहीं पड़ता है। हमें यह दिखाई पड़ता है कि एक ताकतवर आदमी एक कमजोर आदमी की छाती पर पैर रख कर खड़ा हो गया है, तो हम कहते हैं, यह ताकतवर आदमी बुराई कर रहा है। लेकिन हम नहीं जानते कि कमजोर आदमी बुराई क्यों करने दे रहा है? दोनों जिम्मेवार हैं। वह कमजोर है, और वह सहने को राजी है किसी को छाती पर। तो छाती पर पैर रखने वाला जितना जिम्मेवार है इस कृत्य में,

छाती पर जिसने पैर रखने दिया है, वह भी उतना ही जिम्मेवार है। कमजोर हमेशा से उतने ही जिम्मेवार हैं जितने ताकतवर। कायर हमेशा से उतने ही जिम्मेवार हैं जितने बहादुर। हम कहते हैं कि हमारे ऊपर मुसलमान आए और उन्होंने हमें गुलाम बना लिया, मुसलमान जिम्मेवार है। और आप जिम्मेवार नहीं हैं जो गुलाम बने? गुलाम उतना ही जिम्मेवार है जितना गुलाम बनाने वाला। और जब तक गुलाम ऐसा सोचता है कि गुलाम बनाने वाले जिम्मेवार हैं, तब तक वह बिल्कुल गलत बात सोचता है। गुलामी दोनों के हाथ के जोड़ का परिणाम है। गुलाम बनाने वाले का और गुलाम बनने वाले का। और जब तक दुनिया में गुलाम बनने को लोग मौजूद हैं तब तक गुलाम बनाने वाले लोग भी हमेशा मौजूद रहेंगे। यह जिम्मेदारी दोनों तरफ है।

स्त्रियां कहती हैं कि पुरुषों ने हमें दबा लिया है, लेकिन स्त्रियों को जानना चाहिए कि वे दबने को तैयार हैं और इसलिए पुरुषों ने दबा लिया है, अन्यथा कौन किसको दबा सकता है। कोई किसी को नहीं दबा सकता। लेकिन हम हमेशा यह देखते हैं कि दूसरा जिम्मेवार है। अंग्रेज जिम्मेवार है, हमको गुलाम बना लिया। और तुम चालीस करोड़ नपुंसक क्या करते थे कि अंग्रेज तुम्हें गुलाम बना सके? हम कम से कम मर तो सकते थे--अगर और कुछ नहीं कर सकते थे। मुर्दों को तो गुलाम नहीं बनाया जा सकता था? कम से कम आखिरी रूप में एक ताकत तो आदमी के हाथ में है कि वह मर सकता है, एक च्वाइस तो कम से कम हाथ में है हर आदमी के कि वह आत्महत्या कर सकता है।

मैंने सुना है कि जर्मनी ने हालैंड पर हमला करने का विचार किया। हालैंड तो बहुत समृद्ध मुल्क नहीं है और हालैंड के पास बहुत सुसज्जित सेनाएं भी नहीं हैं। हालैंड के पास बड़ी शक्ति भी नहीं हैं। जर्मनी से जीतने का तो कोई उपाय भी नहीं है उसके पास। लेकिन हालैंड ने तय किया कि चाहे हम मर जाएंगे, लेकिन हम गुलाम नहीं बनेंगे। पर लोगों ने पूछा कि हम करेंगे क्या? कैसे गुलाम नहीं बनेंगे? तो हालैंड का आपको पता होगा, उसकी जमीन नीची है समुद्र की सतह से। समुद्र के चारों तरफ दीवालें और परकोटे उठा कर उसको अपनी जमीन को बचाना पड़ता है। तो हालैंड के एक-एक कम्यून ने, एक-एक गांव की कौंसिल ने यह तय किया कि जिस गांव पर हिटलर का कब्जा हो जाए वह गांव अपनी दीवालें तोड़ दे और समुद्र को गांव के ऊपर आ जाने दे। पूरा गांव डूब जाएगा, हिटलर की फौजें भी डूब जाएंगी। हालैंड को हम पूरा डुबा देंगे समुद्र के नीचे, लेकिन इतिहास यह नहीं कह सकेगा कि हालैंड गुलाम हुआ।

ऐसी कौम को गुलाम बनाना मुश्किल है। क्या करिएगा? आखिर गुलाम बनाने के लिए आदमी का जिंदा रहना तो जरूरी है? कमजोर आदमी को भी मरने का हक तो है। कमजोर आदमी भी मरना नहीं चाहता, इसलिए गुलाम बनने को राजी होता है और गुलामी में उसका हाथ है। कोई अपने को बचा नहीं सकता। यह जो पूंजी की व्यवस्था है, यह जो शोषण की व्यवस्था है, इसमें गरीब आदमी का हाथ उतना ही है जितना अमीर आदमी का हाथ है। इसमें भिखमंगों का हाथ उतना ही है जितना शहंशाहों का हाथ। यह तो दोनों के जोड़ का फल है।

इसलिए मैं नहीं कहता कि पूंजीपति का हाथ है। मैं कहता हूं, हम सबका हाथ है। और जब तक हम यह न समझेंगे कि हम सबका हाथ है, तब तक हम इस शोषण की व्यवस्था को नहीं बदल सकेंगे। अगर पूंजीपति का हाथ है तो किसी पूंजीपति को गोली मार दो, तो कोई फर्क पड़ेगा? दूसरा पूंजीपति पैदा हो जाएगा; क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। किसी पूंजीपति को समझा-बुझा कर उसकी संपत्ति बंटवा दो, तो कोई फर्क पड़ेगा? संपत्ति बंट जाएगी, दूसरा पूंजीपति खड़ा हो जाएगा, क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। व्यवस्था काम कर रही है, सिस्टम काम कर रही है, उस सिस्टम से सारी चीजें पैदा हो रही हैं, उस व्यवस्था से पैदा हो रही हैं।

इसलिए जो समाजवादी पूंजीपतियों के प्रति घृणा फैलाते हैं, वे गलत काम करते हैं। वह काम ठीक नहीं है। समाजवाद पूंजीपति के प्रति घृणा नहीं है। समाजवाद पूंजीपति, दरिद्र, धनवान सबको मिटाने का उपाय है। समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में है, पूंजीपति के विरोध में नहीं है। पूंजीपति के विरोध से कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन है पूंजीवाद से, वह जो कैपिटलिज्म है, वह जो हमारी पूंजी के प्रति निष्ठा है, वह जो हम पूंजी को मनुष्य से ज्यादा मूल्य देते हैं, वह जो हम पूंजी को जीवन का परमात्मा बनाए हुए हैं, वह जो हम पूंजी के लिए ही जीते और मरते हैं--गरीब भी, अमीर भी, यह जो पूंजी का सारा का सारा इंतजाम है--इस पूंजी के केंद्र को तोड़ देना समाजवाद है।

समाजवाद गरीब की लड़ाई नहीं है पूंजीपति के खिलाफ। समाजवाद पूंजीपति की, गरीब की, सबकी लड़ाई है पूंजी के खिलाफ; यह समझ लेना जरूरी है और जिस दिन हम यह समझ सकेंगे की पूंजीवाद के खिलाफ हमारी लड़ाई है, पूंजीपति के खिलाफ नहीं, तो पूंजीपति भी इस लड़ाई में साथी और सहयोगी होगा। समाजवादियों की इस गलत धारणा ने कि हम पूंजीपति के खिलाफ लड़ रहे हैं, समाज को अजीब हालत में पैदा कर दिया है। उन्होंने एक ऐसी हालत पैदा कर दी कि लड़ाई पूंजीपति के खिलाफ है। तो पूंजीपति समाजवाद का नाम सुन कर ही भयभीत होता है। वह सुनता है कि समाजवाद, यानी मेरी दुश्मनी। समाजवाद पूंजीपति की दुश्मनी नहीं है। समाजवाद गरीब से गरीबी छीन लेगा, अमीर से अमीरी छीन लेगा। और गरीब भी ठीक अर्थों में नारायण नहीं हो पाता, अमीर भी ठीक अर्थों में नारायण नहीं हो पाता। अमीरनारायण भी तकलीफ में रहता है पूंजी की, गरीबनारायण तकलीफ में रहता है गरीबी की। जिस दिन हम गरीब की गरीबी छीन लेंगे, अमीर की अमीरी छीन लेंगे, उस दिन हम प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य होने का पूरा हक देंगे, उस दिन मनुष्यनारायण का जन्म होगा। न तो समृद्धनारायण की पूजा जरूरत है, न दरिद्रनारायण की पूजा की जरूरत है। पूजा की जरूरत है नारायण की। और नारायण प्रकट नहीं हो पा रहा है, क्योंकि पूजा पूंजी की चल रही है, नारायण की पूजा कैसे हो सकती है? इसलिए मैंने कहा कि मैं उस शब्द को पसंद नहीं करता हूं।

कुछ एक मित्रों ने यह पूछा है कि समाजवाद की, समानता की मैं जो बात करता हूं, क्या उसका यह अर्थ है कि सबकी संपत्ति बिल्कुल समान कर दी जाए? क्या उसका अर्थ है कि सबको तनख्वाहें बिल्कुल बराबर दे दी जाएं? क्या उसका अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को एक सा मकान दे दिया जाए?

नहीं, उसका यह अर्थ नहीं है। उसका यह अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को जीवन में विकास का समान अवसर दे दिया जाए। अभी हम पूंजी के इतने प्रभाव में हैं कि जब भी हम समानता की बात सोचते हैं, तो तत्काल हमारे सामने जो पहला सवाल उठता है वह यह है कि बराबर नौकरी, बराबर तनख्वाह, बराबर मकान। यह पूंजी का प्रभाव है कि तत्काल हमें पूंजी को समान करने का ध्यान आता है, क्योंकि हम पूंजी से प्रभावित हैं, हम पूंजी के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकते। हमें मनुष्य का सवाल ही नहीं है, सवाल पूंजी का है। हजारों साल से पूंजी की धारणा के नीचे जीने से, जब भी समाजवाद की दृष्टि उठती है, तो हम समझते हैं पूंजी।

नहीं, सवाल मूलतः यह नहीं है कि सब आदमियों को बराबर-बराबर तनख्वाह मिल जाए। तनख्वाह का मूल्य नहीं है, मूल्य इस बात का है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का समान अवसर मिल जाए। अब एक घर में एक आदमी मोटा है और एक आदमी दुबला है, तो समान रोटी खिलाने से बड़ी झंझट पैदा हो जाएगी। कि

समाजवाद का मतलब यह नहीं है कि सब लोगों को बराबर रोटी खानी पड़ेगी। अब एक मोटा आदमी है, उसकी कम रोटी में जान निकल जाएगी और पतले आदमी को ज्यादा रोटी खिलाने से जान निकल जाएगी। यह मतलब नहीं है। लेकिन प्रत्येक आदमी को जीवन का समान अवसर उपलब्ध हो सके, जीवन के विकास का, परमात्मा तक पहुंचने का, संगीत तक, सत्य तक, धर्म तक, जीवन की सुविधा का समान अवसर मिल सके। और जितने दूर तक यह संभव हो सके, जितने दूर तक यह उचित हो सके, उतने दूर तक वर्गों का फासला निरंतर कम से कम होता चला जाए।

अब हिंदुस्तान में एक आदमी एक रुपया कमा नहीं पा रहा है रोज और दूसरा आदमी रोज पांच लाख रुपये कमा रहा हो। यह फासला! यह घबड़ाने वाला फासला है। यह अमानवीय है, इनह्यूमन है। और हम कहते हैं कि हम धार्मिक लोग हैं! धार्मिक लोग हम होते, तो इतने अमानवीय, इतने अधार्मिक फासले सह सकते थे? लेकिन हमारा धर्म इसमें है कि हम माला फेरते हैं, वह हमारा धर्म है।

अभी एक बहन ने मुझे आकर कहा कि, किसी धार्मिक को वह साथ में लाई होगी, उन्होंने कहा, अरे, ये तो ब्रह्म की कोई बात ही नहीं कर रहे हैं, ये तो सब संसार की ही बातें कर रहे हैं।

ब्रह्म की बातों को लोग समझते हैं धार्मिक हो गए। ब्रह्म की बात कर ली तो धार्मिक हो गए। धार्मिक ब्रह्म की बात करने से कोई नहीं होता, धार्मिक होता है इस जगत में ब्रह्म को उतारने की संभावना बढ़ाने से। इस जगत में ब्रह्म अवतरित हो। ब्रह्म की बकवास तो ग्रंथों में बहुत लिखी है, परिभाषा बहुत लिखी है और कोई भी मूढ़जन याद कर सकता है कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। इसको याद करने में कोई बहुत बुद्धिमानी की जरूरत नहीं है। लेकिन ब्रह्म सत्य हो कहां पाया है। जगत ही सत्य बना हुआ है। ब्रह्म तो बिल्कुल असत्य है। ब्रह्म सत्य हो सकता है, जब हम इस जगत में ब्रह्म के विकास की अधिकतम सुविधा और समान सुविधा जुटा सकेंगे तो ब्रह्म प्रकट हो सकता है। तो ब्रह्म सत्य होगा और जगत मिथ्या होगा। बुद्ध के लिए, महावीर के लिए ब्रह्म सत्य हो गया, जगत मिथ्या हो गया। लेकिन हमारे लिए? हमारे लिए रोटी सत्य है और ब्रह्म मिथ्या है। हमारे लिए शरीर सत्य है और आत्मा मिथ्या है।

सूत्र रटने से कुछ भी नहीं होगा, बल्कि हम सूत्र रटते ही इसलिए हैं, जिस आदमी को यह पता चल चुका हो कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है, वह रोज सुबह बैठ कर, आंख बंद करके यह कहेगा कि ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या? पता चल गया हो, तो पागल हो गए हो, उसको कहने की जरूरत? एक पुरुष एक कोने में बैठ कर कहे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं, तो सबको शक हो जाएगा कि यह आदमी पुरुष नहीं है। क्या बात का सबूत है! तुम पुरुष हो यह तुम्हें पता है, बात खत्म हो गई। अब इसको रोज-रोज दोहराने की और सत्संग करने की जरूरत नहीं रही समझने जाने के लिए कि मैं पुरुष हूं या नहीं। जब तक संदेह है तब तक इस तरह की बातों की पुनरुक्ति है। जो लोग सुबह बैठ कर दोहराते हैं ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या, उनको जगत सत्य दिखाई पड़ता है, ब्रह्म मिथ्या दिखाई पड़ता है। इस स्थिति को उलटाने के लिए बेचारे जोर-जोर से रट रहे हैं कि नहीं-नहीं जगत असत्य है, ब्रह्म सत्य है। जो उन्हें दिखाई पड़ रहा है उसको मिटा डालने के लिए, पोंछ डालने के लिए, उलटा कर लेने के लिए ये सारी बातें कर रहे हैं। इन बातों से ब्रह्मज्ञान का कोई संबंध नहीं है।

ब्रह्मज्ञान का संबंध ब्रह्म की चर्चा से नहीं, इस जगत में ब्रह्म की कैसे अवतारणा हो, कैसे डिसेंड हो सके वह जो डिवाइन है, वह जो दिव्य है, वह कैसे इस पृथ्वी पर आ सके, अधिकतम प्राणों में कैसे आकर वह स्पर्श कर सके, अधिकतम प्राणों में कैसे उसका संगीत गूंज सके। लेकिन जिन प्राणों को शरीर से ही मुक्त होने का उपाय न मिलता हो, उन प्राणों में ब्रह्म के अवतरण की संभावना कहां?

इसलिए मैं कहता हूं कि समाजवाद आने पर जगत में ब्रह्मवाद आने के द्वार खुल जाएंगे। अब तक दुनिया में व्यक्ति हो सके हैं ब्रह्मवादी, समाज नहीं हो सका। अरबों-खरबों व्यक्तियों में अगर एकाध व्यक्ति ब्रह्मवादी हो जाता है, इसका मूल्य कितना हो सकता है? अगर हम इतिहास उठा कर देखें दस हजार वर्ष का, तो हम दस-पच्चीस नाम गिना सकेंगे मुश्किल से कि ये ब्रह्मवादी हैं। कितने अरबों लोग पैदा हुए, कितने अरबों लोग मरे, कितने अरबों लोग जीए, कितने अरबों लोग समाप्त हुए, वे सब कहां गए? वे ब्रह्मवादी नहीं हो पाए? दस-पांच लोग ब्रह्मवादी हुए! यह सफलता की बात है?

एक माली एक करोड़ पौधे लगाए और एक पौधे में फूल आ जाए, तो हम माली की प्रशंसा करेंगे? हम कहेंगे कि धन्य हो माली, बड़े कुशल हो, बड़े कारीगर हो, बड़े महान हो। माली के कारण नहीं आए, इंस्पाइट ऑफ, उसके बावजूद आ गए होंगे।

करोड़-करोड़ लोग पैदा हों और एक आदमी शंकर हो जाए, करोड़-करोड़ लोग पैदा हों और एक आदमी जीसस हो जाए, यह कथा कोई सौभाग्यपूर्ण है? नहीं, होना उलटा चाहिए। करोड़-करोड़ लोग पैदा हों, कभी एकाध आदमी अधार्मिक हो पाए, तो हम समझेंगे कि पृथ्वी ब्रह्म की तरफ जा रही है। लेकिन हम अपने देश में यह भ्रम लिए हुए बैठे हैं कि हम सब धार्मिक लोग हैं। धार्मिक लोग हैं और इतने फासले हैं जीवन में! नहीं मैं यह कहता हूं कि सारे फासले आज टूट सकते हैं। लेकिन, लंबे अर्थों में, आदर्श की भांति एक दिन सारे फासले भी टूट सकते हैं। लेकिन आज फासले हम जितने कम कर सकें, सुविधा और अवसर को जितना बांट सकें उतना मनुष्यता का पुनरुत्थान होगा, उतनी मनुष्यता परमात्मा की और उठ सकती है।

इसलिए जो बातें मैं कर रहा हूं, कोई भूल कर यह न समझे कि मैं संसार की बातें कर रहा हूं। संसार की बात करने की मुझे सुविधा नहीं है, फुर्सत नहीं है। मैं जो बात कर रहा हूं वह धर्म की ही बात कर रहा हूं, मैं जो बात कर रहा हूं वह ब्रह्मज्ञान की ही बात कर रहा हूं, कोई संसार की बात मुझे करने की रुचि नहीं है। और जो संसार है ही नहीं उसकी बात की भी कैसे जा सकती है? ब्रह्म ही है, उसी की बात की जा सकती है। और ब्रह्म बड़ी मुश्किल में पड़ा है और पूंजीवाद ने ब्रह्म को बहुत झंझट में डाला हुआ है। इस पूंजीवाद से ब्रह्म का छुटकारा होना जरूरी है।

यह जो हमारी दृष्टि अगर रहे कि नहीं-नहीं, संसार असार है, उसकी बात नहीं करनी है। यह बात पूंजीवाद के बहुत पक्ष में है। पूंजीवाद चाहता है कि साधु-संत यही समझाते रहे कि संसार असार है, संसार असार है, इसमें कुछ भी मतलब नहीं है। गरीबी? अरे सह लो, इसमें कुछ सार नहीं है, गरीबी-अमीरी सब बराबर है। भूख सह लो, अकाल सह लो, दरिद्रता सह लो, संतोष रखो, सांत्वना रखो, यह सब सपना है। पूंजीवाद पसंद करता है कि ये बातें, यह जहर, यह पाय.जन लोगों के दिमाग में डाला जाता रहे कि यह सब तो असार है, इसकी फिकर ही मत करो।

एक आदमी आपको लूट रहा है और एक ज्ञानी आपको समझा रहा है कि घबड़ाओ मत; लूटते रहो, यह सब असार है। लेकिन वह लूटने वाला बिल्कुल नहीं सुनता, वह लूटता चला जाता है, उसे असार से कोई फर्क नहीं पड़ता। यह लुटने वाला सुन लेता है कि असार है और खड़ा रह जाता है। यह लुटता है। वह लूटने वाला प्रसन्न होता है। लूट में से थोड़ा हिस्सा वह ज्ञानी को भी देता है। क्योंकि वह जानता है। यह आपको पता है? वह लूट में से थोड़ा हिस्सा उसको देता है।

सारे पंडित, सारे ज्ञानी, सारे साधु-संन्यासी उस लूट में हिस्सेदार होते हैं और उस हिस्से में होने की वजह से वे बेचारे निरंतर यह कहते रहते हैं--सब असार है, सब असार है, कोई सार नहीं है, यह सब माया है, यह सब

सपना है, यह सब सपना है। यह सपना है जो चारों तरफ चल रहा है? और अगर यह सपना है, तो ज्ञानी छोड़ कर क्या भागता है? अगर पत्नी सपना है, तो पत्नी से भागने की जरूरत? और धन अगर सपना है, तो धन से भागने की जरूरत? और अगर जीवन सपना है, तो त्याग किसका करते हो? सपनों के त्याग किए जा सकते हैं? नहीं, लेकिन छोड़ने और भागने के लिए ज्ञानी मानता है कि सपना नहीं है।

लेकिन यह जो चल रही है समाज की व्यवस्था, यह जो समाज की सनातन व्यवस्था चल रही है यह न बदल जाए, इसके बदलने की बात करो, वह कहेगा, कहां संसार की और माया की बात करते हैं। उसे पता नहीं कि माया और संसार को उसकी बातें सुरक्षा दे रही हैं। इस माया और संसार को तोड़ा जा सकता है, इस पृथ्वी को परमात्मा की खोज का एक अपूर्व अवसर बनाया जा सकता है। लेकिन आज तक मनुष्य ने जो समाज निर्मित किया है उस समाज में अधिकतम लोगों की जीवन-ऊर्जा रोटी जुटाने में, शरीर की व्यवस्था करने में ही नष्ट हो जाती है, वह कभी भी इसके ऊपर नहीं उठ पाती है, इसके बियांड, इसके अतीत नहीं जा पाती।

एक ऐसा समाज चाहिए संपत्तिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समृद्धिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समान अवसर वाला, एक ऐसा समाज चाहिए जहां पूंजी केंद्र न हो, परमात्मा केंद्र हो, जहां हम जीवन को जीएं सिर्फ इसलिए कि जीवन और ऊपर जा सके। एक वैसा समाज जिस दिन दुनिया में होगा, उस दिन धर्म का जन्म होगा, उस दिन ब्रह्म हमारे निकट आ सकेगा। अभी शरीर के अतिरिक्त, पदार्थ के अतिरिक्त हमारे निकट कुछ भी नहीं है।

एक अंतिम प्रश्न, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक बहन ने पूछा हैः बहुत ही मजेदार बात पूछी है, उन्होंने पूछा है कि शिविरों में, अभी अखबारों ने कुछ फोटो छाप दिए, एक बहन मेरे गले से आकर लगी हुई है, अखबारों ने फोटो छाप दिया। उन्होंने वह फोटो देख लिया होगा। तो उन्होंने मुझसे पूछा है कि शिविर में आप स्त्रियों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार करते हैं। गांधी जी ने तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी भी नहीं किया।

अगर स्त्रियों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना दुर्व्यवहार है, तो मैं जरूर दुर्व्यवहार करता हूं। अब तक साधु-संत स्त्रियों के साथ घृणा का व्यवहार करते रहे हैं, इसलिए वही सदव्यवहार हमें मालूम होने लगा है। साधु-संतों ने आज तक स्त्री को मनुष्य होने की हैसियत नहीं दी है। साधु-संतों ने उसे नरक का द्वार समझा है, साधु-संतों ने उसे कीड़े-मकोड़ों से बदतर बताया है। साधु-संतों ने उसे सांप-बिच्छुओं से खतरनाक समझाया है। साधु-संतों का अगर वह पैर भी छू ले, तो साधु-संत अपवित्र हो जाते हैं और उन्हें उपवास करके पश्चात्ताप करना पड़ता है। और ये साधु-संत स्त्री से ही पैदा होते हैं। इनकी सारी देह स्त्री से ही निर्मित होती है। इनका खून स्त्री का, इनकी हड्डी स्त्री की, इनके जीवन की सारी ऊर्जा स्त्री से आती है और वही स्त्री नरक का द्वार हो जाती है!

मनुष्य-जाति जब तक स्त्रियों के साथ ऐसा असम्मानपूर्ण और ऐसा मूढ़तापूर्ण व्यवहार करेगी, तब तक मनुष्य-जाति के जीवन में कोई ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता है। स्त्री के साथ दुर्व्यवहार अब तक रहा है और उस दुर्व्यवहार का कारण? उस दुर्व्यवहार का कारण स्त्री की कोई खराबी नहीं है। क्योंकि जिन बातों के कारण स्त्री को आप दोष देते हैं, आप उन बातों में स्त्री के सहयोगी नहीं हैं? यह बड़े मजे की बात है! पुरुष नरक का द्वार नहीं है? स्त्री अकेली दुनिया में कामवासना ले आती है, पुरुष नहीं? सच्चाई उलटी है। स्त्री इतनी कामुक कभी भी

नहीं है, जितने पुरुष कामुक हैं। और स्त्री की कामवासना को अगर न जगाया जाए, तो स्त्री कामवासना के लिए बहुत आतुर भी नहीं होती। और सारी स्त्रियां जानती हैं कि कामवासना में कौन उन्हें रोज घसीटता है--उनका पति या वे स्वयं! कौन उन्हें घसीटता है? पुरुष चौबीस घंटे सेक्सुअल है। प्रतिदिन सेक्सुअल है, लेकिन दोष है स्त्री का। वह उन्हें नरक ले जाती है।

यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि स्त्री तो पुरुष पर कोई बलात्कार नहीं कर सकती है, स्त्री तो पैसिव है, स्त्री तो निष्क्रिय है, वह कोई हमला तो कर नहीं सकती पुरुष पर। पुरुष हमला कर सकता है। जो निष्क्रिय है उसको नरक का द्वार कहता है और जो सक्रिय है वासना में, अपने को शायद स्वर्ग का द्वार समझता होगा। स्त्री को दी गईं ये गालियां, यह अपमान, ये अशोभन शब्द अब तक सदव्यवहार समझे गए हैं। और स्त्रियां इतनी मूढ़ हैं कि पुरुष की इन मूर्खतापूर्ण बातों में सहयोगी रहीं और उन्होंने साथ दिया है। उन्होंने कोई इनकार नहीं किया, उन्होंने कोई बगावत नहीं की, उन्होंने कोई विद्रोह नहीं किया। उन्होंने नहीं कहा कि यह तुम क्या कह रहे हो। उसे सह लिया उन्होंने चुपचाप। उसको उन्होंने मान लिया है चुपचाप। क्योंकि उनका न कोई अपना गुरु है, न उनका अपना कोई शास्त्र है, न उनका अपना कोई धर्म है। वे सब पुरुषों के निर्मित हैं, वे पुरुषों के पक्ष में लिखे गए हैं। वे पुरुषों ने लिखे हैं, अपने पक्ष में लिखे हैं। पुरुषों ने अपने ग्रंथों में लिख लिया है कि अगर पति मर जाए तो स्त्री को सती होना चाहिए, लेकिन किसी पति को भी कभी सती होना चाहिए, यह बात उन्होंने नहीं लिखी। स्वभावतः वर्गीय दृष्टिकोण है, वह पुरुष का अपना दृष्टिकोण है। वैसा उसने लिख लिया है।

साधु और संन्यासी स्त्री के प्रति क्यों इतना दुर्व्यवहारपूर्ण रहा है? उसका एकमात्र मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि साधु और संन्यासी को, भीतर उसकी कामना की स्त्री बहुत पीड़ित और परेशान करती है। उसके भीतर स्त्री घूमती है। वह बेचारा परमात्मा को बुलाना चाहता है। जब भी परमात्मा को बुलाता है तभी पत्नी आ जाती है। वह जब भी राम-राम, राम-राम जपता है तभी भीतर काम-काम, कामवासना-कामवासना चलती है। वह घबड़ाया हुआ है भीतर की स्त्री से। वह उस भीतर की स्त्री से परेशान है, उसके बदले में वह स्त्री को गाली देता है, उसके बदले में बाहर की स्त्री से भयभीत होता है कि बाहर की स्त्री ने अगर हाथ छू दिया, तो मरे, जान निकल गई, क्योंकि भीतर जो स्त्री बैठी है वह जग जाएगी, वह खड़ी हो जाएगी।

बाहर की स्त्री के हाथ में ऐसा क्या है जिसे छू देने से किसी संन्यासी में कुछ अपवित्र हो जाएगा? और संन्यासी के शरीर में ऐसा कुछ क्या है जो स्त्री के शरीर से ज्यादा पवित्र है और छूने से अपवित्र हो सकता है? शरीर में क्या है? इतना भय क्या है? इतना भय स्त्री का भय नहीं, अपने भीतर छिपी हुई सेक्सुअलिटी का, कामवासना का भय है।

इसलिए संन्यासी भागता रहा है, घबड़ाता रहा है, दूर-दूर भागता रहा है। स्त्री छू ले तो पाप, स्त्री छू ले तो अपवित्रता। और इसको बाकी पुरुष बहुत आदर देते रहे हैं क्योंकि बाकी पुरुषों का मन स्त्री को छूने के लिए लालायित है। वे देखते हैं कि एक आदमी स्त्री को नहीं छूता है, दूर-दूर भागता है, वे कहते हैंः है महापुरुष, है तपस्वी, क्योंकि हमारा तो मन नहीं मानता बिना छुए हुए। हमारा मन होता है कि छुएं-छुएं-छुएं। किसी तरह रोकते हैं, संस्कार, शिष्टाचार, सब तरह से अपने को सम्हालते हैं, लेकिन मौका मिल जाए, भीड़ मिल जाए, मंदिर हो, मस्जिद हो, गिरजा हो, तो थोड़ा-बहुत धक्का दे ही देते हैं, वह दूसरी बात है। लेकिन सामने शिष्टाचार रखते हैं, दूर-दूर बच कर चलते हैं।

इतना बच कर चलना सबूत किस बात का है? इतना बच कर चलना छूने की इच्छा का सबूत है और किसी बात का सबूत नहीं है। इतनी घबड़ाहट, सबूत किस बात का है? तो बाकी पुरुष देखता है कि यह है संन्यासी, यह महाराज। ये स्त्री को छूने नहीं देते, दूर से ही चिल्लाते हैं, दूर-दूर, दूर-दूर, दस कदम दूर रहना।

अभी मैंने सुना कि एक महाराज को यहां बंबई में किसी स्त्री ने छू दिया, तो उन्होंने तीन दिन का उपवास किया। और उससे उनकी इज्जत बहुत बढ़ी। क्योंकि कामवासना से भरे हुए समाज में ऐसे ही लोगों की इज्जत हो सकती है। कामवासना से भरे हुए समाज में ऐसे ही लोगों की इज्जत हो सकती है। क्योंकि हम कामवासना से भरे हैं, हमें लगता है कितना महान त्याग किया कि एक स्त्री ने छुआ और उन्होंने इनकार कर दिया कि नहीं छूने देंगे। यह हमारी सेक्सुअल मेंटेलिटी का सबूत है। और इसको अगर सदव्यवहार समझते हैं, तो मैं स्त्रियों के साथ ऐसा सदव्यवहार करने से इनकार करता हूं। लेकिन बड़े मजे की बात है, बड़ी आश्चर्य की कि एक बहन ने पूछा है, किसी पुरुष ने पूछा होता तो मेरी समझ में आ सकता था। यह बहन बड़ी मर्दानी होगी। इसकी बुद्धि पुरुषों से निर्मित होगी।

वह कैंप में जो बहन मेरे आकर हृदय से लग गई, उस क्षण में उसकी प्रार्थना, उसका प्रेम, उसका आनंद, उसकी पवित्रता अदभुत थी, अन्यथा हजार लोगों के सामने वह मेरे हृदय से आकर जुड़ जाने की हिम्मत भी नहीं कर सकती थी। उसका पति बगल में खड़ा था, वह घबड़ाता रहा। अभी उनके पति मुझे मिले और कहने लगे, मैंने इससे पूछा कि पागल तूने यह क्या किया? उसने कहा कि मुझे तो पता ही नहीं था। यह तो जब मैं अलग हट गई तब मुझे खयाल आया कि लोग क्या सोचेंगे, लेकिन उस क्षण में मुझे सोच-विचार भी न था। उस क्षण मुझे लगा कि कोई दूर की पुकार मुझे खींच रही है और मैं पास चली गई। उसी स्त्री को मैं धक्का दे दूं इस खयाल से कि कोई अखबार का रिपोर्टर फोटो न उतार ले। उसे कह दूं कि नहीं दूर। उसे दूर कह कर मैं सिर्फ इतना सिद्ध करूंगा कि मेरे भीतर भी वासना उद्दाम वेग से खड़ी है, अन्यथा भय क्या है? अन्यथा डर क्या है? अन्यथा चिंता क्या है? वह स्त्री कहीं कोई एकांत अंधेरे कोने में मुझसे गले आकर नहीं मिली थी। हजार लोग चारों तरफ खड़े थे, वहां फोटो उतारी जा रही थी। मुझमें भी थोड़ी बुद्धि तो है। लेकिन इस निर्बुद्धि समाज के सामने ऐसा लगता है कि चाहे कुछ भी सहना पड़े, जो ठीक है, जो सही है--चाहे अनादर सहना पड़े, चाहे अपमान सहना पड़े--जो ठीक है, सही है वही करना है, वही किए चले जाना है। मुझे नहीं लगता कि कोई पुरुष मेरे पास प्रेम से आकर जब गले मिलता है तो उसे मैं नहीं रोकता, तो एक स्त्री को मैं कैसे रोक सकता हूं। जब कोई पुरुष को मैं नहीं रोकता तो स्त्री को कैसे रोक सकता हूं। और स्त्री और पुरुष के बीच इतना फासला करने की जरूरत क्या है? प्रयोजन क्या है? क्या हमें शरीर के अतिरिक्त कभी कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता? वह जिस फोटोग्राफर ने चित्र उतारा होगा और जिस संपादक ने छापा होगा, वह फोटो मेरे और उस स्त्री के बाबत कम, उस फोटोग्राफर और संपादक के संबंध में ज्यादा बताते हैं। उसकी बुद्धि वहीं अटकी रही, उस घंटे भर के ध्यान के बाद उसे यही दिखाई पड़ा, इतना ही दिखाई पड़ा!

उन बहन ने यह भी पूछा है कि गांधी जी तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी स्त्रियों के साथ नहीं करते थे। तो शायद बहन को गांधी जी का कुछ पता नहीं। गांधी जी इस दुर्व्यवहार को शुरू करने वाले महापुरुष हैं। हिंदुस्तान में गांधी ने पहली बार स्त्री को सम्मान दिया है। हिंदुस्तान के महापुरुषों में स्त्री को सम्मान देने वाले गांधी के मुकाबले सिवाय महावीर को और कृष्ण को छोड़ कर और कोई भी नहीं है। बुद्ध भी नहीं। बुद्ध तक भयभीत हो गए इस बात से जब स्त्रियों ने आकर कहा कि हमें भिक्षुणी बना लो, तो बुद्ध ने कहा कि नहीं-नहीं,

यह नहीं हो सकता। बुद्ध भयभीत हो गए इस बात से कि स्त्रियां अगर भिक्षुणी बनेंगी और भिक्षुओं के साथ रहेंगी, तो खतरा है।

महावीर ने जरूर कोई चिंता नहीं की, बात ही नहीं की, स्त्रियों को भिक्षुणी बनाया। और हैरान होंगे जान कर आप कि महावीर के भिक्षु थे केवल बारह हजार और भिक्षुणियां थीं चालीस हजार। न मालूम कितने लोगों ने महावीर पर एतराज किया होगा कि चालीस हजार स्त्रियों से घिरा हुआ है यह आदमी। जरूर एतराज किया होगा, क्योंकि आदमी सदा आप ही जैसे हमेशा से थे। आपसे बदतर।

क्राइस्ट पर लोगों ने शक किया कि मेरी मेग्दलीन नाम की वेश्या इसके चरणों में आकर चरण छूती है। लोगों ने कहा कि नहीं इस स्त्री को चरण मत छूने दो। क्राइस्ट ने कहाः लेकिन स्त्री का पाप क्या है कि चरण न छुए? लोगों ने कहाः स्त्री थी तो भी ठीक, यह वेश्या है। क्राइस्ट ने कहाः वेश्या मेरे पास नहीं आएगी तो कहां जाएगी? और अगर मैं वेश्या को इनकार कर दूंगा, तो फिर वेश्या के लिए उपाय क्या है? मार्ग क्या है?

विवेकानंद हिंदुस्तान लौटे, निवेदिता साथ आ गई, और बस हिंदुस्तान का दिमाग फिर गया। और सारे बंगाल में बदनामी फैल गई कि यह स्वामी और संन्यासी और यह निवेदिता कैसे साथ? निवेदिता की पवित्रता को, निवेदिता के प्रेम को किसी ने भी नहीं देखा! आज जो सारी दुनिया में विवेकानंद का काम फैला हुआ दिखाई पड़ता है, उसमें विवेकानंद का हाथ कम निवेदिता का हाथ ज्यादा है। निवेदिता भी दंग रह गई होगी। कैसे ओछे लोग थे! कैसी छोटी बुद्धि थी! इतना ही उन्हें दिखाई पड़ा! विवेकानंद को इतना ही समझ पाए वे सिर्फ!

गांधी ने तो बहुत हिम्मत की। स्त्रियों को गांधी हिंदुस्तान के घरों से पहली दफे बाहर लाए। स्त्रियों को पुरुषों के साथ खड़ा किया। आपको शायद पता नहीं होगा, वह मेरी ही फोटो छप गई, ऐसा नहीं, मैंने सुना है कि गांधी की एक फोटो यूरोप और अमरीका में खूब प्रचारित की गई थी। एक फोटो तो उनकी वह प्रचारित की गई, जिसमें वे अपने ही घर की बच्चियों की, जो उनकी नातनी-पोतनियां होंगी, उनके कंधों पर हाथ रखे हुए दिखाए गए हैं। वह फोटो प्रचारित की गई कि यह गांधी बुढ़ापे में भी छोकरियों के साथ रास-रंग करता है। शायद उन बहन को पता नहीं होगा कि वह फोटो जिसमें वे लड़कियों के कंधे पर हाथ रख कर घूमने जाते हैं या प्रार्थना में जाते हैं। तो यह बताया गया है कि यह बुड्ढा हो गया, अभी लेकिन इसका लड़कियों में रस है, लड़कियों के कंधों पर हाथ रख कर चलता है। और पूछने वाला पूछ सकता है कि लड़कियों के कंधे पर क्यों लड़कों के कंधों पर क्यों नहीं? बिल्कुल ठीक! लेकिन उसे पता नहीं कि गांधी को लड़के और लड़कियों में कोई भी फर्क नहीं भी हो सकता है।

यह मत सोचना कि वह फोटो मेरा ही छाप दिया, वह फोटो हमेशा से छापने वाले लोग रहे हैं और रहेंगे। अपनी बुद्धि के अनुकूल ही वे कुछ कर सकते हैं, उससे ज्यादा करने का उपाय भी तो नहीं है। उन पर नाराज होने का कोई कारण भी तो नहीं है। और शायद उन बहन को पता नहीं होगा कि गांधी अपनी अंतिम उम्र में, बुढ़ापे में, एक बीस वर्ष की नग्न युवती को लेकर छह महीने तक बिस्तर पर सोते रहे। तब उनको पता चलेगा। इतना दुर्व्यवहार अभी मैंने किसी स्त्री से नहीं किया है। छह महीने तक एक नग्न युवती के साथ गांधी बिस्तर पर सोते रहे। किसलिए? इस बात की जांच के लिए कि क्या मन के किसी कोने-कातर में, मन के किसी भी अंधकारपूर्ण कोने में स्त्री की कोई वासना तो शेष नहीं रह गई? जो रात में नग्न स्त्री को अकेले में, एकांत में पाकर, बिस्तर पर साथ पाकर जाग आए, तो मैं परीक्षा कर लूं उससे, उससे मुक्त होने का कोई उपाय कर लूं।

और उस स्त्री की पवित्रता की कल्पना करते हैं जो छह महीने तक गांधी के साथ नग्न सो सकी। और उसने पीछे कहा कि गांधी के साथ सो कर मुझे छह महीने में ऐसा लगा--गांधी जैसे मेरी मां हैं।

जल्दी नतीजे लेना ठीक नहीं है। जिंदगी बहुत गहरी है और बहुत समझने को है। जहां हम खड़े हैं जिंदगी वहीं नहीं है, जिंदगी और आगे है। हम मिट्टी के दीये हैं, जिंदगी की ज्योति मिट्टी के दीये से बहुत ऊपर जाती है। जिनको ऊपर की ज्योति नहीं दिखाई पड़ती उन्हें सिर्फ मिट्टी के दीये दिखाई पड़ते हैं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पांचवां प्रवचन

## अतीत के मरघट से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!

आज ही एक पत्र में मुझे स्वामी आनंद का एक वक्तव्य पढ़ने को मिला। और बहुत आश्चर्य भी हुआ, बहुत हैरानी भी हुई। स्वामी आनंद से किसी ने पूछा कि मैं जो कुछ गांधी जी के संबंध में कह रहा हूं उसके संबंध में आपके क्या खयाल हैं? स्वामी आनंद ने तत्काल कहाः उस संबंध में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं। शिष्टाचार वश शायद उनके मुंह से ऐसा निकल गया होगा, क्योंकि यह कहने के बाद वे रुके नहीं और जो कहना था वह कहा। ऊपर से ही कह दिया होगा कि कुछ नहीं कहना चाहता हूं, लेकिन भीतर आग उबल रही होगी वह पीछे से निकल आई, इससे रुकी नहीं। आश्चर्य लगा मुझे कि पहले कहते हैं कि कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं और फिर जो कहते हैं! आदमी ऐसा ही झूठा और प्रवंचक है। शब्दों में कुछ है, भीतर कुछ है। कहता कुछ है, कहना कुछ और चाहता है। उन्होंने जो कहा वह और भी हैरानी का है।

स्वामी आनंद तो मुझसे भलीभांति परिचित हैं। लेकिन, ऐसी जानकारी भी उनकी होगी, यह मुझे पता नहीं था। उन्होंने कहा कि नहीं कुछ कहना चाहता हूं, और फिर कहा कि अगर एक कौआ मस्जिद पर बैठ कर अपने को मुल्ला समझने लगे, तो इसमें कुछ कहने की बात नहीं। स्वामी आनंद से मैं परिचित हूं। लेकिन मुझे इसका परिचय नहीं था कि उनका कौओं से परिचय है। कौवे मस्जिद पर बैठ कर क्या सोचते हैं, स्वामी आनंद किसी जन्म में कौआ न रहे हों, तो उन्हें पता लगाना बहुत मुश्किल है, एकदम कठिन है। जरूर किसी जन्म में कौआ रहे होंगे, किसी मस्जिद के ऊपर बैठ कर मुल्ला होने की सोची होगी। अन्यथा कौवे क्या सोचते हैं, कैसे पता लगा सकते हैं? कौआ की बुद्धि मुल्ला होने से ऊपर जा भी नहीं सकती। कौओं को छोड़ कर शायद ही कोई और मुल्ला होना चाहता हो। जो मुल्ले हैं वे भी कौवों की बुद्धि से ज्यादा बुद्धिमान नहीं होते। और फिर मुल्ला होने का शायद स्वामी आनंद को पता नहीं कि मुल्ला होना कब संभव होता है। जब कोई किसी पंथ को मानता हो, संप्रदाय को मानता हो, वाद को मानता हो, किसी गुरु को मानता हो, तो मुल्ला हो सकता है। न तो मैं किसी पंथ को मानता, न किसी वाद को मानता, न किसी गुरु को मानता, न किसी संप्रदाय को मानता। मेरा मुल्ला होना बिल्कुल मुश्किल है। लेकिन स्वामी आनंद मुल्ला हैं और कहना चाहिए कठमुल्ला हैं।

गांधीवाद को एक धर्म बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधीवाद को एक चर्च बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधी स्वयं जिंदगी भर यह चिल्ला कर कहते रहे कि मेरी मूर्तियां मत बना देना, मेरे मंदिर मत बना देना। लेकिन वह साजिश जारी है, उनकी मूर्तियां बनाई जा रही हैं, उनके मंदिर बनाए जा रहे हैं। अभी एक सज्जन ने गांधी-पुराण भी लिख डाला है। और उसमें उन्होंने इस भांति व्यवस्था की है कि जैसे और पुराण हैं, विष्णु-पुराण, वैसा गांधी को अवतार बताने की कोशिश की है। बहुत शीघ्र गांधी के पास एक धर्म खड़ा करने की कोशिश चल रही है। स्मरण रहे, जब भी किसी व्यक्ति के पास धर्म खड़ा हो जाता है, तो व्यक्ति तो मर जाता है, मुल्लाओं और पंडितों की बन आती है। जीसस के पास ईसाई पादरी इकट्ठा है और जीसस की आवाज को दुनिया तक नहीं पहुंचने देता। महावीर के पास महावीर के गणधर इकट्ठे हैं और महावीर की आवाज, सच्ची आवाज, सत्य की आवाज दुनिया तक नहीं पहुंचने देना चाहते। जैसे ही किसी व्यक्ति के आस-पास संगठन बनता है, संप्रदाय बनता है, सत्य की हत्या हो जाती है।

मैंने सुना है, एक बार एक आदमी को सत्य मिल गया था, तो शैतान के शिष्यों ने, वे जो डिसाइपल्स ऑफ डेविल हैं, उन्होंने भाग कर शैतान को अपने गुरु को खबर दी कि पता है, तुम आराम से सो रहे हो, एक आदमी को सत्य मिल गया है और हमारी सल्तनत डगमगाई जा रही है। कुछ करना चाहिए शीघ्रता से। क्योंकि अगर आदमियों को सत्य मिल जाएगा तो शैतान का क्या होगा? शैतान ने कहा कि क्या करोगे, अब सत्य मिल चुका। तुम पहले कहां थे, क्यों मुझे आकर पहले नहीं कहा, हम पहले ही सत्य मिलने में बाधा डालते। अब तो एक ही रास्ता है, अब तुम जाओ शीघ्रता से गांव-गांव में और डंडे और घंटी लेकर पीटो, गांव-गांव में यह आवाज कि फलां आदमी को सत्य मिल गया है जिनको भी चाहिए हो चलो। शैतान के शिष्यों ने कहाः इससे क्या होगा? शैतान ने कहाः पंडित और मुल्ले सुन लेंगे यह और जहां भी उन्हें पता चला कि किसी आदमी को सत्य मिल गया है, पंडित और मुल्ले वहां जाकर अड्डा जमा लेते हैं और एजेंट बन जाते हैं। जनता और सत्य के बीच में पंडित से बड़ी दीवाल और कोई भी खड़ी नहीं की जा सकती है। तुम जाओ और जल्दी गांव-गांव में खबर कर दो।

और मैंने सुना है कि शैतान के शिष्य गए और उन्होंने गांव-गांव में खबर कर दी। हजारों लोग वहां से चलने लगे। उस सत्य के खोजी के पास, उसके आस-पास पंडितों की दीवाल खड़ी हो गई। व्याख्याकारों की, टीकाकारों की। वे कहने लगे, क्या चाहते हो, हम बताते हैं। वह आदमी उस भीड़ में दब गया। मंदिर बन गया वहां एक उसकी लाश पर। हजारों लोग पूजा करते हैं उस आदमी की। उसकी किताबें हैं। लेकिन उस आदमी को, जो सत्य मिला था, उसकी कोई किरण किसी तक अभी तक नहीं पहुंच पाई है। दुनिया में सत्य की हत्या का एक ही उपाय है, सत्य की हत्या करना हो तो शीघ्रता से संप्रदाय बना दो। संप्रदाय बना कर सत्य की हत्या हो जाती है। मैं तो मुल्ला नहीं हो सकता, मुश्किल है, क्योंकि मैं किसी संप्रदाय को नहीं मानता हूं। लेकिन स्वामी आनंद मुल्ला हो सकते हैं। गांधी का एक संप्रदाय बनाए हुए हैं। अन्यथा मेरी बातों से इतनी पीड़ा और परेशानी की जरूरत न थी। मेरी बातों का उत्तर दें, मेरी बातों की चर्चा करें। मैं जो कहता हूं वह गलत हो सकता है, उसे गलत बताएं, समझाएं। लेकिन शांति से, इसमें क्रोध की क्या जरूरत है। क्रोध वहां आता है जहां वेस्टेड इंट्रेस्ट हो, जहां न्यस्त कोई स्वार्थ हो, तब क्रोध आता है, अन्यथा क्रोध की क्या जरूरत है? अन्यथा यह चिल्लाने की क्या जरूरत है कि मेरी किताबों को आग लगा दो। यह कहने की क्या जरूरत है कि मुझे आने मत दो, सभा मत होने दो।

ये सारी बातें सुन कर मुझे दादा धर्माधिकारी एक घटना सुनाते थे, वह याद आई। वे मुझे कहते थे, मैं पंजाब में था और पंजाब में सरदारों की एक सभा में बड़ा शोरगुल होता था। जहां दादा को बोलने बुलाया था। जो अध्यक्ष थे उन्होंने डंडा उठा कर पटका जोर से टेबल पर और कहाः चुप होते हो कि नहीं, डंडे से सिर तोड़ दूंगा, चुप हो जाओ। वह सभा एकदम चुप हो गई। फिर डंडा बजा कर उन्होंने कहा कि अब सुनो। अब दादा धर्माधिकारी अहिंसा पर भाषण देंगे। तो दादा मुझसे कहते थे, मैंने अपनी खोपड़ी ठोक ली और मैंने कहाः क्या खाक भाषण देंगे अहिंसा पर! डंडा बता कर कहता है वह आदमी कि चुप हो जाओ, नहीं तो खोपड़ी तोड़ देंगे! और फिर अहिंसा पर भाषण होता है! बड़ा सही अहिंसावादी रहा होगा। गांधी की आलोचना करके अहिंसावादियों की असलियत का मुझे भी पहली दफा पता चलना शुरू हुआ है कि उनकी असलियत क्या है! हाथ में उनके भी डंडे हैं और अगर अहिंसा की बात नहीं मानेंगे आप, तो वे डंडे से आपको अहिंसा की बात समझाएंगे।

लेकिन यह देश अब बहुत दिन इस तरह के धोखों में नहीं रखा जा सकता है। बहुत लंबी कथा है इसके धोखों की। बहुत लंबी यात्रा है इसके दुर्भाग्य की। विचार के लिए आज तक इस देश में परिपूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिली। इसलिए हम जगत में पिछड़ गए हैं और पीछे पड़ गए हैं। हिंदुस्तान ने कभी भी तीव्र विचार के लिए निमंत्रण नहीं दिया। कभी भी विचारपूर्ण विद्रोह के लिए साहस नहीं दिखाया। नये विचार से भय दिखाया, घबड़ाहट दिखाई। हमेशा उसने यह मानना चाहा कि जो हमारी पुरानी किताब में लिखा हो, वही सही होना चाहिए। पुराने ने कुछ सही होने का ठेका ले लिया है! पुराना ही सत्य होना चाहिए, जैसे कि सत्य को जानने के लिए आगे कोई पैदा ही नहीं होगा। वे सब लोग पीछे पैदा हो चुके जिन्होंने सत्य जाना। अब आगे? आगे लोग व्यर्थ पैदा हो रहे हैं, उन्हें कोई अनुभव नहीं होगा, कोई सत्य नहीं होगा।

यह हमारी प्रवृत्ति कि सब कुछ पीछे हो चुका--सत्य भी हो चुका, स्वर्ण-युग भी हो चुका, सब तीर्थंकर, सब महावीर, सब पैगंबर, सब पीछे हो चुके। अब आगे कुछ होने को नहीं है। इस विचार ने ही कि सब विचार किया जा चुका, अब आगे कुछ विचार करने को नहीं है--भारत ने विचार की हत्या कर दी।

नहीं, बहुत विचार करने को शेष हैं, बहुत नई खोज होने को शेष हैं, बहुत से सत्यों का उदघाटन होगा, जो नहीं हुआ। बहुत से पर्दे उठेंगे, बहुत से रहस्य उदघाटित होंगे। जीवन समाप्त नहीं हो गया है, जीवन की यात्रा जारी है। लेकिन अगर कोई कौम ऐसा समझ ले कि सब हो चुका, अब उस पर कोई विचार नहीं करना, आगे कुछ नया विचार हो नहीं सकता, तो उस कौम की अगर प्रतिभा नष्ट हो जाए तो इसमें आश्चर्य है!

भारत के पास अदभुत प्रतिभा थी। आज भी प्रतिभा है सोई हुई। लेकिन उसका नया अवतरण, नया विकास, नया ऊर्ध्वगमन उस प्रतिभा का नहीं हो पाता है, क्योंकि हमारी धारणा यह है कि अब नया कुछ होने को नहीं है। जब नया कुछ होने को नहीं है, तो नया नहीं हो सकेगा। क्योंकि हम जो विचार करते हैं, जो धारणा बनाते हैं वैसा ही हमारा जीवन हो जाता है। न तो महावीर पर रुक गए हैं हम, न कृष्ण पर और न गांधी पर रुकने की कोई जरूरत है। जिंदगी रुकना जानती ही नहीं। लेकिन जहां-जहां गुरूडम खड़ी हो जाती है वहीं जीवन की धारा को बांध बना कर रोकने की कोशिश की जाती है कि बस यहीं, अब इससे आगे नहीं।

गांधी रुक जाएंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। मैं रुक जाऊंगा, जीवन तो नहीं रुकेगा। आप रुक जाएंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। यह मोह बिल्कुल पागल मोह है कि मैं रुकूं, उसी के साथ जीवन भी रुक जाए। यह बिल्कुल पागल मोह है, यह बिल्कुल ही विक्षिप्त मोह है। मैं रुक जाऊंगा, ठीक है, लेकिन जीवन तो आगे जाएगा, जीवन नये किनारे छुएगा, जीवन नये मार्ग चुनेगा, जीवन नये अनुभव करेगा। मेरे अनुभवों के साथ जीवन सदा के लिए रुक जाए, यह जरूरी है, यह उचित है, यह योग्य है? मैं कोई जीवन हूं पूरा? व्यक्ति पैदा होते हैं और विलीन हो जाते हैं। समाज सतत चलता रहता है। लेकिन जिन समाजों के मन में यह धारणा बैठ जाती है कि हम रुक जाएं अतीत पर, वे समाज भविष्य की तरफ गति करना बंद कर देते हैं। उनका जीवन स्टैग्नेंट, रुका हुआ, अवरुद्ध हो जाता है। जैसे गंगा रुक जाए, रुका हुआ पानी गंदा हो जाता है। यह भारत का समाज इतना गंदा इसीलिए हो गया है। यह समाज रुका हुआ पानी है। रुके हुए समाज का फिर जीवन आगे तो नहीं बढ़ता। धूप पड़ती है, ताप पड़ता है, सड़ांध आती है, गंदगी बढ़ती है, भाप बन कर पानी उड़ता है और कीचड़ पैदा होती है और कुछ भी नहीं होता। कभी आपने किसी तालाब को सागर तक पहुंचते देखा है? सरिताएं पहुंचती हैं सागर तक। सरिताएं जो कि भागती हैं अज्ञात की तरफ--खोज करती हैं अनजान की, अननोन की। डबरा तालाब का अपने में बंद होकर बैठ जाता है कहीं नहीं जाता, गोल घेरे में घूमता रहता है। अपना वाद का घेरा

है, उसी में घूमता रहता है। फिर वह सागर तक भी नहीं पहुंच पाता है। और जो जल सागर तक न पहुंच पाए वह जल कभी भी असीम अनुभव को उपलब्ध नहीं हो पाता।

जीवन भी अनंत तक पहुंचने को है। व्यक्ति आएंगे, महान से महान व्यक्ति आएंगे और विलीन हो जाएंगे और जीवन की धारा आगे बढ़ती रहेगी। कोई महापुरुष अधिकारी नहीं है कि जीवन की धारा को अपने पास रोक ले। लेकिन महापुरुष रोकना भी नहीं चाहते। महापुरुष तो चाहते हैं कि जीवन की धारा आगे बढ़े। लेकिन महापुरुषों के पास जो लघु मानव हैं, छोटे-छोटे मानव इकट्ठे हो जाते हैं, वे जीवन की धारा को रोकने की कोशिश करते हैं। क्योंकि उनकी कीमत तभी तक है जब तक जीवन उनके महापुरुष के पास रुका रहे। अगर जीवन आगे बढ़ गया और महापुरुष भूल गए तो इन दीन-जनों का क्या होगा जो आस-पास बैठ कर दुकान खोले हुए थे, इनका क्या होगा? इनकी दुकान तभी तक चलेगी, जब जीवन इनके महापुरुष की लाश के पास रुका रहे।

भारत ने यह भूल बहुत कर ली है। आगे यह भूल नहीं की जानी है। भारत का सारा का सारा मस्तिष्क अतीतोन्मुख है, पीछे की तरफ देखता है। आगे की तरफ देखता ही नहीं। रूस के बच्चे चांद पर बस्तियां बसाने का विचार करते हैं और भारत के बच्चे? भारत के बच्चे रामलीला देखते हैं! कब तक हम रामलीला देखते रहेंगे? कितनी बार रामलीला देखी जा चुकी है? राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन कितनी बार? क्या हम यही करते रहेंगे? क्या हमारी चेतना एक वर्तुल में घूमती रहेगी? क्या हम आगे नहीं बढ़ेंगे? कोई नई लीलाएं नहीं होंगी जगत में? कोई नये राम पैदा नहीं होंगे? कोई नया कृष्ण नहीं होगा? बस, पीछे और पीछे? भगवान ने बड़ी भूल की है भारत के साथ, उसकी बड़ी कृपा होती अगर वह भारतीयों की आंखें खोपड़ी में सामने की तरफ न लगा कर पीछे की तरफ लगाता। उससे हमको बड़ी सुविधा होती। उससे हम निरंतर पीछे की तरफ देखने में समर्थ हो जाते। लेकिन भगवान बड़ा नासमझ है। हम उसकी नासमझी को बरदाश्त थोड़े ही करते हैं, हम अपनी खोपड़ी पीछे की तरफ मोड़ कर, पीछे की तरफ देखते चले जाते हैं, अगर कभी भारत ने अपनी कारें बनाईं, अभी तो पश्चिम की नकल करनी पड़ती हैं हर बात में, तो हम कारों का लाइट पीछे की तरफ लगाएंगे, आगे कभी नहीं लगा सकते। क्योंकि आगे की कार तो पश्चिम की कार है, शुद्ध भारतीय कार में पीछे की तरफ लाइट होगा। चलना आगे है वह तो ठीक है, लेकिन देखना तो पीछे है। जहां उड़ती धूल रह जाती है, उसे देखना है। जहां से रथ गुजर गए, उनकी उड़ती धूल देख रहे हैं। राम का रथ निकल चुका, महावीर का रथ निकल चुका, गांधी का रथ निकल चुका। कब तक उस धूल को देखते रहेंगे? कब तक उस धूल को पूजते रहेंगे? आगे नहीं बढ़ना है?

और ध्यान रहे, जीवन जाता है सदा आगे की तरफ। जीवन कभी पीछे की तरफ नहीं लौटता है, नहीं लौट सकता है। कोई मार्ग नहीं है पीछे, पीछे सिर्फ स्मृति है, कोई मार्ग नहीं। पीछे हम याद कर सकते हैं, पीछे जा नहीं सकते। समय में एक क्षण भी तो पीछे नहीं लौटा जा सकता। एक क्षण को भी तो हम पीछे नहीं जा सकते। जो समय का क्षण बीत गया, उसमें अब हम कभी भी नहीं जा सकेंगे, वह सदा को, सदा को बीत गया, उसमें लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। वह सेतु गिर गया, वह मार्ग नष्ट हो गया। वहां हम कभी भी नहीं जा सकते। पास्ट में, अतीत में जाने का कोई द्वार ही नहीं है और जब अतीत में हम जा नहीं सकते, तो हम एक ही काम कर सकते हैं; अतीत की स्मृति कर सकते हैं, याद कर सकते हैं।

लेकिन ध्यान रहे, जितनी हमारी ऊर्जा अतीत की स्मृति में और याद में नष्ट होती है, उतनी ही ऊर्जा भविष्य में जाने के लिए कम पड़ जाती है। जितनी हमारी दृष्टि अतीत से बंध जाती है, उतना ही हम आगे की तरफ देखने में असमर्थ हो जाते हैं। और यह भी ध्यान रहे, चलना आगे है और देखना अगर पीछे रहा, तो गड्ढों

में गिरे बिना कोई रास्ता नहीं रहेगा। गड्ढों में गिरना पड़ेगा। भारत सैकड़ों बार गड्ढों में गिरता रहा है। हजार बार गड्ढों में गिरा है। दुर्घटनाओं के सिवाय हमारी लंबी कथा में और क्या है? कितनी गुलामी, कितनी दीनता, कितनी दरिद्रता! लेकिन हमारी आदत पीछे देखने की कायम, बरकरार है। पीछे देखते हैं, आगे चलते हैं। गिरेंगे नहीं तो और क्या होगा?

एक ज्योतिषी यूनान में एथेंस के पास एक गांव से गुजरता था। सांझ थी। चांद उगा होगा आकाश में आज जैसा। वह चांद को देखता था, तारों को देखता था, एक गड्ढे में गिर पड़ा। आकाश की तरफ देख रहा था, जमीन का गड्ढा नहीं दिखाई पड़ा होगा। एक बूढ़ी औरत ने उसे गड्ढे से निकाला। उसके दोनों पैर टूट गए थे। उसने उस बूढ़ी औरत को धन्यवाद दिया और कहा कि मां, बहुत-बहुत धन्यवाद! मैं तेरी क्या सेवा कर सकता हूं? इतना मैं कहता हूं, शायद तुझे पता नहीं होगा, मैं यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी हूं। अगर तुझे चांद-तारों के संबंध में कुछ भी जानना हो तो मेरे पास आ जाना।

उस बूढ़ी औरत ने कहाः पागल, मैं तेरे पास चांद-तारों के संबंध में पूछने आऊंगी? जिसे अभी जमीन के गड्ढे नहीं दिखाई पड़ते, उसके चांद-तारों के देखने का कोई भरोसा है? उसका कोई विश्वास किया जा सकता है? पहले बेटे, जमीन के गड्ढे देखने सीखो, फिर आकाश के चांद-तारे देखना। ठीक ही कहा उस बूढ़ी औरत ने। अभी जमीन का गड्ढा न दिखाई पड़ता हो तो चांद-तारों के ज्ञान का भरोसा क्या है?

जिन्हें आगे हाथ भर नहीं दिखाई पड़ता वे हजारों मील पीछे की यात्रा की कथाएं दोहरा रहे हैं। इतिहास की धूल, बीत गए रथों के चक्कों के चिह्न, उन्हीं पर हम रुके हैं। दुर्भाग्य है, इसीलिए दुर्भाग्य है, इसलिए भविष्य में रोज टकरा जाते हैं। इसलिए भविष्य को हम निर्मित नहीं कर पाते। भविष्य का क्षण आ जाता है और हम बिल्कुल ही अनजान, बेहोश खड़े रह जाते हैं। जब क्षण आकर पकड़ लेता है, तब हम चौंक कर खड़े हो जाते हैं। हमारी समझ में नहीं आता क्या करें? हमारे खयाल में नहीं आता। जब तक हम सोच पाते हैं समय बीत जाता है। समय किसकी प्रतीक्षा करता है? समय रुका नहीं रहता, जो उसे पहले से तैयारी करते हैं, वे उस समय का उपयोग कर पाते हैं। जो उसके सामने बैठे रहते हैं, जब समय आ जाता है... हम उस तरह के लोग हैं, घर में आग लग जाती है तब हम कुआं खोदने बैठ जाते हैं। हम कहते हैं, आग लग गई है, अब कुआं खोदना चाहिए। जब तक हम कुआं खोद पाते हैं, तब तक घर कभी का जल कर राख हो जाता है। घर में आग लगती हो तो कुआं तैयार होना चाहिए, तब आग बुझाई जा सकती है। लेकिन हमें फुर्सत कहां कि हम भविष्य के कुएं निर्मित करें, हमें फुर्सत कहां, हमें ध्यान कहां, हमारी कल्पना नहीं जाती वहां। पीछे और पीछे!

गांधी ने पुनः पीछे की दृष्टि हमें फिर से पकड़ा दी। गांधी कहने लगे, राम-राज्य चाहिए। बड़ी अजीब बात है। राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन रामराज्य? रामराज्य बिल्कुल बात दूसरी है। गांधी को राम से बहुत प्रेम था, उचित ही है। राम जैसे व्यक्ति से प्रेम किया जा सकता है। प्रेम भारी रहा होगा। उनके प्राण में, रग-रग में राम भर गए थे। गोली लगी गोडसे की, तो न तो मां की याद आई, न पिता की याद आई, न गांधीवादियों की याद आई। याद आई राम की। राम! प्राणों के प्राण में वह आवाज घुस गई होगी, वह प्रेम घुस गया होगा। गोली प्राणों में पहुंची तो वहां राम के सिवाय कुछ भी नहीं पाया उस समय। राम से उनका बहुत प्रेम था और उसी प्रेम के वश वे रामराज्य की बातें करने लगे। लेकिन, राम से प्रेम ठीक है, रामराज्य से प्रेम खतरनाक बात है।

रामराज्य पूंजीवाद से भी पिछड़ी हुई व्यवस्था है, फ्यूडेलिज्म है, सामंतवाद है। रामराज्य भविष्य की समाज-योजना नहीं है। अतीत, पिछड़े हुए, बीते हुए, जा चुके जीवन की व्यवस्था है। रामराज्य नहीं लाना है हमें, लाना है भविष्य का राज्य। रामराज्य तो बीत गया। एक तो हम लाना भी चाहें तो नहीं ला सकते। और

अगर हम ला भी सकते हों तो हमें कभी लाने का विचार भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि रामराज्य तो पिछड़ा हुआ, आज से भी बदतर समाज और जीवन-व्यवस्था है। करोड़ों-करोड़ों गुलाम हैं। स्त्रियों की इज्जत कितनी रही होगी, वह सीता की इज्जत से पता चल जाता है। एक साधारण से आदमी की आवाज से सीता को उठा कर फेंका जा सकता है जंगलों में। साधारण स्त्री की क्या हैसियत रही होगी? स्त्री की यह हैसियत!

रात बहुत प्यारे हैं। और यह ध्यान रहे, कि यह भूल हम हमेशा करते हैं। हम क्या भूल करते हैं, वह भूल हमें समझ लेनी चाहिए ताकि आगे हम न कर सकें। दो हजार साल बाद न तो मुझे कोई याद रखेगा, न आपको कोई याद रखेगा, लेकिन गांधी याद रह जाएंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे, कितना महान व्यक्ति था गांधी, इतने ही महान लोग गांधी के समाज के लोग भी रहे होंगे। हम तो भूल जाएंगे। हमारी तो कोई रूप-रेखा नहीं छूट जाएगी। हमारे तो कोई पदचिह्न कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेंगे। हमारी तो कोई आकृति कहीं नहीं रह जाएगी। कैसे जीते थे हम, किन वासनाओं से भरे हुए, किन क्रोध से, किन घृणाओं से, किन हत्याओं से भरा हमारा जीवन था, वह सब विलीन हो जाएगा, हवा में धुआं हो जाएगा। गांधी की प्रतिमा रह जाएगी। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे, गांधी का समाज कितना अच्छा रहा होगा। गलती बात सोच लेंगे वे।

गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं थे, अपवाद थे, एक्सेप्शन थे। हम गांधी जैसे नहीं हैं। हमारा गांधी से कुछ लेना-देना नहीं है। हम गांधी से बिल्कुल उलटे हैं। लेकिन दो हजार साल बाद जिससे हम बिल्कुल उलटे हैं उसी आदमी से हम जाने जाएंगे। हमारे युग को गांधी-युग कहा जाएगा। हमें कहा जाएगा, गांधी-युग के लोग कैसे अदभुत रहे होंगे। और गांधी के आधार पर तर्क हमारे बाबत अनुमान करेगा, वह अनुमान जितना झूठा होगा उतना ही राम-राज्य के बाबत हमारा अनुमान झूठा है। राम बहुत प्यारे हैं, राम का समाज नहीं। बुद्ध बहुत प्यारे हैं, बुद्ध का समाज नहीं। क्राइस्ट बहुत प्यारे रहे होंगे, क्राइस्ट का समाज नहीं। एक-एक व्यक्तियों के आधार पर पूरे समाज का निर्णय लेने की भूल बहुत हो चुकी, आगे यह भूल नहीं होनी चाहिए। और फिर ध्यान रहे, हमें यह भी समझ लेना जरूरी है, गांधी इतने बड़े महापुरुष दिखाई पड़ते हैं इसीलिए कि गांधी अकेले हैं। अगर दस-पच्चीस हजार गांधी भारत में हों, तो मोहनदास करमचंद गांधी कौन हैं--पहचानना आसान होगा? राम दिखाई पड़ते हैं हजारों साल के बाद इसीलिए कि राम अकेले रहे होंगे। अगर हजार दो हजार राम जैसे सच्चे और अच्छे आदमी होते तो राम की याद रह जाती?

एक स्कूल में शिक्षक काले बोर्ड पर, ब्लैक बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है, सफेद दीवाल पर क्यों नहीं लिखता है? सफेद दीवाल पर लिखेगा तो कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। काले तख्ते पर लिखता है तो खड़िया सफेद उभर कर दिखाई पड़ती है। महापुरुष समाज के ब्लैक बोर्ड पर उभर कर दिखाई पड़ते हैं, अन्यथा दिखाई नहीं पड़ सकते। जिस दिन समाज महान होगा उस दिन महापुरुषों को खोजना बहुत मुश्किल हो जाएगा। समाज क्षुद्र है, नीचा है, इसीलिए महापुरुष दिखाई पड़ते हैं। महापुरुष इतना बड़ा जो दिखाई पड़ता है, वह हमारी क्षुद्रता के अनुपात में दिखाई पड़ता है। जिस दिन महान मनुष्यता पैदा होगी, उस दिन महापुरुषों का युग समाप्त समझ लेना चाहिए। मनुष्यता क्षुद्र है, दीन-हीन है इसलिए महापुरुष दिखाई पड़ते हैं। महापुरुष तो हमेशा पैदा होते रहेंगे, लेकिन महान मनुष्य के बीच उनका कोई पता लगाना आसान नहीं रह जाएगा।

तो मैं कहता हूं कि राम दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि समाज राम से विपरीत रहा होगा। बुद्ध दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि बुद्ध से विपरीत समाज रहा होगा। बुद्ध की सफेद उज्ज्वल रेखा किसी काले समाज के ब्लैक बोर्ड के सिवाय दिखाई नहीं पड़ सकती थी। फिर यह भी ध्यान रख लेना जरूरी है कि अगर हम बुद्ध की, महावीर की,

राम की, कृष्ण की, लाओत्से की, कनफ्यूशियस की, जरथुस्त्र की शिक्षाओं को देखें, तो उन शिक्षाओं से बहुत-कुछ नतीजे लिए जा सकते हैं।

एक बड़े मजे की बात है, वह हम कभी ध्यान ही नहीं देते। महावीर सुबह से सांझ तक लोगों को समझाते हैंः हिंसा मत करो, हिंसा मत करो। अहिंसा! अहिंसा! इससे क्या मतलब है? इसका मतलब है कि लोग अहिंसक थे? लोग अहिंसक थे तो महावीर पागल थे जो उनको समझा रहे थे कि हिंसा मत करो। बुद्ध सुबह से सांझ तक समझा रहे हैंः चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, बेईमानी मत करो, परस्त्री का गमन मत करो। किसको समझा रहे हैं? लोग अगर अच्छे थे, समाज अगर शुभ था, तो ये शिक्षाएं किसके लिए हैं? ये शिक्षाएं बताती हैं कि आदमी कैसे रहे होंगे। जिनको ये शिक्षाएं दी जा रही थीं वे आदमी कैसे रहे होंगे? वे ही शिक्षाएं हमें आज देनी भी पड़ रही हैं। जो शिक्षाएं तीन हजार वर्ष पहले लागू थीं, वे ही आज भी लागू हैं। इससे सिद्ध होता है कि समाज जैसा आज है, तीन हजार वर्ष पहले भी ऐसा ही था। समाज ऊंचा नहीं था। समाज में बुनियादी कोई फर्क नहीं पड़ गया। और यह लेकिन हमारे खयाल में नहीं आ पाता कि शिक्षाएं किन्हें देनी पड़ती हैं, किसको देना पड़ती हैं?

एक चर्च में एक फकीर बोलने गया था। चर्च के लोगों ने कहा था सत्य के संबंध में हमें कुछ समझाओ। उस फकीर ने कहाः सत्य के संबंध में? लेकिन यह तो चर्च है, यहां सत्य के संबंध में समझाने की जरूरत क्या? यहां तो सत्यवादी लोग ही आए होंगे, क्योंकि मंदिरों में, चर्चों में सत्यवादी ही आते हैं। लेकिन लोग नहीं माने, उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, आप तो सत्य के संबंध में हमें समझाइए। वह फकीर खड़ा हुआ। उसने मंच पर खड़े होकर पूछा कि इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, मैं थोड़ी जांच-परख कर लेना चाहता हूं। मैं तुमसे यह पूछता हूं कि मित्रो, तुम बाइबिल तो सब पढ़ते हो? उन सबने हाथ हिलाया कि हम बाइबिल पढ़ते हैं। उस फकीर ने पूछा कि तब मैं तुमसे यह पूछता हूं, तुमने बाइबिल में ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा है? उन सबने हाथ हिलाए, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर जो सामने बैठा था। उन्होंने कहा, हां, हमने पढ़ा है। वह फकीर हंसने लगा, उसने कहा कि अब मैं सत्य के संबंध में बोलूंगा, क्योंकि मैं तुम्हें बता दूं, ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय बाइबिल में है ही नहीं। और तुम सब कहते हो, हमने पढ़ा है। तब ठीक है। फिर सत्य के संबंध में बोलने में कुछ सार है। लेकिन उस फकीर ने कहा, यह जो आदमी सामने बैठा है, यह बड़ा अदभुत आदमी मालूम पड़ता है। आश्चर्य! मेरे दोस्त, तुम चर्च में आ कैसे गए? क्योंकि चर्च में धार्मिक आदमी शायद ही जाते हों। तुम मंदिर में आ कैसे गए? मंदिर का धार्मिक लोगों से संबंध ही नहीं रहा है कभी, तुम आए कैसे? तुम चुप कैसे बैठे हो? तुमने हाथ क्यों नहीं उठाया? उस आदमी ने कहाः महाशय, जरा जोर से बोलिए, मुझे कम सुनाई पड़ता है। क्या आप कहते हैं उनहत्तरवां अध्याय ल्यूक का? रोज पढ़ता हूं, पढ़ता नहीं; रोज पाठ करता हूं। मैं समझा नहीं, इसलिए मैं चुपचाप रहा कि कोई झंझट में न पड़ जाऊं।

समाज की शिक्षाएं समाज की खबर लाती हैं कि कैसे लोग होंगे। शिक्षाएं उन्हें देनी पड़ती हैं जो शिक्षाओं के प्रतिकूल होते हैं। जिस दिन दुनिया पर धर्म आ जाएगा उस दिन धर्म की शिक्षाओं को देने की आवश्यकता कम हो जाएगी। जिस गांव में मरीज कम हों वहां डाक्टर बसने की कोशिश नहीं करेंगे। जिस गांव में स्वास्थ्य हो उस गांव में चिकित्सक की क्या जरूरत होगी? हम बहुत गौरवान्वित होते हैं यह बात कह कर कि दुनिया के तीर्थंकर, बुद्ध और अवतार हमारे यहां ही पैदा होते हैं। थोड़ा समझ-सोच कर इसमें गौरव अनुभव करना। यह इस बात का सबूत है कि हमारा समाज एक अधार्मिक समाज है, जहां धार्मिक शिक्षक को बार-बार पैदा होने की जरूरत पड़ती है। यह सबूत गौरव का नहीं है। किसी घर में रोज-रोज डाक्टर आता हो तो मोहल्ले में यह

नहीं कह सकता कि हमारे घर में बड़े स्वस्थ लोग हैं, हमारे यहां डाक्टर रोज आता है। धर्मगुरुओं की इतनी लंबी कतारें इस बात की खबर हैं कि यह समाज अधार्मिक समाज है और अगर हम पीछे लौटने की बातें करते हैं तो हम मुल्क को आत्महत्या सिखा रहे हैं, सुसाइड सिखा रहे हैं। मुल्क मर जाएगा पीछे लौटने की बातों में। क्योंकि पीछे तो लौट नहीं सकता, लौटने की कोशिश में और नासमझी के प्रयास में वह आगे नहीं जा सकेगा जहां जा सकता था।

नहीं, राम-राज्य नहीं, चाहिए भविष्य का समाज। लौटा हुआ, बीता हुआ, गया हुआ सामंतवादी समाज नहीं, चाहिए शोषण से मुक्त वर्ग-विहीन आगे का समाज, भविष्य का समाज। लौटना नहीं है पीछे, जाना है आगे। लेकिन, हमारी सारी प्रवृत्ति, हमारा सारा चिंतन, हमारी सारी बुद्धि, हमारे व्यक्तित्व का सारा निर्माण, हमारी सारी कंडीशनिंग, हमारे सारे संस्कार पीछे ले जाने वाले हैं, आगे ले जाने वाले नहीं हैं। इसीलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो पाती है। क्रांति का मतलब होता है आगे जाना। जो आगे जाना ही नहीं चाहते वे क्रांति कैसे करेंगे? इसलिए भारत के पांच हजार वर्षों में क्रांति का कोई भी उल्लेख नहीं है। इतने संत, इतने महात्मा, इतने विचारक! लेकिन विद्रोह? विद्रोह बिल्कुल भी नहीं, विद्रोह जरा भी नहीं, रिबेलियन जैसी चीज ही नहीं। विद्रोह तो वे करते हैं, जो आगे जाना चाहते हैं। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें अतीत को इनकार करना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें पिछली जड़ों को काटना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें पीछे का मोह छोड़ना पड़ता है, तब वे आगे जा पाते हैं। लेकिन हम? अगर हमारा वश चले तो हम अपनी मां के गर्भ में ही रह जाएं, वहां से भी बाहर न निकलें। अगर कोई बच्चा सच्चा भारतीय हो तो उसे इनकार कर देना चाहिए कि मैं मां के गर्भ के बाहर नहीं आता। मां के गर्भ में बड़ी शांति से जी रहा हूं, संतोष से। इतना सुख कहां मिलेगा? मिलता भी नहीं। कितने ही अच्छे मकान बनाओ, कितनी ही अच्छी कोच बनाओ, कितने ही अच्छे गद्दे और तकिए लगाओ; मां के पेट में जो कम्फर्ट, जो सुख, जो सुविधा, जो शांति है वह कहां मिलेगा?

मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि मां के पेट में बच्चा जो सुख जान लेता है, उसी सुख के कारण वह उसी तरह की चीजें बनाता चला जाता है। ये इतने मकान, अच्छे गद्दे, तकिए, कारें, इन सबके भीतर खोज यह चल रही है कि मां के गर्भ में जैसी शांति और सुख मिलता था, वैसा मिल जाए। लेकिन बच्चे को मां के पेट के बाहर आना पड़ता है। बड़ी रेवोल्यूशन हो जाती है, बड़ी क्रांति हो जाती है, सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता होगा, क्योंकि न वहां खाने की फिकर थी, न नौकरी की, न इंप्लाइमेंट की, न कोई और झंझट थी। वहां सारा जीवन चुपचाप चलता था और चौबीस घंटे तंद्रा में, निद्रा में सोने का आनंद था। वहां कोई दुख न था, सब सुख था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष का खयाल गर्भ के अनुभव से ही पैदा हुआ है। वहां सब कुछ था, कुछ कमी न थी। वही मन में कहीं स्मृति में मनुष्य के गहरे में गूंजता रहता है कि कोई एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहां सब सुख होगा, कोई दुख नहीं होगा। कोई एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां सब शांति होगी, कोई अशांति नहीं होगी। कोई एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां कुछ भी नहीं करना पड़ेगा और सब हो जाएगा। वही कहीं बीज में छिपी हुई स्मृति मां के गर्भ की है। लेकिन बच्चा अगर कह दे कि नहीं जाता हूं यात्रा पर जीवन की, तो क्या होगा उसका अर्थ? मां को उसे छोड़ना पड़ता है, मां से अलग खड़ा होना पड़ता है। थोड़े दिन मां से चिपटा रहता है, फिर अपने पैर से चलने लगता है, फिर धीरे-धीरे मां और उसके बीच फासला पैदा होता चला जाता है। फिर कल एक और स्त्री उसके जीवन में आएगी और शायद मां को वह भूल जाएगा। वह अपनी यात्रा पर जा चुका जहां वह मां से पूरी तरह स्वतंत्र हो गया है। जीवन की यात्रा आगे की तरफ है, आगे की तरफ है, रोज आगे की तरफ है। पिछला छोड़ देना पड़ता है, चाहे कितना ही सुविधापूर्ण रहा हो। आगे की असुविधाएं झेलनी

पड़ती हैं ताकि हम और नई सुविधाओं के जीवन को उपलब्ध हो सकें। पिछला कितना ही अच्छा घर रहा हो, उसे छोड़ देना पड़ता है ताकि अनजान और नये घर हम बना सकें।

जीवन की खोज निरंतर अतीत से मुक्त होने की खोज है। और भारत के लिए चिंता करने जैसी बात है। भारत अतीत से चिपटा हुआ है। उसका मन वहीं रुका रह गया है। उसने जोर से पकड़ लिया अतीत को। वह मां के गर्भ को पकड़े है और कहता है कि नहीं, हम यहां से आगे नहीं जाएंगे। इस वजह से हम सिकुड़ गए हैं, इस वजह से हमारी ऊर्जा क्षीण हुई है, इस वजह से हमारी प्रतिभा नष्ट हुई है, इस वजह से हम बौने हो गए हैं, इस वजह से हम सिर उठा कर अज्ञात की यात्रा पर जाने में भयभीत हैं, डर लगता है, अनजान, घबड़ाहट लगती है। अपने घर में रहो। यह प्रवृत्ति ने ही भारत को हिंदुस्तान के भीतर कैद कर दिया। भारत नहीं जा सका विस्तार पर। लेकिन अपने को समझाने की हम बहुत होशियारी की बातें खोजते हैं। हम कहते हैं, हम आक्रमण नहीं करना चाहते हैं, इसलिए हम अपने घर में बैठे रहते हैं। हम अहिंसक हैं इसलिए हम कहीं नहीं जाना चाहते। लेकिन अहिंसक से अहिंसक आदमी को जरा सा उकसा दो और उसके भीतर से खूंखार आदमी खड़ा हो जाता है। अहिंसक आदमी को जरा सा कुछ कह दो और उसके भीतर से क्रोध उबलने लगता है। कैसा अहिंसक आदमी है! कैसी है यह अहिंसा!

चीन का हमला हुआ, पाकिस्तान का हमला हुआ और अहिंसक आदमी को आप देख लेते कि अहिंसा कहां गई। उखड़ आई सारी की सारी। भीतर तो कुछ भी नहीं है। हिंदुस्तान में कवि कविताएं करने लगे कि सिंहों को छेड़ो मत, हम बब्बर शेर हैं। लेकिन घर के बाहर कविता सुना रहे हैं लोगों को, कहीं जा नहीं रहे हैं। सारा हिंदुस्तान कविता कर रहा है जैसे कि कविताओं से कोई युद्ध जीते जा सकते हैं। दुनिया में ऐसा कविताओं का बुखार, जुनून कभी भी नहीं आया होगा जैसा हिंदुस्तान में आया। गांव-गांव में कवि पैदा हो गए, जैसे बरसात में मेढक पैदा हो जाते हैं और वे सब कहने लगे कि हम शेर हैं, सोते हुए शेर को मत छेड़ो। तुम्हारी कविताओं से तुम शेर सिद्ध हो जाओगे? तुम्हारी यह जो बहादुरी तुम कविताओं में बता रहे हो और कवि-सम्मेलन के मंच पर हाथ-पैर फेंक रहे हो, इससे कुछ हो जाएगा? नहीं, हिंसा तो भीतर बहुत है, लेकिन साहस भी नहीं है बाहर जाने का। तो वह हिंसा कहीं कविताओं में निकलती है, कहीं बातचीत में निकलती है, क्षुद्रता में निकलती है। लेकिन, बाहर हम नहीं गए इस देश के। उसका कारण यह था कि हम पकड़ते हैं, रुकते हैं। गांव का आदमी गांव में रुक जाता है, शहर में नहीं जाना चाहता। डरता है, कहां जाए। जो आदमी एक छोटी दुकान करता है उसी पर रुक जाता है। किसी तरह इसी में गुजारा कर लेंगे, कहां जाएं, कहां कौन झंझट ले, कौन अनजान, अपरिचित में उतरे।

सारी दुनिया विकसित हुई है, वह इसलिए कि वह अनजान और अपरिचित में जाने को आतुर हैं। जब भी उन्हें मौका मिल जाए अनजान में जाने का, वे जाने-माने को छोड़ कर अनजान में चले जाएंगे। और हम हैं, मजबूरी में ही जाना पड़े तो बात दूसरी, जब तक हमारी सामर्थ्य चलेगी हम जाने-माने को पकड़ कर रुके रहेंगे। यह स्थिति शुभ नहीं है, यह मंगलदायी नहीं है। इसी के कारण हम पीछे-पीछे लौट कर पकड़ते हैं। अगर मैं कोई बात कहूं तो आप कहेंगे, यह आदमी अनजाना, पता नहीं यह आदमी कौन है, क्या है? इसकी बात मानना ठीक है क्या? अपने कृष्ण की बात ठीक है, तीन हजार साल से सुनते हैं, वही ठीक होनी चाहिए। और इसलिए हिंदुस्तान में अगर किसी को नई बात भी कहनी हो तो उसको एक झूठ का आडंबर पहनाना पड़ता है। उसे कहना पड़ता है, जो मैं कह रहा हूं यही गीता में भी कहा हुआ है, तब कहीं वह बात स्वीकृत होगी, नहीं तो नहीं। अजीब बेईमानियों करवाना चाहते हैं। जब वह पहले यह सिद्ध करे कि यह गीता में कहा हुआ है तब कोई

सुनने को राजी होगा। कि तब ठीक है, तब बोलो, तब पुराना परिचित ही बोल रहे हो, फिर कोई डर नहीं है तुमसे।

इसीलिए हिंदुस्तान में हजारों गीता की टीकाएं हो गईं। गीता की कोई एक टीका की भी जरूरत नहीं है। गीता इतनी साफ किताब है, इतनी स्पष्ट, कि गीता की किसी टीका की जरूरत नहीं है। टीकाकार और धुआं पैदा कर देगा। गीता को समझाने के लिए टीकाकार की जरूरत है? कृष्ण ने इतनी स्पष्ट बात कही है, इतनी सीधी, कि अब यह टीकाकारों की क्या जरूरत है? लेकिन एक हजार टीकाएं हैं और एक हजार मतलब वाली। इससे क्या सिद्ध होता है? इससे दो ही बातें सिद्ध होती हैं--या तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा हो कि एक ही बात में हजार मतलब रहे हों, कोई मतलब ही नहीं रहा, मतलब यह रहा। हजार मतलब जिस बात के हों उसमें कोई मतलब ही न रहा। और या फिर, ये हजार टीकाकार क्या कह रहे हैं? ये जो कहना चाहते हैं उसको जबरदस्ती बेचारे कृष्ण के ऊपर थोप रहे हैं, इसलिए हजार टीकाएं पैदा हो गईं। नहीं तो हजार टीकाओं की क्या जरूरत है? जो इन्हें कहना है, सीधा नहीं कह सकते। क्योंकि यह मुल्क सुनेगा ही नहीं, ये नये को सुनने को राजी नहीं। उसको गीता में प्रवेश करके और उसको गीता की शकल में लाकर खड़ा करना पड़ेगा। जब वह बिल्कुल गीता की बात जंचने लगेगी तब कोई मानेगा। और इसमें गीता के साथ जो हत्या हो रही, जो अत्याचार हो रहा, वह चलेगा। गीता की जो शुद्धि है वह नष्ट होगी।

अभी मेरे खिलाफ जो लोगों ने इधर लिखा, उन्होंने क्या कहा? उन्होंने कहा कि गांधी जी विनम्र थे। वे कभी यह नहीं कहते थे कि यह मैं कह रहा हूं। वे कहते थे, यह गीता में लिखा है, यह महावीर ने कहा है, यह टालस्टाय कहता है, यह रस्किन कहता है, यह श्रीमद्भराजचंद्र कहते हैं। मैं तो वही कह रहा हूं जो सदा कहा हुआ है। यह विनम्रता नहीं है, यह इस मुल्क के बुनियादों रोगों में से एक रोग है। जो मैं कह रहा हूं, वह मुझे कहना चाहिए कि मैं कह रहा हूं, चाहे वह गलत हो, चाहे वह सही हो। मैं जो कह रहा हूं उसे कृष्ण के ऊपर थोपना अन्याय है। यह बिल्कुल क्राइम है कि मैं कहूं कि वह कृष्ण कर रहे हैं। मुझे क्या पता कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? कृष्ण के अतिरिक्त और कोई दावा नहीं कर सकता है इस बात के कहने का कि कृष्ण क्या कह रहे हैं! कौन दावा करेगा? कृष्ण की चेतना जिसके पास न हो, वह कैसे जानेगा कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? क्यों फिजूल कृष्ण के ऊपर सवारी करते हो? क्यों किसी के कंधे पर सवार होते हो? अपने दो छोटे पैरों से ही खड़े हो जाओ। यह अहंकार हो गया! अपने पैर पर खड़ा होना अहंकार है और कृष्ण के कंधों पर खड़े हो जाना अहंकार नहीं है। कृष्ण के कंधों पर खड़े होकर आसानी से आप ज्यादा ऊंचे दिखाई पड़ोगे, अपने पैरों पर खड़े होकर उतने ही ऊंचे दिखाई पड़ोगे जितने आप हो।

अहंकार किसमें ज्यादा सिद्ध होगा? परंपरा का सहारा अहंकार की पुष्टि के लिए लिया जा सकता है। और या फिर, लोग इतने नासमझ हैं कि वे सुनने को ही राजी नहीं नये को। इसलिए पुरानी शराब की बोतल में नई शराब भर कर पिलानी पड़ेगी। नहीं, मैं इनकार करता हूं इस बात को, क्योंकि यह पूरे मुल्क की प्रतिभा को नुकसान पहुंचाने की तरकीबें हैं। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हमें ईमानदारी से, स्पष्टता से यह कहना चाहिए कि यह मैं सोचता हूं ऐसा, वह गलत हो सकता है, वह सही हो सकता है। यह मूल्यवान नहीं है, लेकिन मूल्यवान यह है कि हम अपने तईं सोचना शुरू करें। हम कब तक कृष्ण और महावीर और बुद्ध को सताते रहेंगे। अगर वे कहीं मोक्ष में होंगे तो बहुत परेशान हो गए होंगे। रोज उनकी टांग खींचो और उनको जमीन पर लाओ। उनकी हुज्जत हो गई होगी, घबड़ा गए होंगे कि कहां के दुष्टों के मुल्क में पैदा हो गए कि सुबह-सांझ परेशान किए रहते हैं। नहीं परेशान हो गए होंगे? और कितने हैरान होते होंगे कि क्या-क्या शकल बनाई जा रही है

उनकी बातों की। जो उन्होंने कभी भी नहीं कहा होगा, वह हजार दो हजार साल में उनके नाम पर थोप दिया गया। जो उन्होंने सोचा भी नहीं होगा वह उनकी वाणी का हिस्सा बन गया। क्या-क्या हम थोप सकते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। हमारे मन में जो होगा, हमें उनके ऊपर थोपना पड़ेगा।

जैनियों के चौबीस तीर्थंकर हैं। उनमें एक तीर्थंकर मल्लीनाथ हैं। दिगंबर कहते हैं कि वह पुरुष हैं मल्लिनाथ। श्वेतांबर कहते हैं, वह मल्लीबाई है, स्त्री है। बड़ा मजा है! यह भी संदिग्ध हो गया कि कोई आदमी स्त्री था कि पुरुष? अजीब इतिहास लिख रहे हैं आप! कि यह भी पक्का नहीं है कि एक तीर्थंकर स्त्री था कि पुरुष? नहीं, यह तो पक्का रहा होगा, लेकिन दिगंबरों की मान्यता यह है कि स्त्री मोक्ष जा ही नहीं सकती, तो फिर तीर्थंकर स्त्री कैसे हो सकता है? स्त्री रही होगी तो उन्होंने मल्लीबाई को मल्लीनाथ कर डाला, क्योंकि वह तो अपनी धारणा के हिसाब से उनको खड़ा होना पड़ेगा, तीर्थंकर को। महावीर की शादी हुई कि नहीं, महावीर को लड़की पैदा हुई कि नहीं, इसमें भी झगड़े हैं। श्वेतांबर कहते हैं, शादी हुई, लड़की हुई, दामाद था। दिगंबर कहते हैं कि यह कभी हुआ ही नहीं। तीर्थंकर जैसा आदमी और शादी करेगा, बाल-ब्रह्मचारी। तो बाल-ब्रह्मचारी की जिसकी धारणा है, तो थोप देगा। मानने को राजी नहीं हैं कि उनकी स्त्री थी या उनकी लड़की हुई। है ही नहीं, यह सवाल ही नहीं, यह गलत बात है। अब एक ही महावीर को मानने वाले दो वर्ग अजीब बातें कर रहे हैं। यह क्या है?

हम अपनी ही धारणा थोपते हैं शास्त्रों पर, सिद्धांतों पर, महापुरुषों पर। हम पूजा कर रहे हैं यह या अन्याय कर रहे हैं? यह क्रिमिनल एक्ट है, यह बिल्कुल अपराधपूर्ण है और मुल्क को सख्ती से मुमानियत होनी चाहिए कि कोई आदमी कृष्ण की तरफ से बोलने का हकदार नहीं है, न महावीर की तरफ से। अपनी बात कहे। अगर महावीर के लिए भी कहना है तो यह कहे कि यह मैं कहता हूं महावीर के संबंध में। महावीर कहते होंगे कि नहीं कहते, मैं मानने को, मुझे कुछ भी पता नहीं है। हम वही समझ सकते हैं, जो हमारी स्थिति है।

एक दिन, एक रात बुद्ध प्रवचन करते थे। प्रवचन के बाद रोज का उनका नियम था कि वह भिक्षुओं को, श्रोताओं को कहते कि अब जाओ रात्रि का अंतिम कार्य करो। वे भिक्षु दस हजार भिक्षु उनके साथ होते थे, रात्रि का अंतिम कार्य ध्यान था। सोने के पहले ध्यान करो, फिर सो जाओ। तो रोज-रोज यह कहने की जरूरत न थी कि ध्यान करो। तो वे इतना कह देते थे कि अब जाओ, रात्रि का अंतिम कार्य करो।

उस दिन एक चोर भी आया था सभा में, एक वेश्या भी आई थी। चोर ने जैसे ही सुना कि जाओ अब रात्रि का अंतिम कार्य करो। अरे, उसने कहा कि बहुत रात हो गई, चांद कितना चढ़ गया, जाऊं, अपना धंधा करूं। ऐसे रात भर गंवा दूंगा धर्म में, तो मुश्किल हो जाएगी। धर्म में थोड़ा-बहुत वक्त गंवाया जा सकता है, फिर धंधा करने जाना ही पड़ता है, चाहे चोर हो, चाहे साहूकार हो। वेश्या ने सुना कि रात्रि हो गई है, अपना काम। वेश्या बोली, अरे, ग्राहक आ चुके होंगे, मैं जाऊं। बुद्ध ने एक ही बात कही थी। भिक्षु ध्यान करने चले गए, चोर चोरी करने चला गया, वेश्या अपनी दुकान पर चली गई। बुद्ध ने जो कहा था, वह एक था, लेकिन व्याख्याएं तीन हो गईं।

जो कहा जाता है वह एक है, जितने लोग सुनते हैं व्याख्याएं उतनी हो जाती हैं। लेकिन कृपा करके अपनी व्याख्या को किसी के ऊपर मत थोपें, इतना ही कहें, ऐसा मैं समझता हूं। लेकिन इस मुल्क में थोपा जा रहा है, निरंतर थोपा जा रहा है। इस मुल्क में कोई गीता की टीका न लिखे तो वह ज्ञानी ही नहीं है। कोई गीता की टीका लिखे तभी ज्ञानी होता है। और अगर कभी भी कहीं कोई अदालत होगी, मोक्ष में, तो ये गीता के टीकाकार एक-एक बंधे हुए नजर आएंगे, क्योंकि कृष्ण इन पर मुकदमा चलाएंगे, कि सज्जनो, तुम मेरे पीछे क्यों पड़े थे?

मुझे जो कहना था वह मैंने कह दिया था, तुम कृपा करते। मैंने कह दी थी बात पूरी। मेरी बात साफ थी। तुम कैसे अर्थ समझाने गए थे बीच में कि इसका यह अर्थ है।

यह जो प्राचीनवादिता, यह जो प्राचीन का मोह, यह जो अतीत को जकड़ कर पकड़ लेना, यह हम कब तोड़ेंगे? क्या हमको दिखाई नहीं पड़ता कि सारा जगत आगे बढ़ता चला जा रहा है, भविष्योन्मुख है? हम अतीत के मोह में मर जाएंगे, मर ही गए हैं, करीब-करीब मर गए हैं। इकबाल ने गाया हैः "कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।" अब इकबाल तो जा चुके, अन्यथा उनसे मिल कर कहता कि महाशय, कुछ भी बात नहीं है। बात कुल इतनी है कि हस्ती बहुत पहले मिट चुकी, तो अब मिटे भी तो मिटे क्या? खाक! मिटने के लिए हस्ती चाहिए न पहले? आदमी जिंदा हो तो मर सकता है और मर ही गया हो तो अब क्या मरेगा? मरने के लिए भी जिंदगी चाहिए। मरा हुआ आदमी फिर नहीं मरता। एक दफा मर गया, फिर तो मरता ही नहीं। यह कौम इसलिए नहीं कि हमारी कोई बड़ी खूबी है जिससे हमारी हस्ती नहीं मिटती। हमारी खूबी यह है कि हस्ती हम खो चुके अतीत के साथ। हमारी कोई मौजूदा हस्ती नहीं है, हमारी कोई वर्तमान प्रतिभा नहीं है, हमारी सारी प्रतिभा अतीत में हो चुकी। आज क्या है हमारे पास? अभी क्या है? वर्तमान संपत्ति क्या है हमारे व्यक्तित्व की? वह हमारी खो चुकी, इसलिए मिटने को अब कुछ बचा नहीं। लेकिन यह दुखद है और गांधी का चिंतन फिर पुरातन की तरफ ले जाने वाला है। देश को ले जाना है आगे, रोज आगे। रोज भूलते जाना है उसको, जो बीत गया है।

एक गांव में एक पुराना चर्च था। वह कहानी कह कर और थोड़ी सी बातें कह कर मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक गांव में एक चर्च था। एक बहुत पुराना गांव और बहुत पुराना चर्च। वह चर्च इतना पुराना था कि हवाएं चलती थीं, उसकी दीवालें हिलती थीं कि कब गिरीं, कब गिरीं। बादल गरजते थे तो लगता था गया चर्च, बिजली चमकती थी तो लगती गिरेगी चर्च पर। ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जाएगा? कोई प्रार्थना करने नहीं जाता था। प्रार्थना करने वाले जीवन को दांव पर लगा कर तो प्रार्थना करने जाते नहीं। सुविधा होती है तो जाते हैं। जिनको सुविधा होती है वे ज्यादा जाते हैं, जिनको कम सुविधा होती है वे कम जाते हैं। लेकिन वहां तो जान का खतरा था, वहां कौन प्रार्थना करने जाता। चर्च खाली पड़ा रहता। चर्च की कमेटी, संरक्षकों की कमेटी मिली। उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल है। वह कमेटी भी बाहर मिली, वह भी कोई भीतर नहीं मिली, क्योंकि नेता हमेशा अनुयायियों से ज्यादा होशियार होते हैं। जहां अनुयायी नहीं जाता वहां नेता कभी जाता ही नहीं। आप इस खयाल में मत रहना कि नेता अनुयायियों के आगे जाते हैं। यह सिर्फ भ्रम है अखबारों में।

नेता हमेशा अनुयायी के पीछे जाते हैं, फॉलो करते हैं फॉलोअर को। जब देख लेते हैं कि अनुयायी यहां जा रहा है तब वे उचक कर उसके साथ हो जाते हैं। वे आपको आगे दिखाई पड़ते हैं सिर्फ, वे होते हमेशा पीछे हैं। पहले पता लगा लेते हैं कि अनुयायी क्या मानता है, क्या विश्वास करता है, वही कहते हैं जो आप मानते हैं। जो आप मानोगे वही बात करते हैं, उसी तरह जीते हैं। वे भी बेचारे नेता थे, वे काहे के लिए भीतर जाते, जब कोई अनुयायी नहीं जाता था। वे भी बाहर मिले, दूर कंपाउंड से कि कहीं कोई दीवाल गिर न जाए। उन्होंने वहां तय किया कि लोग बड़े खराब हो गए हैं, कोई मंदिर में आता ही नहीं, कोई आता ही नहीं मंदिर में, लोग बिल्कुल नास्तिक हो गए हैं, लोग बिल्कुल अधार्मिक हो गए हैं और सबने सिर हिलाया कि बात सच है। हालांकि उनमें से भी कोई कभी नहीं आता था।

लेकिन एक जवान आदमी पहुंच गया था। उसने कहा कि महाशयो, सिर्फ लोगों को दोष मत दो, चर्च इतना पुराना हो गया है कि उसमें जाना खतरनाक है। देखें, हम भी अपनी कमेटी की बैठक बाहर कर रहे हैं, चलें हम भीतर। वे लोग बोले कि यह तो बात सच है कि चर्च बहुत पुराना हो गया है। क्या करना चाहिए? तो कमेटी ने एक प्रस्ताव पास किया कि अब बहुत हो गई प्रतीक्षा करते हुए पुराने चर्च में कोई नहीं जाएगा। तो हम सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास करते हैं कि पुराना चर्च गिरा दिया जाना चाहिए। उन्होंने दूसरा प्रस्ताव पास किया और पुराने को गिरा कर हमें एक नया चर्च बनाना है, यह भी सर्वसम्मति से। और तीसरा प्रस्ताव पास किया विस्तार से और उसमें लिखा कि हम नया चर्च वैसा ही बनाएंगे जैसा पुराना था, ठीक पुराने जैसा। वैसा ही मकान, उसी नींव पर, नींव पुरानी रहेगी, चर्च नया रहेगा, वैसी ही दीवालें, उन दीवालों में पुरानी ईंटें ही लगाई जाएंगी, नहीं ईंट नहीं, पुराने ही द्वार-दरवाजे निकाल कर लगाए जाएंगे, नये दरवाजे नहीं। ठीक पुराने चर्च जैसा ही, पुरानी जगह पर ही, पुरानी दीवालों के अनुकूल दीवालें, पुरानी नींव पर नई दीवालें, ऐसा हम चर्च बनाएंगे। इसे भी सर्वसम्मति से स्वीकार किया और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया कि जब तक नया चर्च न बन जाए, तब तक पुराना गिराएंगे नहीं।

वह चर्च अभी तक खड़ा हुआ है। वह कब गिरेगा? वह कभी नहीं गिरेगा। जो पुराने को गिराने की सामर्थ्य नहीं रखते वे नये को निर्माण करने की सामर्थ्य खो देते हैं। जो पुराने को विध्वंस करने की हिम्मत रखते हैं केवल वे ही नये का सृजन कर पाते हैं। जो पुराने की मौत देख सकते हैं वे ही केवल नये को जन्म दे सकते हैं। और हम पुराने की मृत्यु देखने में असमर्थ हो गए हैं। हम पुराने को नष्ट करने में असमर्थ हो गए हैं। हम पुराने को गिराने में असमर्थ हो गए हैं, इसलिए नये का कोई जन्म नहीं हो पा रहा है।

लेकिन ध्यान रहे, जीवन नये के साथ है, पुराने के साथ मौत है। अगर मर ही जाना हो बिल्कुल, तो पुराने को कस कर पकड़ लेना चाहिए। घर में मां मर जाती है, पिता मर जाते हैं, बहुत प्यारे हैं, लेकिन फिर लाश घर में रख कर हम नहीं बैठ जाते हैं। बहुत प्यारे हैं, कितना दुख, कितनी पीड़ा आदमी झेलता है--मां चल बसी उसकी, लेकिन फिर भी मरते ही लाश को घर में नहीं रखते। फिर यह नहीं कहते कि मां बहुत प्यारी थी, हम लाश को कैसे घर के बाहर ले जाएं, हम कैसे मरघट ले जाएं, हम तो इसी से चिपटे हुए बैठे रहेंगे। नहीं, फिर लाश को ले जाना पड़ता है, दुख में, पीड़ा में। मरघट पर आग लगानी पड़ती है, जलाना पड़ता है उस मां को जिसे इतना प्रेम किया था, जिससे जन्म पाया था, जो सब कुछ थी। वह भी मर गई तो उसे भी मरघट पर ले जाना पड़ता है, मजबूरी में जलाना पड़ता है। रोते हैं, लेकिन जला कर वापस लौट आते हैं।

अगर किसी घर के लोग पागल हो जाएं और जितने बूढ़े लोग मरते जाएं उनकी लाशें इकट्ठी कर लें, तो उस घर की आप समझते हैं क्या हालत हो जाएगी? उस घर में नये बच्चे पैदा होने के पहले इनकार कर देंगे कि क्षमा करिए, इन लाशों के इस ढेर में हम जन्म नहीं लेना चाहते। और नये बच्चे पैदा भी हो जाएंगे तो पैदा होते से ही पागल हो जाएंगे, क्योंकि जिस घर में इतनी लाशें हों वहां नये बच्चे पागल होने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकते हैं। लेकिन नहीं, लाशें हम जला आते हैं। लेकिन इतिहास की लाशें हम संजोते चले जाते हैं, मस्तिष्क पर रखते चले जाते हैं, रखते चले जाते हैं। इतिहास भी कभी जला देने जैसा हो जाता है, इतिहास भी कभी भूल जाने जैसा हो जाता है, अतीत भी कभी मरघट पर पहुंचाने जैसा हो जाता है, ताकि शक्ति और ऊर्जा नये के जन्म की दिशा में अग्रसर हो सके।

नहीं, धर्म नहीं कहता कि पीछे जाओ। धर्म तो कहता हैः आगे और आगे और अंत में, अननोन, अज्ञात परमात्मा है, वहां चलना है। निकलती है गंगा हिमालय से, गंगोत्री से भागती है, गंगोत्री पर रुक नहीं जाती।

अनजान पहाड़ियों में, घाटियों में, वादियों में भागती है, दौड़ती है, पत्थरों से टकराती है। न मालूम कितने रास्ते हैं। रास्ते में न कोई पुलिसवाला मिलता है जिससे पूछ ले कि सागर कहां है, न कोई पुरोहित मिलता है कि पूछ ले कि सागर कहां हैं। कोई नहीं मिलता, कोई गाइड नहीं, कोई मार्गदर्शक नहीं, भागती चली जाती है। अपने भागने पर भरोसा है, अपने प्राणों पर भरोसा है। भागती है, अनजान, भागती रहती है और एक दिन सागर के पास पहुंच जाती है। गंगोत्री में रुक जाती तो सागर नहीं हो सकती थी। गंगोत्री में नहीं रुकी, भागी, तो गंगोत्री में क्षीण सी धारा थी, सागर के पास पहुंच कर विराट धारा हो गई और सागर में गिरते ही तो सागर हो गई। जाना है अनंत तक, जाना है आगे और आगे और भविष्य... वहां जहां अनंत का सागर है। जो पीछे रुक गए हैं, उन्होंने अपने हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।

मैं भविष्य को, उस आने वाले सूरज को जो उगेगा, उस भवन को जो हम बनाएंगे, उसके लिए कामना जगाना चाहता हूं, उसके लिए आकांक्षा और अभीप्सा जगाना चाहता हूं। लेकिन हमारे सारे शिक्षक पुराने से बंधे हैं, हमारे सारे शिक्षक प्रतिगामी हैं, हमारे सारे शिक्षक रिएक्शनरी हैं, हमारे सारे शिक्षक कहते हैं, वह जो था, वही ठीक था। एक बार इस देश को निर्णय करना होगा कि जो था अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हो गए हैं? जो था अगर वह ठीक था तो हम उसी से तो पैदा हुए हैं, हम उसी के तो बाई-प्रॉडक्ट हैं। जो था अगर वह ठीक था तो हम ऐसे क्यों हैं? बेटा सबूत है अपने बाप का। अगर बाप ठीक था तो यह बेटा गड़बड़ कैसे? फल सबूत है, अपने बीज का। अगर बीज मीठा था, तो यह फल कड़वा कैसे है?

फल यह नहीं कह सकता कि बीज तो ठीक था, लेकिन हम गड़बड़ हो गए हैं। नहीं, बीज से ही फल पैदा होते हैं। बीज तो खो गए, उनका तो अब कुछ पता नहीं है। अब तो फल सबूत देंगे कि बीज कैसे थे। हम सबूत हैं, अपने पूरे अतीत के। हमारे अतिरिक्त और कोई सबूत नहीं है। हम कैसे हैं, वह सबूत है हमारे पूरे इतिहास का। क्योंकि उस पूरे इतिहास की यात्रा से हम जन्मे हैं, उस यात्रा से हम पैदा हुए हैं। और अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हैं? अगर हम गलत हैं तो हमें जानना पड़ेगा, हालांकि इस बात को जानने में बड़ी पीड़ा होती है, बड़ा दुख होता है कि हम अगर गलत हैं तो हमारे अतीत की प्रक्रिया गलत थी और हमें नई प्रक्रिया और नई जीवन-दिशा को चुनना जरूरी हो गया है।

मेरी इन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

छठवां प्रवचन

## तोड़ने का एक और उपक्रम

मेरे प्रिय आत्मन्!

मित्रों ने बहुत से प्रश्न से पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा हैः महापुरुषों की आलोचना की बजाय उचित होगा कि सृजनात्मक रूप से मैं क्या देखना चाहता हूं देश को, समाज को, उस संबंध में कहूं।

लेकिन आलोचना से इतने भयभीत होने की क्या बात है। क्या यह वैसा ही नहीं है हम कहें कि पुराने मकान को तोड़ने की बजाय नये मकान को बनाना ही उचित है? पुराने को तोड़े बिना नये को बनाया कब किसने है? और कैसे बना सकता है? विध्वंस भी रचना की प्रक्रिया का हिस्सा है। तोड़ना भी बनाने के लिए जरूरी हिस्सा है। अतीत की आलोचना भविष्य में गति करने का पहला चरण है और जो लोग अतीत की आलोचना से भयभीत होते हैं, वे वे ही लोग हैं जो भविष्य में जाने में सामर्थ्य भी नहीं दिखा सकते हैं।

लेकिन इतना भय क्या है? सृजनात्मक आलोचना, एक क्रिएटिव क्रिटिसिज्म से इतना भय क्या है? क्या हमारे महापुरुष इतने छोटे हैं कि उनकी आलोचना से हमें भयभीत होने की जरूरत पड़े। और अगर वे इतने छोटे हैं तब तो उनकी आलोचना जरूर ही होनी चाहिए, क्योंकि उनसे हमारा छुटकारा हो जाएगा। और अगर वे इतने छोटे नहीं हैं तो आलोचना से उनका कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। दोनों हालत में आलोचना कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती है। लेकिन यह हमारा पूरा देश ही आलोचना से भयभीत हो गया है। यह हम आज से भयभीत हैं ऐसा नहीं, यह हम हमेशा से भयभीत हैं। और जो समाज अपने अतीत की आलोचना नहीं करता, वह भविष्य के लिए निर्णय भी नहीं ले पाता है कि कहां कदम रखने हैं, कैसे कदम रखने हैं। उसका सारा अतीत बिना आलोचना के, अनक्रिटिसाइज्ड इकट्ठा हो जाता है। उस सारे अतीत में से चुनाव करना मुश्किल हो जाता है कि क्या चुनना है। उस अतीत में से क्या छोड़ना है, यह जानना मुश्किल हो जाता है। उस अतीत का बोझ इतना हो जाता है कि उस अतीत के नीचे हम दब कर मर सकते हैं, उस अतीत के कंधे पर खड़े होकर भविष्य की ओर उठ नहीं सकते हैं।

भारत का अतीत हमारा चुना हुआ अतीत नहीं है, एक ढेर की भांति हमारे सिर पर बैठा हुआ है। उसमें सब तरह की बातें बैठी हुई हैं। उसमें विरोधी, कंट्राडिक्शंस बैठे हुए हैं और उन सबको हम झेल रहे हैं और उन सबके साथ हम जीने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए भारत में इतना कंफ्यूजन है, इतना विभ्रम है। हम कोई निर्णय नहीं ले सके। हमारे अतीत में कृष्ण हैं, जो युद्ध के मैदान पर लड़ते हैं, वे भी हमें पूज्य हैं। हमारे अतीत में महावीर हैं, जो कहते हैं, एक कीड़े को भी मारना पाप है, युद्ध में लड़ने की तो बात ही अलग, वे भी हमारे पूज्य हैं। न हमने महावीर पर कभी विचार किया, न कभी कृष्ण पर विचार किया। दोनों हमारे मन में बैठे हुए हैं। और उन दोनों की वजह से हमारे मन में कंफ्यूजन पैदा होना अनिवार्य है।

एक तरफ कृष्ण हैं, जो कहते हैं, न कोई मरता है और न कोई मारा जाता है, इसलिए युद्ध में कोई भय नहीं है। दूसरी तरफ महावीर हैं, जो कहते हैं कि जरा सा भी चींटी का मर जाना नरक जाने का द्वार है, इसलिए युद्ध और हिंसा से बचना।

कुछ हमें तय करना पड़ेगा, कौन है ठीक? कुछ हमें निर्णय लेने होंगे, क्या है सही?

लेकिन हम कहते हैं कि अतीत की आलोचना मत करो, अतीत का विचार मत करो। तब अतीत के हजारों-हजारों वर्षों में, हजारों-हजारों विचारों का जो संग्रह हमारे ऊपर इकट्ठा हो गया है वह सारा संग्रह हमारे प्राणों पर बैठा हुआ है। उस सारे संग्रह के नीचे हम दबे जा रहे हैं और जी रहे हैं और हम कोई भी निर्णय नहीं ले पाते कि इस देश का व्यक्तित्व एक स्पष्ट निखार को उपलब्ध हो। शायद आपको पता न हो, इस देश में कितनी धाराएं रही हैं विचार की। वे सारी की सारी धाराएं भारतीय मस्तिष्क में इकट्ठी होकर बैठ गईं। वे बहुत विरोधी धाराएं हैं और उन विरोधी धाराओं के कारण हमारा व्यक्तित्व खंडित हो गया है, स्प्लिट हो गया है।

भारत में किसी आदमी के पास इंटिग्रेटेड पर्सनैलिटी जिसको हम कहें, एक समग्र समूचा व्यक्तित्व कहें, इकट्ठा व्यक्तित्व कहें, एक स्वर वाला व्यक्तित्व कहें, वह नहीं है। उसके भीतर न मालूम कितने स्वर हैं। उन सभी स्वरों के बीच उसे जीना पड़ता है। इससे एक मल्टी-पर्सनैलिटी, एक बहु-व्यक्तित्व भीतर पैदा हो गया है। जिसमें से कुछ निर्णय नहीं हो पाता कि हमारा स्वरूप क्या है, हमारा व्यक्तित्व क्या है, हम कहां खड़े हैं, वह हमें कुछ भी पता नहीं चल पाता। और इस सबके पीछे एक ही कारण है कि हमने अपने अतीत की आलोचना करने से भय दिखलाया है।

और अगर हम आगे भी यह जारी रखते हैं तो भारत की सारी प्रतिभा कुंठित हो गई है, और कुंठित हो जाएगी। बहुत स्पष्ट विचार होना चाहिए, बहुत स्पष्ट सूझ होनी चाहिए। न कोई गांधी का मूल्य है, न महावीर का, न कृष्ण का, मूल्य है इस देश के भविष्य का। अगर बड़े से बड़े महापुरुष को भी उस भविष्य के लिए छोड़ना पड़े, तो छोड़ने की तैयारी होनी चाहिए। सवाल यह नहीं है कि हम छोड़ दें, सवाल यह है कि इस देश का भविष्य महत्वपूर्ण है या इस देश के अतीत के महापुरुष महत्वपूर्ण हैं? बड़े से बड़े महापुरुष से पैदा होने वाला छोटे से छोटा बच्चा भी ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह भविष्य है, वह कल आएगा, वह कल जीएगा, कल वह बनेगा। उसको ध्यान में रखना है। लेकिन हमारा मुल्क, हमारी पूरी चिंता उनको ध्यान में रखती है जो जी चुके और जा चुके। यह समादर ठीक है, लेकिन यह समादर महंगा पड़ रहा है। आने वाले बच्चे का सम्मान चाहिए। उस बच्चे के सम्मान, उसके भविष्य, उसके जीवन के लिए विचार चाहिए।

हमें बहुत ही स्पष्ट, बहुत आदरपूर्वक अतीत की आलोचना करनी पड़ेगी। आलोचना का अर्थ निंदा नहीं है। यह भी एक अजीब पागलपन है। इस मुल्क में आलोचना करने का मतलब निंदा समझा जाता है। यह हमारी क्षुद्र बुद्धि का सबूत है। इसका मतलब यह है कि हम निंदा करने को ही आलोचना समझते हैं या आलोचना करने को निंदा समझते हैं।

गांधी की आलोचना, गांधी की निंदा नहीं है। मेरी बात की आप आलोचना करें, तो वह मेरी निंदा नहीं है, बल्कि मेरी बात की आलोचना करने से आप खबर देते हैं कि आपने मेरी बात को मूल्य दिया। इस योग्य समझा कि आप उस पर सोच रहे हैं। नहीं, आलोचना निंदा नहीं है, आलोचना सम्मान है। हम आलोचना हर किसी की नहीं करने बैठे जाते हैं, कोई ऐरे-गैरे की आलोचना करने सारा मुल्क नहीं बैठ जाएगा। जिसकी हम आलोचना करने बैठते हैं, हम यह मान कर चलते हैं कि उस व्यक्ति की आलोचना या उस व्यक्ति का विचार देश के हित या अहित में महत्वपूर्ण हो सकता है।

मार्क्स की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु पर थोड़े से मित्र, दस-बीस मित्र ही उसकी कब्र पर इकट्ठे थे। एंजिल्स ने उसकी कब्र पर बोलते हुए एक बात कही। एंजिल्स ने कहा कि मार्क्स एक महापुरुष था। मित्रों को हैरानी हुई, क्योंकि अगर महापुरुष था तो कुल बीस-पच्चीस लोग कब्र पर छोड़ने आए थे। मित्रों ने पूछा कि महापुरुष? तो एंजिल्स ने कहा कि मैं इसलिए कहता हूं महापुरुष मार्क्स को कि जो भी उसकी बात सुनेगा, उसे या तो मार्क्स

के पक्ष में होना पड़ेगा या विपक्ष में होना पड़ेगा। दो के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। जो भी मार्क्स की बात सुनेगा, उसे या तो मार्क्स के पक्ष में होना पड़ेगा या विपक्ष में होना पड़ेगा। मार्क्स की उपेक्षा कोई भी नहीं कर सकता है। इसलिए मैं कहता हूं, यह महापुरुष है।

यह बड़ी अदभुत बात कही एंजिल्स ने। मार्क्स के महापुरुष होने का कारण यह कि उसके विचार की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आप इनडिफरेंट नहीं हो सकते उसके विचार के प्रति। आपको कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में। जिस मनुष्य के विचार के संबंध में हमें कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़े उसको ही महापुरुष कहा जा सकता है, और किसी को नहीं। और जब आप अपने महापुरुष के विपक्ष में होने की सामर्थ्य तोड़ देना चाहते हैं। गांधी के विपक्ष में कोई न हो सके जब आप ऐसी कोशिश करते हैं, तो आपको पता नहीं, आप अपने हाथ से गांधी की जमीन खींच रहे हैं। क्योंकि जिस आदमी के विपक्ष में कोई नहीं हो सकता, ध्यान रहे, उसके पक्ष में भी कोई कभी नहीं होगा।

जिसके विपक्ष में कोई कभी नहीं हो सकता उसके पक्ष में भी कोई कभी नहीं होगा। जिसके विपक्ष में होने की जरूरत नहीं पड़ती उसके पक्ष में होने की भी कोई जरूरत नहीं पड़ती है। और जिसके विपक्ष में हमें होने की आवश्यकता नहीं है, हम तब ऊपरी तौर से कहते रहेंगे कि हम उसके पक्ष में हैं, लेकिन हमारे प्राण कभी उसके पक्ष में नहीं हो सकते हैं। हम पक्ष में उसी के हो सकते हैं, जिसके विपक्ष में होना भी जरूरी मालूम पड़ सकता हो।

एक जमाना था, ईश्वर के विरोध में वे लोग समझे जाते थे जो नास्तिक थे, जो कहते थे ईश्वर नहीं है। पिछली सदी में एक विचारक ने लिखा कि नास्तिक फिर भी ईश्वर को आदर देते थे, क्योंकि वे ईश्वर को विचारणीय मानते थे। वे ईश्वर पर किताबें लिखते थे, तर्क करते थे और सिद्ध करना चाहते थे कि ईश्वर नहीं है। जमाना नास्तिकता से भी आगे जा चुका है। अब किसी से कहो कि ईश्वर, तो वह कहता है, छोड़ो, यह कोई बात करने योग्य नहीं है। नास्तिक तो ईश्वर को पूरा सम्मान देता है, हो सकता है आस्तिक से ज्यादा सम्मान देता हो। और सच तो यह है कि आस्तिक से ज्यादा सम्मान ही नास्तिक देता है, क्योंकि आस्तिक शायद ही कभी ईश्वर के संबंध में इतना विचार करता हो जितना नास्तिक करता है। और यह भी हो सकता है कि आस्तिक वे ही लोग बने बैठे हुए हैं जो ईश्वर के संबंध में विचार वगैरह नहीं करना चाहते, उस झंझट में नहीं पड़ना चाहते, कहते हैं, ठीक है, है, होगा, जरूर होगा, होना ही चाहिए।

लेकिन नास्तिक प्राणों की बाजी लगाता है ईश्वर के लिए। उसके लिए ईश्वर एक लिविंग प्रॉब्लम है। उसे तय ही करना है कि ईश्वर है या नहीं, क्योंकि उसी तय करने पर उसका जीवन निर्भर करेगा कि वह किस तरह जीए।

आस्तिक कहता है कि है, और जीता इस तरह है जैसे नास्तिक को जीना चाहिए। आस्तिक कहता है कि है परमात्मा, मंदिर में पूजा कर आता है और जीता ऐसे है जैसे परमात्मा पृथ्वी पर कहीं भी न हो। यह आस्तिक का सम्मान है या उस नास्तिक का सम्मान है जो ईश्वर को प्राणों की बाजी लगा लेता है। सोचता है दिन और रात, विचार करता है, निर्णय करता है, तर्क करता है, संदेह करता है, सोचता है, खोजता है, ईश्वर है? वह उसके प्राणों का सवाल है। अगर होगा तो उसे जिंदगी बदलनी पड़ेगी, नहीं होगा तो जिंदगी दूसरी तरह की होगी। लेकिन नास्तिक ईश्वर को उपेक्षा के योग्य नहीं मानता।

हमारी नई सदी में लाखों लोग ऐसे हैं जो नास्तिक भी नहीं हैं। वे कहते हैं, ईश्वर, होगा या नहीं होगा, कोई प्रयोजन नहीं है। यह पहली दफा ईश्वर की मौत की खबर है। ईश्वर मरने के करीब पहुंच गया यह इसकी

खबर है। नास्तिक ईश्वर को नहीं मरने देगा, लेकिन यह उपेक्षा, यह इनडिफरेंस कि ईश्वर की बात उठे और लोग कहें कि छोड़ो, कोई और बात करें। यह इनडिफरेंस ईश्वर की मौत हो सकती है। और आप जान कर हैरान होंगे, अगर दुनिया में नास्तिक न होते तो आस्तिक कभी के इनडिफरेंट हो चुके होते, उन्होंने कभी की फिक्र छोड़ दी होती ईश्वर की। वह जो नास्तिक विरोध किए जाता है, आलोचना किए जाता है, वह आस्तिक को बल देता रहता है कि वह सोचे, फिर सोचे, फिर सोचे ईश्वर है या नहीं।

दुनिया में विचार को जन्माने में, विचार को गतिमान करने में कनफर्मिस्ट जो होते हैं, स्वीकार करने वाले जो लोग होते हैं, आस्थावादी जो होते हैं, उन्होंने कोई भी हाथ नहीं बंटाया है।

आपको शायद पता न हो, वेद और उपनिषद से आकर भारत में विचार की धारा रुक गई थी, बिल्कुल रुक गई थी। महावीर और बुद्ध, प्रबुद्ध कात्यायन, मक्खली गोशल, संजय वेलट्ठी पुत्त, इन सारे लोग ने वह धारा तोड़ी। इन सारे लोगों ने विरोध किया है--वेद का, उपनिषद का। महावीर जैसा आलोचक खोजने से मिलेगा दुनिया में? बुद्ध जैसा आलोचक खोजने से मिलेगा? बुद्ध और महावीर और दूसरे लोगों ने तोड़ दी सारी परंपरा। एक तूफान आ गया सारे मुल्क में। सारे मुल्क में चिंतन पैदा हुआ। उस चिंतन की धारा में फिर वसुबंधु और नागार्जुन और दिग्नाग और धर्मकीर्ति और कुंदकुंद और उमास्वाति और सारी परंपरा और शंकर और रामानुज और निम्बार्क।

बुद्ध और महावीर ने जो आलोचना की उस आलोचना को उत्तर देने के लिए, उस आलोचना के पक्ष में खड़े होने के लिए एक हजार साल तक चिंतन चला। एक हजार साल तक जवाब खोजना पड़ा बुद्ध के लिए, महावीर के लिए। या बुद्ध और महावीर के पक्ष में दलील खोजनी पड़ी। एक हजार साल मुल्क की प्रतिभा ने मंथन किया। अदभुत-अदभुत अनुभव उस मंथन से उपलब्ध हुए। उस मंथन से शंकर जैसा आदमी पैदा हुआ, नागार्जुन जैसा अदभुत आदमी पैदा हुआ, उस मंथन से, उस आलोचना के परिणाम से। अगर बुद्ध और महावीर ने आलोचना न की होती तो हिंदुस्तान में शंकर और नागार्जुन के पैदा होने की कोई संभावना नहीं थी। वे उस आलोचना के प्रतिफल थे। लेकिन फिर शंकर के बाद आलोचना क्षीण पड़ गई। फिर शंकर को स्वीकार कर लिया गया। शंकर के बाद फिर आलोचना नहीं हो सकी, फिर एक हजार साल भारत में बुद्धि की दृष्टि से अकाल का समय बीता। फिर एक हजार साल तक आलोचना करने से हम भयभीत हो गए। क्योंकि बुद्ध और महावीर ने आलोचना की थी, तो हमें पंद्रह सौ साल तक उस आलोचना के लिए सोचना पड़ा था।

आदमी सोचना नहीं चाहता। आदमी सुस्त और काहिल है। वह समझता है कि बिना सोचे काम चल जाए तो बहुत अच्छा। तो पंद्रह सौ साल तक टक्कर लेनी पड़ी मस्तिष्क को, श्रम करना पड़ा। तो आदमी ने सोचा कि अब छोड़ो फिक्र, शंकर पर विश्वास कर लो। शंकर पर विश्वास कर लिया गया। हजार साल से फिर आलोचना बंद हो गई। फिर हिंदुस्तान में, इन हजार सालों में उस तरह के लोग पैदा न हो सके कि नागार्जुन, बुद्ध या महावीर पैदा हो सकते। वे नहीं पैदा हो सके।

अब भारत का पुनर्जागरण का युग आया। देश स्वतंत्र हुआ। अगर इस स्वतंत्रता के साथ भारत के मस्तिष्क में आलोचना की शक्ति नहीं जगती है तो हिंदुस्तान की प्रतिभा का जन्म नहीं होगा, यह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। चाहिए तीव्र आलोचना कि हिंदुस्तान में पचास वर्षों तक दस-पच्चीस तीव्र आलोचक पैदा हों जो हिंदुस्तान की जड़ें हिला दें। उसके मस्तिष्क को हिला दें। तो हम आने वाली सदी में फिर बुद्ध और महावीर और शंकर जैसे लोग पैदा कर सकेंगे। नहीं तो हम पैदा नहीं कर सकेंगे। मगर हम बिल्कुल नपुंसक, इंपोटेंट हो गए हैं। हमारी जान निकलती है जरा सा विचार करने में, जरा सा विचार, जरा सी आलोचना, हमारे प्राण कंपते हैं।

इतनी कमजोर कौम प्रतिभा पैदा नहीं कर सकती है। इतनी कमजोर कौम कैसे प्रतिभा पैदा करेगी? प्रतिभा तो एक साधना है, प्रतिभा तो एक श्रम है।

आपको पता है कि तीन सौ वर्षों में यूरोप में जो भी विकास हुआ है वह किन लोगों की वजह से हुआ है? आस्तिकों की वजह से? श्रद्धा करने वालों की वजह से? कनफर्मिस्ट लोगों की वजह से? आर्थोडाक्स लोगों की वजह से? रूढ़िग्रस्त लोगों की वजह से? रूढ़िग्रस्त लोगों की वजह से दुनिया में कभी कोई विकास नहीं हुआ। किसके द्वारा विकास हुआ है? उन विद्रोहियों की वजह से जिन्होंने सारी रूढ़ि तोड़ने की हिम्मत की, जिन्होंने संदेह किया, विश्वास नहीं। जिन्होंने आलोचना की, आस्था नहीं।

तीन सौ वर्ष के उन वाल्तेयर, या रूसो, या दीदरो, या नीत्शे, या फ्रायड और मार्क्स ऐसे लोगों की वजह से पश्चिम की प्रतिभा को झकझोड़ मिला। प्रतिभा चौंक गई। उत्तर खोजना जरूरी हो गया। या तो पक्ष या विपक्ष में होना पड़ेगा। कोई विकल्प न रहा कि आप चुपचाप अपनी सुस्ती में और उपेक्षा में बैठे रहें। अब नीत्शे को सुनिएगा तो उसका पक्ष या विपक्ष, कहीं न कहीं आपको होना पड़ेगा। आप यह नहीं कह सकते कि ठीक है, सुन लिया। आपको यह कहना ही पड़ेगा कि नीत्शे ठीक है या गलत है। दो के अतिरिक्त तीसरा कोई रास्ता नहीं है।

और जब आपको किसी को ठीक या गलत कहने के लिए सोचना पड़ता है तो आपकी प्रतिभा में अंकुर आने शुरू होते हैं। लेकिन जब आप कहते हैं आलोचना करनी ही नहीं है, आलोचना विध्वंसात्मक है, हमें तो जो कहना है वह कहना चाहिए। तो दुनिया के सभी श्रेष्ठ विचारक विध्वंसात्मक थे, लेकिन बाद में हमें याद भी नहीं रह जाता कि वे कितने बड़े आलोचक रहे होंगे, कितने बड़े आलोचक रहे होंगे! और कैसी तीव्र आलोचना की होगी। हम तो समझते हैं कि आलोचना यानी गाली-गलौज हो गई।

यह जो हमारी आज की धारणा है, इस धारणा को बिल्कुल आग लगा देने की जरूरत है। एक-एक बच्चे को संदेह सिखाया जाना चाहिए, डाउट सिखाया जाना चाहिए। एक-एक बच्चे को क्रिटिकल होने की, आलोचनात्मक होने की प्रेरणा देनी चाहिए। एक-एक बच्चे को--मां-बाप को, गुरु को कहना चाहिए कि हमारी बात मान मत लेना, विचार करना, सोचना, झगड़ना, हिम्मत से हमसे लड़ना। अगर तुम्हारे विवेक को स्वीकार हो तो ही मानना अन्यथा मत मानना। अगर हम इतनी हिम्मत दिखाएंगे तो हिंदुस्तान की प्रतिभा विकसित होगी, अन्यथा नहीं विकसित हो सकती। क्या करूं? आपकी बात मान लूं, आलोचना नहीं करनी चाहिए? या कि यह देखूं कि आने वाले मुल्क का भविष्य आलोचना से ही पैदा हो सकता है?

मैंने कल शायद कहा कि राधाकृष्णन कोई विचारक नहीं हैं। बस चिट्ठियां आ गईं कि आपने बहुत बुरा काम कर दिया आपने राधाकृष्णन को ऐसा कैसे कह दिया?

राधाकृष्णन विचारक हैं या नहीं, यह सोचना चाहिए। मैंने कह दिया कोई मान लेने की जरूरत है? मैं कहता हूं कि नहीं हैं विचारक--मैं कहता हूं तो मैं उसके लिए दलील देता हूं। आप सोचिए कि हैं विचारक तो दलील खोजिए। बस इतना ही मैं चाहता हूं कि विचार की प्रक्रिया चले। हो सकता है कि राधाकृष्णन विचारक सिद्ध हों विचार करने से और मेरी बात गलत सिद्ध हो। लेकिन मुझे कहना नहीं चाहिए यह कौन सी बात हुई?

मुझे जो लगता है वह मुझे कहना चाहिए। मुझे लगता है कि राधाकृष्णन कोई विचारक नहीं हैं। केवल एक टीकाकार हैं, एक व्याख्याकार हैं, एक अनुवादक हैं। एक अच्छे अनुवादक हैं, एक अच्छे कमेंटेटर हैं, एक अच्छे टीकाकार हैं। उन्होंने पूरब की सारी धारणाओं को पश्चिम में जितनी सुंदरता से पहुंचाया उतना कोई मनुष्य कभी भी नहीं पहुंचाया। लेकिन विचारक वे नहीं हैं। उन्होंने एक नये विचार को जन्म नहीं दिया। उनकी

सारी किताबों में एक भी सूत्र ऐसा नहीं है जो उनकी मौलिक प्रतिभा से जन्मा हो। वे सब गीता, उपनिषद और वेदों के उधार सूत्र हैं। विचारक वे नहीं हैं, विचारक होने का कोई सवाल नहीं है उनका। लेकिन हमने कुछ ऐसी हालत पकड़ ली है कि जिस आदमी की हम प्रशंसा करेंगे उसकी हम सब तरह से प्रशंसा करेंगे। हम फिर कोई हिस्सा नहीं छोड़ सकते उसका कि वह न हो, वह सभी होना चाहिए।

हिंदुस्तान में एक पागल भाव पैदा हो गया है कि हमारे महापुरुष में सभी कुछ होना चाहिए। दुनिया के किसी महापुरुष में सभी कुछ नहीं होता। अगर आप महावीर के पास पूछने जाएंगे कि साइकिल का पंक्चर कैसे सुधारा जा सकता है? तो महावीर नहीं बता सकते। इसके लिए तो साइकिल का जो, कोने पर बैठा हुआ, एक टपरा लगाए हुए बैठा हुआ आदमी वही बता सकेगा। लेकिन हमारी धारणा यह कि महावीर सर्वज्ञ हैं, वे सभी कुछ जानते हैं, ऐसा कुछ भी नहीं जिसको वे नहीं जानते। पागलपन की बातें हैं।

बुद्ध ने मजाक उड़ाया है इस धारणा का जैनियों की। बुद्ध ने कहा है कि एक ज्ञानी हैं। उनके भक्त कहते हैं कि वे सर्वज्ञ हैं, वे त्रिकालज्ञ हैं, वे तीनों काल जानते हैं। लेकिन उन्हीं ज्ञानी को मैंने ऐसे घरों के सामने भिक्षा मांगते देखा है जहां बाद में पता चलता है घर में कोई है ही नहीं। मैंने उन्हीं ज्ञानी को रास्ते पर चलते हुए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ते देखा है। बाद में पता चलता है कि अंधेरे में कुत्ता सोया हुआ था और उनके भक्त कहते हैं कि वे त्रिकालज्ञ हैं, तीनों काल जानते हैं!

बुद्ध बड़े महिमाशाली हैं। लेकिन शंकर कहते हैं कि मैंने सुना है कि भगवान ने बुद्ध को इसलिए अवतार दिया, यह कहानी शंकर ने गढ़ी, कहानी शंकर ने गढ़ी कि मैंने सुना है कि नरक और स्वर्ग बनाए भगवान ने। लेकिन नरक में कोई जाता ही नहीं था, तो नरक का जो अधिकारी था उसने भगवान को जाकर कहा, नरक में कोई आता ही नहीं, तो मुझे किसलिए बैठाया हुआ है? तो भगवान ने बुद्ध को अवतार दिया कि तुम जाकर लोगों को भ्रष्ट करो ताकि वे नरक जा सकें।

तो शंकर गलत कह रहे हैं? शंकर गलत कह रहे हैं और सही कह रहे हैं यह सोचने की बात है। लेकिन शंकर को कहने का हक है। शंकर को कहने का हक है, जो उसे ठीक लगता है वह कह रहा है। उसे लगता है कि बुद्ध ने लोगों को भ्रष्ट किया। बुद्ध ने, जिनके लिए हम सोचते हैं उनके जैसा महापुरुष जगत में कोई पैदा नहीं हुआ। लेकिन शंकर कहता है कि भ्रष्ट किया है। और शंकर की उम्र कितनी है? शंकर ने जब यह बात कही तब उसकी उम्र तीस साल है। लेकिन अच्छे लोग रहे होंगे, शंकर की बात भी उन्होंने सुनी। न तो पत्थर मारे, न कहा कि बहिष्कार कर देंगे। शंकर के समय तक बुद्ध तो भगवान हो चुके थे। और एक छोकरे ने, एक गरीब घर के छोकरे ने कहना शुरू कर दिया कि नहीं, यह भ्रष्ट करने को आदमी पैदा हुआ था। इसने दुनिया को बनाया नहीं, बिगाड़ा। हिम्मतवर लोग थे। जब इतनी हिम्मत होती है तो विचार विकसित होता है।

हमने सारी हिम्मत खो दी है। और फिर हम चाहते हैं कि हम विचारशील हो जाएं। हम विचारशील नहीं हो सकेंगे। विचार का जन्म होता है संदेह से, विचार का जन्म होता है संघर्ष से, विचार का जन्म होता है आलोचना से। इसलिए यह मत कहें मुझसे कि मैं आलोचना न करूं!

मैं तो आलोचना करूंगा और जितना आप कहेंगे उतना खोज-खोज कर करूंगा। और एक-एक महापुरुष का पीछा करूंगा, क्योंकि मुझे जरूरत मालूम होती है। मुझे जरूरत मालूम होती है, मुझे आवश्यकता लगती है कि इस समय देश के लिए सबसे बड़ी जरूरत अगर कुछ है तो वह यह है, इस देश का हजारों साल से रुका हुआ विचार का अवरुद्ध प्रवाह टूट जाए, बहने लगे हमारी सरिता फिर से। फिर से हम सोचने लगें, फिर से हम पूछने लगें, फिर से इंक्वायरी पैदा हो जाए। कैसे अदभुत लोग रहे होंगे। खोजते थे कितने दूर-दूर तक, कितनी दूर-दूर

की यात्राएं करते थे। नालंदा में दस हजार विद्यार्थी थे। सारे हिंदुस्तान के कोने-कोने से हिंदुस्तान के बाहर से अफगानिस्तान से और बर्मा से और चीन से हजारों मील की पैदल यात्रा करके आते थे संदेह सीखने, तर्क सीखने, पूछने, जिज्ञासा करने।

एथेंस में जहां विचार का जन्म हुआ यूरोप में, थोड़े से दिनों में एक आदमी ने विचार को जन्म दिला दिया--उस साक्रेटीज ने। क्या किया साक्रेटीज ने? साक्रेटीज ने जिंदगी के सारे मसले फिर से उठा दिए। एक-एक प्रश्न फिर से खड़ा कर दिया। एक-एक प्रश्न को जो हम समझते थे हल हो गया, फिर से जिंदा बना दिया। जब सारे प्रश्न जिंदा हो गए तो सोचना मजबूरी हो गई। उस सोचने से अरस्तू पैदा हुआ, प्लेटो पैदा हुआ, प्लेटीनस पैदा हुआ। वे सारे के सारे लोग पैदा हुए। सारे यूरोप की धारा पैदा हुई एक आदमी से, साक्रेटीज से। क्योंकि उसने क्वेश्चनिंग पैदा कर दी। उसने एक भी प्रश्न को नहीं रहने दिया। अस्तव्यस्त कर दिए सारे उत्तर। अतीत ने जो भी उत्तर दिए थे, सब गड़बड़ कर दिए और आदमी को वहां खड़ा कर दिया जहां वह पूछेः क्या है सत्य?

साक्रेटीज से लोग कहते कि तुम उत्तर दो। तुम तो बताओ कि सत्य क्या है। वह कहता, यह मेरा काम नहीं। मेरा काम यह है बताना कि सत्य क्या नहीं है। सत्य क्या है वह तो तुम्हारे भीतर जिज्ञासा पैदा हो जाएगी तो तुम खोज लोगे। असत्य क्या है वह मैं बता दूं, मेरा काम पूरा हो जाता।

साक्रेटीज ने कहाः मैं तो एक मिडवाइफ की तरह हूं, एक दाई की तरह हूं। मेरा काम बच्चे को जन्माना नहीं है, केवल बच्चे के लिए द्वार दे देना है कि वह जन्म जाए। बच्चा तो तुमसे पैदा होगा। मैं बच्चा नहीं पैदा कर सकता हूं।

साक्रेटीज ने कहाः मैं तो संदेह पैदा करूंगा।

साक्रेटीज से लोग डरते थे। अगर रास्ते पर मिल जाए तो नमस्कार करने में डरते थे। क्योंकि उससे नमस्कार की कि कोई झंझट खड़ी हो जाए। तो तुमने नमस्कार की, तो वह फौरन पूछेगा, आपने नमस्कार क्यों की? अब आप कुछ तो कहेंगे, आप कुछ कहेंगे और डायलॉग शुरू हो जाएगा।

साक्रेटीज से लोग बचने लगे। वे यह देख लेते कि वह आ रहा है, वे दूसरी गली से निकल जाते। लेकिन उस अकेले आदमी ने मौत पर खेल कर... क्योंकि इसका बदला लिया है एथेंस के लोगों ने उससे। हम उस आदमी से बदला लेते हैं जो हमारा अज्ञान प्रकट कर देता है। इसका पता है आपको? हम उस आदमी से हमेशा बदला लेते हैं जो हमारा अज्ञान प्रकट कर देता है। क्योंकि वह हमारे अहंकार को चोट पहुंचा देता है। जिस बात को हम समझते थे हम जानते हैं, वह आकर बता देता है कि नहीं जानते। बहुत गुस्सा आता उस आदमी पर कि हम तो माने बैठे थे कि हम जानते थे, निश्चिंत हो गए थे, खोज पूरी हो गई थी। इस आदमी ने फिर झंझट खड़ी कर दी। यह फिर इसने ऐसी बातें उठा दीं जिनसे शक पैदा होता है कि हम जानते हैं या नहीं जानते? गुस्सा आता है उस आदमी पर। ऐसे आदमी से हमने हमेशा बदला लिया है।

सारे एथेंस के लोग परेशान हो गए, क्योंकि साक्रेटीज ने सारे पुराने ज्ञान को भूमिसात कर दिया, पुराने भवन को गिरा दिया। एक-एक आदमी की आस्था की जमीन खींच ली, एक-एक आदमी अंधेरे में लटक गया और एक-एक आदमी कहने लगा, यह आदमी बहुत खतरनाक है। इस आदमी से छुटकारा चाहिए। यह हमें शांति से न जीने देगा।

साक्रेटीज पर उन्होंने मुकदमा चलाया और कहा कि यह साक्रेटीज लोगों का दिमाग खराब करता है। यह हमारे युवकों का दिमाग बिगाड़ता है। इस आदमी को फांसी होनी चाहिए। इसको जहर पिलाना चाहिए। साक्रेटीज से अदालत के अध्यक्ष ने कहा, क्योंकि साक्रेटीज बहुत प्यारा आदमी था। मजिस्ट्रेट ने उसे कहा कि

साक्रेटीज अगर तुम यह वचन दे दो कि आगे से तुम सत्य की बातें नहीं करोगे तो हम तुम्हें छोड़ सकते हैं। साक्रेटीज ने कहा कि वह तो मेरा धंधा है सत्य की बातें करना। अगर वह धंधा ही छूट जाए तो मैं जीकर भी क्या करूंगा?

साक्रेटीज से वह अध्यक्ष कह रहा है अदालत का कि तुम सत्य की बातें और जिज्ञासा और प्रश्न खड़े नहीं करोगे। साक्रेटीज वहीं अदालत में पूछता है, क्या महानुभव मैं पूछ सकता हूं, सत्य क्या है? यह तो पक्का हो जाए पहले कि सत्य क्या है, तो फिर मैं सोचूं भी कि उसे छोड़ना कि नहीं छोड़ना। सत्य का अर्थ क्या है? सत्य कहां है?

वह अध्यक्ष बोला कि यही तो हम कहते हैं कि यह सब बकवास तुम छोड़ दो।

साक्रेटीज ने कहा कि मैं जिंदगी छोड़ दूंगा, लेकिन यह नहीं छोडूंगा। क्योंकि सत्य से ज्यादा प्यारा कुछ भी नहीं है। और सत्य की खोज में जिसे जाना है, उसे झूठे ज्ञान को छोड़ना पड़ता है। लोग मुझसे नाराज हो गए हैं क्योंकि मैंने उनसे झूठा ज्ञान छीन लिया है और सच्चे ज्ञान पर जाने के लिए वे हिम्मत और साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। इसलिए एक वैक्यूम, एक शून्य पैदा हो गया है। लेकिन मैं यह शून्य पैदा करता रहूंगा या मर जाऊं या जिंदा रहूंगा तो सत्य बोलता रहूंगा। सत्य के बिना मैं कैसे जी सकता हूं?

उस आदमी ने मर जाना पसंद किया, लेकिन उसी आदमी ने एथेंस की संस्कृति को आकाश तक उठा दिया। उस अकेले आदमी ने जिसका खून किया गया, जिसको जहर पिलाया गया, उस एक आदमी की वजह से पश्चिम की सारी संस्कृति की गंगा पैदा हुई। उसकी गंगोत्री साक्रेटीज में है।

हिंदुस्तान में साक्रेटीज, सुकरात जैसे लोगों की जरूरत है ताकि हजारों साल का बंधा हुआ प्रवाह टूट जाए, मुक्त हो सके। हिंदुस्तान फिर सोच सके, फिर विचार कर सके। हमें खयाल ही नहीं, हम जितना विश्वास कर लेते हैं उतना ही विचार करना मुश्किल हो जाता है। विश्वास विचार की हत्या है। जितना हम विश्वास करते हैं उतनी विचार की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। विचार की जरूरत तो तब पैदा होती है जब हम विश्वास नहीं करते। जब हम मान लेते हैं कि गांधी महात्मा हैं, काम खत्म हो गया। बच्चे को हमने कह दिया कि वे महात्मा हैं, बात खत्म हो गई। बच्चे को पूछना चाहिए कि महात्मा वे कैसे हैं? क्यों हैं? वही महात्मा क्यों हैं और कोई महात्मा क्यों नहीं हैं? ऐसी बात क्या है जिसे हम महात्मा मानें? लेकिन बाप कहेगा कि नहीं, इतनी बातचीत की जरूरत नहीं है। हम जो कहते हैं वह मानो!

हमेशा पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी से कहती है, हम जो कहते हैं वह मानो! यह पुरानी पीढ़ी की कमजोरी बताती है, ताकत नहीं। क्योंकि जब भी कोई आदमी कहता है, मैं जो कहता हूं मानो, तो वह बता रहा है कि वह कमजोर आदमी है। उसको अपनी बात मनवाने के लिए विवेक को जगाने का विश्वास वह नहीं कर सकता। वह डंडे के बल पर कह रहा है कि मैं जो कहता हूं वह मानो! मानना पड़ेगा! मेरी उम्र ज्यादा है! मेरा अनुभव ज्यादा है! मैंने जिंदगी देखी है! देखी होगी जिंदगी आपने। लेकिन जो जिंदगी आपने देखी, ये बच्चे उस जिंदगी को कभी नहीं देखेंगे। ये दूसरी जिंदगी देखेंगे। कृपा करके अपनी जिंदगी का ज्ञान इनकी छाती पर मत थोपों। इनको मुक्त करो ताकि ये जो नई जिंदगी देखेंगे उसको देख सकें। लेकिन नहीं, हम भयभीत लोग, कहीं ज्ञान न खो जाए, कहीं आस्था न खो जाए, कहीं विश्वास न खो जाए, कहीं श्रद्धा न खो जाए, कहीं सब खो न जाए। और है हमारे पास कुछ भी नहीं। सब खोया हुआ है। सिर्फ धुआं-धुआं है। कुछ भी नहीं है हमारे पास।

मैंने सुनी है एक कहानी। एक सम्राट के दरबार में एक आदमी ने आकर कहा था कि मैं स्वर्ग से वस्त्र ला सकता हूं तुम्हारे लिए। उस सम्राट ने कहाः स्वर्ग के वस्त्र? सुने नहीं कभी, देखे नहीं कभी। उस आदमी ने कहाः

मैं ले आऊंगा, देख भी सकेंगे, पहन भी सकेंगे। लेकिन बहुत खर्च करना पड़ेगा। कई करोड़ रुपये खर्च हो जाएंगे। क्योंकि रिश्वत की आदत देवताओं तक पहुंच गई है। जब से ये दिल्ली के राजनीतिज्ञ मर-मर कर स्वर्ग पहुंच गए हैं तब से रिश्वत की आदत वहां पहुंच गई। वहां भी रिश्वत जारी हो गई है, क्योंकि देवता कहते हैं हम आदमियों से पीछे थोड़े ही रह जाएंगे। और यहां पांच रुपये की रिश्वत चलती है, वहां तो करोड़ों से नीचे बात नहीं होती, क्योंकि देवताओं का लोक है।

सम्राट ने कहाः कोई हर्ज नहीं, लेकिन धोखा देने की कोशिश मत करना! करोड़ों रुपये देंगे तुम्हें, लेकिन भागने की कोशिश मत करना! मुश्किल में पड़ जाओगे। उसने कहाः भागने का सवाल नहीं है। महल के चारों तरफ पहरा कर दिया जाए, मैं महल के भीतर ही रहूंगा। क्योंकि देवताओं का रास्ता सड़कों से होकर नहीं जाता, वह तो अंतरिक्ष यात्रा है अंदर की। वहीं से अंदर से कोशिश करूंगा। आप घबड़ाइए मत। तलवारें नंगी लगा दी गईं। उस आदमी ने छह महीने का समय मांगा और छह महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट से ले लिए। दरबारी हैरान थे और चिंतित थे। लेकिन सम्राट ने कहा, घबड़ाहट क्या है, जाएगा कहां, रुपये लेकर जाएगा कहां महल के बाहर।

छह महीने पूरे होने पर सारी राजधानी में हजारों लोग इकट्ठे हो गए, लाखों लोग इकट्ठे हो गए देखने को। वह आदमी ठीक समय बारह बजे, जो उसने दिया था, एक बहुमूल्य पेटी लिए हुए महल के बाहर आ गया। अब तो कोई शक की बात न थी। वह सब जुलूस पूरा का पूरा राजमहल पहुंचा। दूर-दूर के राजा, सम्राट, धनपति दरबार में इकट्ठे थे देखने को। उस आदमी ने पेटी वहां रखी और कहा, महाराज यह ले आया। ये वस्त्र आ गए। अब आप मेरे पास आ जाएं। मैं देवताओं के वस्त्र दे दूं। आप पहन लें।

महाराज ने अपनी पगड़ी दी। उसने पगड़ी उस पेटी में डाल दी। वहां से खाली हाथ बाहर निकाला और कहाः महाराज यह पगड़ी दिखाई पड़ती है? हाथ में कुछ भी न था। महाराज ने गौर से देखा। उस आदमी ने कहाः खयाल रहे, देवताओं ने चलते वक्त मुझसे कहा था यह पगड़ी और ये कपड़े उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो। उस सम्राट ने कहाः हां-हां, दिखाई पड़ती है, क्यों दिखाई नहीं पड़ेगी। बड़ी सुंदर पगड़ी है, बड़ी सुंदर पगड़ी है, ऐसी पगड़ी न तो कभी देखी, न सुनी।

दरबारियों ने सुना। किसी को भी पगड़ी दिखाई नहीं पड़ती थी। पगड़ी होती तो दिखाई पड़ती। लेकिन दरबारियों ने देखा कि इस वक्त यह कहना कि नहीं दिखाई पड़ती है, व्यर्थ अपने मरे हुए बाप पर शक पैदा करवाने से क्या फायदा है। पगड़ी से हमको लेना-देना क्या है। अपने बाप को बचाओ, पगड़ी से प्रयोजन क्या है। वे भी तालियां बजाने लगे और कहने लगे, धन्य महाराज, धन्य! पृथ्वी पर ऐसा अवसर कभी नहीं आया। ऐसी पगड़ी कभी देखी नहीं गई। एक-एक आदमी अपने मन में सोच रहा था कि बड़ी गड़बड़ बात है। लेकिन उसने देखा कि सारे लोग कहते हैं कि पगड़ी है तो उसने सोचा कि हो सकता है अपने बाप गड़बड़ रहे हों, लेकिन यह भी किसी से कहने की बात नहीं है। अपने भीतर जान लिया, वह ठीक है। अपना राज अपने घर में रखो। जब सारे लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे।

हमारी यही दलील है कि सारे लोग कहते हैं तो ठीक कहते होंगे। जब पूरा हिंदुस्तान कहता है कि फलां आदमी महावीर भगवान है, फलां आदमी बुद्ध पैगंबर है, फलां आदमी महात्मा है, तो ठीक ही कहता होगा। जब सब लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। अब अकेले क्यों झंझट में पड़ना। उन लोगों ने सोचा, अपनी झंझट। जिसको जितना डर लगा वह उतना बाहर आगे आ गया और कहने लगा कि अहा महाराज, धन्य हैं। क्योंकि उसे

लगा कि कहीं मैंने धीरे-धीरे कहा तो आस-पास के लोगों को शक न हो जाए कि यह आदमी थोड़े धीरे-धीरे बोलता है।

जितने चोर होते हैं दुनिया में उतने जोर से चिल्लाते हैं कि चोरी किसने की है। चोर को पकड़ो। वे चोर चिल्लाते हैं ये बातें ताकि किसी को शक न हो जाए कि यह आदमी कुछ भी नहीं चिल्ला रहा, कहीं चोर न हो। रिश्वतखोर चिल्लाते हैं कि मुल्क से रिश्वत बंद होनी चाहिए, बेईमान नेता मुल्क के सामने भाषण देते हैं और कहते हैं कि भ्रष्टाचार नष्ट करना है। और जितने जोर से मंच पर चिल्लाते हैं भ्रष्टाचार नष्ट करना है, जनता समझती है यह बेचारा तो कम से कम भ्रष्टाचारी नहीं होगा, नहीं तो इतना भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलता? और जनता को पता नहीं कि भ्रष्टाचारी को भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलना ही पड़ता है।

सम्राट ने देखा कि जब सारा दरबार कह रहा है तो समझ गया वह कि अपने पिता गड़बड़ रहे हैं। अब कुछ बोलना ठीक नहीं। जो कुछ हो, कपड़े हों या न हों, स्वीकार कर लेना ठीक है। पगड़ी पहन ली उसने जो थी ही नहीं। कोट पहन लिया उसने जो था ही नहीं। एक-एक वस्त्र उसका छिनने लगा, वह नंगा होने लगा। आखिरी वस्त्र रह गया तब वह घबड़ाया कि यह तो बड़ी मुश्किल बात है। कहीं कपड़े मालूम नहीं होते। बस आखिरी अंडरवियर रह गया। अब यह भी जाता है।

और उस आदमी ने कहा कि महाराज यह अंडरवियर देवताओं का पहनिए, इसको निकालिए। अब वह जरा घबड़ाया। यहां तक तो गनीमत थी। और दरबारी हैं कि ताली पीटे जा रहे हैं कि महाराज कितने सुंदर मालूम पड़ रहे हैं इन वस्त्रों में आप। और महाराज बिल्कुल नंगे हो गए हैं। वे नंगे खड़े हुए हैं।

उस आदमी ने धीरे से कहाः महाराज घबड़ाइए मत। सबको अपने बाप की फिक्र है। जल्दी निकालिए, नहीं तो झंझट हो जाएगी, लोगों को पता चल जाएगा।

उन्होंने जल्दी अंडरवियर निकाल दिया, क्योंकि यह तो घबड़ाहट का मामला था। वे बिल्कुल नग्न खड़े हो गए और दरबारी तो नाच रहे हैं खुशी में कि धन्य हैं महाराज और एक-एक आदमी को राजा नंगा दिखाई पड़ रहा है। लेकिन अब कोई उपाय नहीं है। रानी भी देख रही है कि राजा नंगा है, लेकिन कुछ कह नहीं सकती। वह भी ताली पीट रही, कह रही, महाराज इतने सुंदर आप कभी नहीं दिखाई पड़े।

और तब उस आदमी ने कहा कि महाराज देवताओं ने मुझसे कहा था कि जब यह वस्त्र महाराज पहन लें तो उनकी शोभा-यात्रा, उनका प्रोसेशन निकाला जाना चाहिए। राजधानी में हजारों लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, रास्ते के किनारों पर लाखों लोग खड़े हैं। वे कहते हैं, हम महाराज के दर्शन करेंगे। रथ तैयार है, आप कृपा करके रथ पर सवार होइए। आप बाहर चलिए।

अब महाराज और भी घबड़ाए। अभी तक तो कम से कम दरबारी थे, अपने ही मित्र थे, परिचित थे, घर के लोग थे। यह झंझट। उस आदमी ने राजा के कान में कहा, आप घबड़ाइए मत, आपके रथ के पहले एक डुगडुगी पिटती चलेगी और खबर की जाएगी कि ये वस्त्र उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ। आप घबड़ाइए मत। जैसे आदमी ये भीतर हैं वैसे ही आदमी बाहर हैं। सब तरफ एक से एक बेवकूफ आदमी हैं। आप घबड़ाइए मत। और अगर आपने इनकार किया कि मैं बाहर नहीं जाता हूं, तो लोगों को शक हो जाएगा, आपके पिता पर शक हो जाएगा।

राजा ने कहाः चलो भाई। क्योंकि यह पिता पर ही शक।

एक दफा आदमी झूठ में फंस जाए तो फिर कहां रुके यह बहुत मुश्किल हो जाता है। जो आदमी झूठ में पहले ही कदम पर रुक जाता है वह रुक सकता है। जो दस-पांच कदम आगे चल गया फिर बहुत मुश्किल हो

जाती है। लौटना भी मुश्किल, आगे जाना भी मुश्किल। उस बेचारे गरीब सम्राट को नंगा जाकर रथ पर खड़ा होना पड़ा। उसके सामने ही डुगडुगी पिटने लगी कि ये वस्त्र सम्राट के सुंदर वस्त्र देवताओं के वस्त्र हैं। ये वस्त्र उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं। और सबको वस्त्र दिखाई पड़ने लगे। एकदम प्रशंसा होने लगी।

गांव में खबर तो पहले ही पहुंच गई थी यह। सब लोग तैयार होकर आए थे कि अपने बाप की रक्षा करनी है और वस्त्र भी देखने थे। वस्त्र तो दिखाई न पड़ते थे। राजा नंगा था। लेकिन सारा जनसमूह कहने लगा कि ऐसे सुंदर वस्त्र सपनों में भी नहीं देखे, लेकिन कुछ छोटे बच्चे अपने बापों के कंधों पर चढ़ कर आ गए थे, वे अपने बाप से कहने लगे, पिताजी, राजा नंगा है! उनके पिताजी ने कहाः चुप नासमझ! अभी तेरा ज्ञान कम है, अभी तेरी उम्र कम है। ये बातें अनुभव से आती हैं, ये बड़ी गहरी बातें हैं। जब मेरे उम्र का हो जाएगा, अनुभव मिल जाएगा तो वस्त्र दिखाई पड़ने लगेंगे। ये बड़े अनुभव से दिखाई पड़ते हैं। जो बच्चे चुप नहीं हुए, उनके मां-बाप उनका मुंह बंद करके भीड़ के पीछे खिसक गए। क्योंकि बच्चों का क्या भरोसा, आस-पास के लोग सुन लें कि इस आदमी के लड़के ने यह कहा है!

हमेशा भीड़ के भय के कारण हम सत्यों को स्वीकार किए बैठे रहते हैं, भीड़ का भय, फियर ऑफ क्राउड। जिसको हम सत्य मान कर बैठें हैं वह सत्य है? या सिर्फ भीड़ का भय है कि चारों तरफ के लोग क्या कहेंगे? चारों तरफ के लोग जिसको मानते हैं उसको हम भी मानते हैं। ऐसा आदमी सत्य की खोज में कभी भी नहीं जा सकता है, जो भीड़ को स्वीकार कर लेता है।

सत्य की खोज भीड़ से मुक्त होने की खोज है। वह जो पब्लिक ओपिनियन है, वह जो भीड़ का मत है, उसको जो पकड़ कर बैठ जाता है वह आदमी सत्य की यात्रा में एक कदम भी नहीं उठा सकता, क्योंकि भीड़ एक-दूसरे से भयभीत है। आप जिनसे भयभीत हैं वे आपसे भयभीत हैं, यह म्युचुअल फियर है, इससे छुटकारा बहुत मुश्किल है। और लोग क्या कहेंगे, दुनिया क्या कहेगी, जब सब लोग ऐसा मानते हैं तो ठीक ही होगा। सत्य की ये धारणाएं सत्य की धारणाएं नहीं असत्य को सत्य बनाने की तरकीबें हैं। वह जो फॉल्स है, जो मिथ्या है, जो झूठा है, उसको भीड़ के द्वारा बल इकट्ठा किया जाता है। सत्य तो अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। लेकिन असत्य को भीड़ का मत चाहिए, उसके बिना खड़ा नहीं हो सकता।

इसीलिए तो दुनिया में जब असत्य को फैलाना हो, जब असत्य को प्रचारित करना हो तो एक आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता। भीड़ चाहिए, भीड़ के साथ प्रचार चाहिए, भीड़ के साथ भय चाहिए, क्योंकि भय के बिना भीड़ भी मानने को राजी नहीं होगी। इसलिए वे कहते हैं कि अगर ईश्वर को नहीं माना, तो नरक जाना पड़ेगा। अब नरक जाने की तैयारी किसी की भी नहीं हो सकती। ईश्वर को न मानने की तैयारी बहुत लोगों की हो सकती है, लेकिन नरक जाने की तैयारी और फिर नरक का चित्र कि वहां आग के कड़ाहे जल रहे हैं अनंत काल से, तेल भरा है उनमें, न तेल चुकता है, न आग चुकती है और आदमी उनमें सड़ाए जा रहे हैं, जलाएं जा रहे हैं। आदमी मरता भी नहीं है उस कड़ाह में, सिर्फ जलता है। करोड़ों-करोड़ों कीड़े हैं जो आदमी के जाते ही उसके शरीर में सब तरफ से घुस जाते हैं, हजारों छेद कर देते हैं, चक्कर लगाते हैं उसके शरीर में वे कीड़े, वे कीड़े मरते नहीं, वे कीड़े अमर हैं और आदमी के शरीर भर में छिद्र-छिद्र हो जाते हैं, छलनी हो जाता है, लेकिन वह भी मरता नहीं है और लाखों-करोड़ों कीड़े उसके शरीर में सब तरफ से घुसते हैं और दौड़ते हैं।

इस तरह की घबड़ाहटें पैदा करते हैं वे। वे कहते हैं, अगर नहीं मानोगे, नरक जाना पड़ेगा। तो आदमी सोचता है कि मान ही लो। ऐसा नरक अगर कहीं हुआ, अगर कहीं हुआ, तो कौन झंझट में पड़े।

ठीक है तुम्हारे भगवान हैं। वे कहते हैं, और जो भगवान को मान लेगा, हमारे भगवान को, क्योंकि भगवान बहुत प्रकार के हैं। भगवान का कोई एक प्रकार नहीं, कोई एक क्वालिटी नहीं; बहुत गुण हैं, बहुत भेद हैं, बहुत सी वेराइटी हैं भगवान की। मुसलमान का भगवान अलग तरह का है, हिंदू का अलग तरह का है, ईसाई का अलग तरह का है, इसका इस तरह का है, उसका उस तरह का है। जितने तरह के लोग हैं उतने तरह के भगवान हैं। वे सब कहते हैं कि हमारे भगवान को! अगर दूसरे के भगवान को माना तो फिर तुम समझ लेना, नरक के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जाएगा। क्योंकि आखिर में जीसस क्राइस्ट ही बचाएंगे, ईसाई कहता है। मुसलमान कहता है, जब मोहम्मद को पुकारोगे तब वही बचाएंगे कोई और बचाने वाला नहीं है। तो ध्यान रखना, अगर मोहम्मद से बचे तो गए दोजख में, अगर जीसस से बचे तो जलना पड़ेगा अनंतकाल तक अग्नि में।

हां, और जो जीसस को मानेंगे, मोहम्मद को मानेंगे उनके लिए स्वर्ग में सारी सुख-सुविधाओं का इंतजाम है। उनके लिए वहां सुंदर महल हैं। और स्वर्ग पता है आपको, यहां तो आप एकाध कमरे को एअरकंडीशन कर पाते हैं, स्वर्ग पूरा का पूरा एअरकंडीशंड है, शीतल मंद बयार वहां बहती रहती है सदा। वहां सूरज निकलता है लेकिन ताप नहीं होता, सिर्फ प्रकाश होता है। वहां वृक्ष कभी कुम्हलाते नहीं, फूल कभी मुरझाते नहीं, वहां पत्ते कभी पीले नहीं पड़ते, वहां कभी बुढ़ापा नहीं होता। स्त्रियों की उम्र वहां सोलह वर्ष पर रुक जाती है, उसके आगे नहीं जाती। ऐसा सुंदर स्वर्ग! वहां वृक्ष हैं, कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठ कर जो भी आप कामना करें वह कामना करते ही पूरी हो जाती है। ऐसा नहीं कि फिर उसके लिए कोई श्रम करना पड़ता हो, ऐसा नहीं कि किसी से कहना पड़ता हो। आप वृक्ष के नीचे बैठ गए और आपने कहा कि एक देवी मौजूद हो जाए, देवी मौजूद हो जाएगी। आपने कहा कि पलंग आ जाए, पलंग आ जाएगा, आंख खुली है पलंग सामने मौजूद है। वहां कामना की और पूरी हो जाती है, ऐसे कल्पवृक्ष हैं। जो हमारे भगवान को मानेगा उसको ऐसे कल्पवृक्ष मिलेंगे, जो नहीं मानेगा उसको नरक में डाल दिया जाएगा।

यह भय के आधार पर आदमी को कुछ भी मनाने की कोशिश की जाती है। फिर भीड़ का भय, जिनके साथ जीना है उनके अनुकूल न रहो तो बहुत मुसीबत हो जाती है, वे मुसीबत में डाल देंगे, जीना मुश्किल कर देंगे। लड़की का विवाह होना मुश्किल हो जाएगा, समाज की जिंदगी कठिन हो जाएगी। उसके भय से मानते चलो जो लोग कहते हैं। भीड़ के भय को मान लो। भीड़ जिसको कहे भगवान उसको भगवान, भीड़ जिसको कहे शास्त्र उसको शास्त्र, भीड़ कहे रात है अभी तो कहना रात, भीड़ कहे दिन है तो कहना दिन। लेकिन भीड़ को मानने वाला व्यक्ति कभी भी आत्मा के विकास को उपलब्ध नहीं होता।

आत्मा के विकास को वे उपलब्ध होते हैं जो सत्य की सतत चेष्टा करते हैं खोज की, जो सत्य के लिए कुछ भी खोने को तैयार होते हैं, जो सत्य के लिए सब कुछ दांव पर लगाने का साहस जुटाते हैं, वे लोग सत्य को उपलब्ध होते हैं।

लेकिन इस देश ने तो सत्य को पाने की सामर्थ्य और आकांक्षा ही खो दी है। वह कहता है आलोचना ही मत करना, वह कहता है विचार ही मत करना। नहीं, मैं आपसे प्रार्थना करूंगा, विचार करना, संदेह करना, आलोचना करना। आपके महात्मा और आपके महापुरुष इतनी कच्ची मिट्टी के नहीं हैं कि आपकी आलोचना और आपके विचार से नष्ट हो जाएंगे। वे बचेंगे और निखर कर बचेंगे जैसे स्वर्ण आग से गुजर कर और साफ हो जाता है वैसे ही आलोचना की निरंतर धारा से गुजर कर महापुरुष और निखर कर प्रकट हो जाते हैं। उनमें भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं। और जो नहीं प्रकट हो सकेंगे उनसे जितनी जल्दी छुटकारा हो जाए उतना ही अच्छा है। उनके साथ कब तक जीएंगे हम? उनको जिलाने की जरूरत क्या है? इसलिए मैंने जान कर एक

उदाहरण की तरह गांधी को चुन कर बात की है और अगर मुझे खयाल आ गया तो मैं एक-एक महापुरुष पर बात करने का विचार करता हूं और एक-एक महापुरुष पर विचार करना पड़ेगा।

मुल्क की प्रतिभा को जगाना जरूरी है। मुल्क के सोए प्राणों को फिर से गति देनी जरूरी है, मुल्क के मन में फिर एक मंथन पैदा करना जरूरी है। अगर मनन पैदा हो जाए, अगर चिंतन पैदा हो जाए, अगर विचार पैदा हो जाए, तो हम हजारों साल के अंधकार को मिटाने में समर्थ हो जाएंगे। एक छोटा सा दीया और हजारों साल का अंधकार मिट जाता है। अंधकार यह नहीं कहता कि मैं हजारों साल पुराना हूं इसलिए इस छोटे से दीये से कैसे मिटूंगा, नहीं मिटता। एक दिन का दीया है इससे मैं कैसे मिटूंगा, मैं हजारों साल पुराना हूं। नहीं, एक छोटा सा दीया, कितना ही पुराना अंधकार हो मिट जाता है। विचार का दीया जले इस देश के प्राणों में तो हजारों साल का अंधकार मिट सकता है।

मेरी बातों को इन तीन दिनों में इतने प्रेम और इतनी शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आपके विचार का दीया जलेगा। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सातवां प्रवचन

## उगती हुई जमीन

एक मित्र ने पूछा कि आप गांधी जी की अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं क्या? और यदि अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं गांधी की, तो क्या आपका विश्वास हिंसा में है?

पहली बात यह कि मेरा विश्वास हिंसा में तनिक भी नहीं है और दूसरी बात यह कि गांधी की अहिंसा में भी विश्वास नहीं करता हूं। गांधी की अहिंसा में भी बहुत अहिंसा नहीं मालूम देती, इसलिए गांधी की अहिंसा बहुत लचर, बहुत कमजोर है। गांधी की अहिंसा मुझे बहुत अधकचरी इसलिए लगती है क्योंकि पूर्ण अहिंसा में मेरी आस्था है। गांधी जी की अहिंसा के वास्तविक अंतराल में झांकने पर मुझे अचंभा सा होता है।

गांधी जी अफ्रीका में बोर युद्ध में स्वयंसेवक की तरह सम्मिलित हुए। बोर अपनी आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे और गांधी जी गोरों की आजादी की लड़ाई को दबाने के लिए, जो साम्राज्यशाही प्रयास कर रही थी उस साम्राज्यशाही की ओर से स्वयंसेवक की तरह भरती हुए। गांधी जी पहले महायुद्ध में अंग्रेजों के एजेंट की तरह भारत में लोगों को फौज में भरती करवाने का काम करते रहे। यह बहुत अचंभे की बात मालूम पड़ती है कि पहले महायुद्ध में गांधी ने लोगों को फौज में भरती होने और युद्ध में जूझने की प्रेरणा दी।

पंजाब के गांवों में मुसलमानों ने बगावत कर दी। मुसलमानों को दबाने के लिए अंग्रेजों ने गोरखों की फौज भेज दी थी। अंग्रेजों का न्याय था कि अगर हिंदू किसी गांव में विद्रोह करें तो मुसलमान की सेना की टुकड़ी भेजो और यदि मुसलमानों का गांव विद्रोह करे तो हिंदुओं की टुकड़ी वहां भेजो ताकि दोनों ही संप्रदायों को आग में झोंक कर, उससे हाथ सेंके जा सकें। गोरखों की टुकड़ी ने एक अदभुत ऐतिहासिक कार्य किया। गोरखों की टुकड़ी ने मुसलमान बस्ती पर, मुसलमान लोगों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। वे बंदूकों को जमीन पर टेक कर खड़े हो गए और उन्होंने कहा, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चलाएंगे। यह बड़ी अदभुत और बड़ी अहिंसात्मक घटना थी। उन टुकड़ियों ने अपनी जान बाजी पर लगा कर गोली चलाने से इनकार कर दिया। उन्होंने जाकर अपनी बंदूकें छावनी में जमा करवा दीं और जाकर समर्पण कर दिया और कहा कि हम गोली चलाने से इनकार करते हैं, चाहे जो भी सजा दी जाए, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चला सकते।

हम तो सोच सकते थे कि गांधी जी इन सैनिकों की प्रशंसा करेंगे। लेकिन गांधी जी ने इन सैनिकों की निंदा की। इंग्लैंड में जब गांधी जी से पूछा गया कि आश्चर्य की बात है कि आपने अहिंसक होते हुए इन सैनिकों की निंदा की, जिन्होंने बंदूकें चलाने से इनकार किया। तो गांधी जी ने क्या कहा, आपको पता है?

गांधी जी ने कहाः मैं सैनिकों को आज्ञाहीनता नहीं सिखा सकता हूं क्योंकि कल जब देश आजाद हो जाएगा और सत्ता हमारे हाथ में आ जाएगी तो इन्हीं सैनिकों के सहारे हमें शासन करना है।

यह किस प्रकार की अहिंसा है? यह थोड़ा विचारना है।

वे सैनिक भी दंग रह गए होंगे। अगर गांधी जी ने इन लोगों की प्रशंसा की होती तो हिंदुस्तान भर का सैनिक यह हिम्मत जुटा सकता था, वह हर हिंदुस्तानी चाहे वह किसी भी संप्रदाय का हो, पर गोली चलाने के लिए इनकार कर देता। लेकिन गांधी जी ने इन सैनिकों की निंदा की, आज्ञाहीनता के आधार पर और कहा कि अहिंसा को तोड़ना उचित नहीं है। सैनिकों का कर्तव्य है कि वे आज्ञा मानें। क्यों? क्योंकि कल जब गांधी जी के

लोगों के हाथ में देश जाएगा तो इन्हीं सैनिकों के सहारे शासन चलाना है। अब हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बाईस वर्ष की आजादी के इतिहास में, गांधी जी के पीछे चलने वाले लोगों के हाथ में जब से सत्ता आई है, शासन का दमन बढ़ता ही गया है, गोलियों और संगीनों के आधार पर शासन चला जा रहा है। ये गोलियां सत्ता के चलाए जाने के काम में लाई जा रही हैं। अब सत्ता गांधीवादियों के हाथ में है। अंग्रेजों ने भी कभी हिंदुस्तान में इतनी गोलियां नहीं चलाई थीं जितनी कि जिसको हम अपना शासन कहते हैं, उन्होंने चलाईं और जिस क्रूरता से गोली चलाई और जितने लोगों की हत्या की!

यह बहुत आश्चर्य की बात है। लेकिन यह भी साथ में समझ लेना जरूरी है कि गांधी जी अहिंसात्मक रूप से जो आंदोलन चलाते थे वह आंदोलन ही दबाव डालने के लिए था और मेरी दृष्टि में जहां दबाव है वहां हिंसा है। चाहे दबाव कहीं से डाला जाए, चाहे आपके घर के सामने आकर अनशन करके बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानोगे। यह दबाव ही हिंसा है। दबाव मात्र हिंसा है। दबाव डालने के ढंग अहिंसात्मक हो सकते हैं लेकिन दबाव खुद हिंसा है। अगर मैं अपनी बात मनवाने के लिए अपनी जान दांव पर लगा दूं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा तो जिसको हम सत्याग्रह कहते हैं और अनशन कहते हैं वह क्या है? वह आत्महत्या की धमकी है और वह धमकी हिंसा है। चाहे दूसरे को मारने की धमकी हो, चाहे अपने को मारने की धमकी हो। धमकी सदा हिंसात्मक है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह धमकी अपने लिए है या दूसरे के लिए है। कई बार यह भी हो सकता है कि मैं आपको मारने के लिए धमकी दूं तो आप मेरा मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन जब मैं अपने को मारने की धमकी देता हूं तो आपको निहत्था कर देता हूं, आप मुकाबला नहीं कर सकते हैं। यह हिंसा ज्यादा सूक्ष्म है और बहुत छिपी हुई है। इसका पता चलाना बहुत मुश्किल है।

अगर अहिंसात्मक सत्याग्रह किसी को करना हो तो न तो खबर करनी चाहिए, न जनता को पता चलना चाहिए, न जिस आदमी के हृदय-परिवर्तन के लिए कोशिश कर रहा हूं उसको खबर करनी चाहिए। मौन, एकांत में मैं अपने को शांत करूं और ध्यानस्थ हो जाऊं, समाधि-मग्न हो जाऊं, अपने को पवित्र करूं, प्रार्थना करूं और हृदय में वे विचार भी हों जो दूसरे व्यक्ति को परिवर्तित करते रहें तब तो यह अहिंसा हुई। लेकिन यदि अखबारों में प्रचार हो, भीड़-भाड़ को पता चल जाए, मेरी जान को बचाने वाले लोग खुश हो जाएं और जिस आदमी को बदलना चाहता हूं उसके दरवाजे पर बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा। यह अहिंसा नहीं है? यह सब हिंसा है, यह हिंसा का ही रूपांतरण है, ये हिंसा के ही श्रेष्ठतम छद्म रूप हैं।

मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना है, एक युवक एक युवती से प्रेम करता था और उसके प्रेम में दीवाना था, लेकिन इतना कमजोर था कि हिम्मत भी नहीं जुटा पाता था कि विवाह करके उस लड़की को घर ले आए, क्योंकि लड़की का बाप राजी नहीं था। फिर किसी समझदार ज्ञानी ने उसे सलाह दी कि अहिंसात्मक सत्याग्रह क्यों नहीं करता? कमजोर, कायर, वह डरता था। उसको यह बात जंच गई। कायरों को अहिंसा की बात एकदम जंच जाती है--इसलिए नहीं कि अहिंसा ठीक है, बल्कि कायर इतने कमजोर होते हैं कि कुछ और नहीं कर सकते।

गांधी जी की अहिंसा का जो प्रभाव इस देश पर पड़ा वह इसलिए नहीं कि वे लोगों को अहिंसा ठीक मालूम पड़ी। लोग हजारों साल के कायर हैं और कायरों को यह बात समझ में पड़ गई है कि ठीक है, इसमें मरने-मारने का डर नहीं है, हम आगे जा सकते हैं। लेकिन तिलक गांधी जी की अहिंसा से प्रभावित नहीं हो सके, सुभाष भी प्रभावित नहीं हो सके। भगतसिंह फांसी पर लटक गया और हिंदुस्तान में एक पत्थर नहीं फेंका गया उसके विरोध में! आखिर क्यों? उसका कुल कारण यह था कि हिंदुस्तान जन्मजात कायरता में पोषित हुआ

है। भगतसिंह फांसी पर लटक रहे थे, गांधी जी वाइसराय से समझौता कर रहे थे और उस समझौते में हिंदुस्तान के लोगों को आशा थी कि शायद भगतसिंह बचा लिया जाएगा, लेकिन गांधी जी ने एक शर्त रखी कि मेरे साथ जो समझौता हो रहा है उस समझौते के आधार पर सारे कैदी छोड़ दिए जाएंगे लेकिन सिर्फ वे ही कैदी जो अहिंसात्मक ढंग के कैदी होंगे। उसमें भगतसिंह नहीं बच सके, क्योंकि उसमें एक शर्त जुड़ी हुई थी कि अहिंसात्मक कैदी ही सिर्फ छोड़े जाएंगे। भगतसिंह को फांसी लग गई। जिस दिन हिंदुस्तान में भगतसिंह को फांसी हुई उस दिन हिंदुस्तान की जवानी को भी फांसी लग गई। उसी दिन हिंदुस्तान को इतना बड़ा धक्का लगा जिसका कोई हिसाब नहीं। गांधी की भीख के साथ हिंदुस्तान का बुढ़ापा जीता, भगतसिंह की मौत के साथ हिंदुस्तान की जवानी मरी। क्या भारतीय युवा पीढ़ी ने कभी इस पर सोचा है?

उस युवक को किसी ने सलाह दी, तू पागल है, तेरे से कुछ और नहीं बन सकेगा, अहिंसात्मक सत्याग्रह कर दे। वह जाकर उस लड़की के घर के सामने बिस्तर लगा कर बैठ गया और कहा कि मैं भूखा मर जाऊंगा, आमरण अनशन करता हूं, मेरे साथ विवाह करो। घर के लोग बहुत घबड़ाए, क्योंकि वह और कुछ धमकी देता तो पुलिस को खबर करते लेकिन उसने अहिंसात्मक आंदोलन चलाया था और गांव के लड़के भी उसका चक्कर लगाने लगे। वह अहिंसात्मक आंदोलन है, कोई साधारण आंदोलन नहीं है और प्रेम में भी अहिंसात्मक आंदोलन होना ही चाहिए।

घर के लोग बहुत घबड़ाए। फिर बाप को किसी ने सलाह दी कि गांव में जाओ, किसी रचनात्मक, किसी सर्वोदयी, किसी समझदार से सलाह लो कि अनशन में क्या किया जा सकता है। बाप गए, हर गांव में ऐसे लोग हैं जिनके पास और कोई काम नहीं है। वे रचनात्मक काम घर बैठे करते हैं। बाप ने जाकर पूछा, हम क्या करें बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। अगर वह छुरी लेकर धमकी देता तो हमारे पास इंतजाम था, हमारे पास बंदूक है, लेकिन वह मरने की धमकी देता है, अहिंसा से। उस आदमी ने कहा, घबड़ाओ मत, रात मैं आऊंगा, वह भाग जाएगा। वह रात को एक बूढ़ी वेश्या को पकड़ लाया, उस वेश्या ने जाकर उस लड़के के सामने बिस्तर लगा दिया और कहा कि आमरण अनशन करती हूं, तुमसे विवाह करना चाहती हूं। वह रात बिस्तर लेकर लड़का भाग गया।

गांधी जी ने अहिंसात्मक आंदोलन के नाम पर, अनशन के नाम पर जो प्रक्रिया चलाई थी, भारत उस प्रक्रिया से बर्बाद हो रहा है। हर तरह की नासमझी इस आंदोलन के पीछे चल रही है। किसी को आंध्र अलग करना हो, तो अनशन कर दो, कुछ भी करना हो, आप दबाव डाल सकते हैं और भारत को टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा है, भारत को नष्ट किया जा रहा है। वह एक दबाव मिल गया है आदमी को दबाने का। मर जाएंगे, अनशन कर देंगे, यह सिर्फ हिंसात्मक रूप है, अहिंसा नहीं है। जब तक किसी आदमी को जोर जबरदस्ती से बदलना चाहता हूं चाहे वह जोर जबरदस्ती किसी भी तरह की हो, उसका रूप कुछ भी हो, तब तक मैं हिंसात्मक हूं। मैं गांधी जी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं--उसका यह मतलब न लें कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं। अखबार यही छपाते हैं कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं।

मैं गांधी जी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं क्योंकि मैं अहिंसा के पक्ष में हूं। लेकिन उसको मैं अहिंसा नहीं मानता इसलिए मैं पक्ष में नहीं हूं। गांधी जी की अहिंसा चाहे गांधी जी को पता हो या न हो, हिंसा करेगी। यह हिंसा बड़ी सूक्ष्म है। एक आदमी को मार डालना भी हिंसा है और एक आदमी को अपनी इच्छा के अनुकूल ढालना भी हिंसा है। जब एक गुरु दस-पच्चीस शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करके उनको ढालने की कोशिश करता है अपने जैसा बनाने की, जैसे कपड़े मैं पहनता हूं वैसे कपड़े पहनो, जब मैं उठता हूं ब्रह्ममुहूर्त में तब तुम उठो, जो

मैं करता हूं वही तुम करो--तो हमें पता नहीं है, यह चित्त बड़ी सूक्ष्म हिंसा की बात सोच रहा है। दूसरे आदमी को बदलने की चेष्टा में, दूसरे आदमी को अपने जैसा बनाने की चेष्टा में भी आदमी हिंसा करता है। जब एक बाप अपने बेटे को अपने जैसा बनाने की कोशिश करता है तो बाप को पता है, यह हिंसा है। जब बाप बेटे से कहता है कि तू मेरे जैसा बनना, तो दो बातें काम कर रही हैं। एक तो बाप का अहंकार और दूसरा कि मेरे बेटे को मैं अपने जैसा बना कर छोड़ूंगा। यह प्रेम नहीं है। सारे गुरु लोगों को अपने जैसा बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उस प्रयत्न में व्यक्ति हिंसा करता है। जो आदमी अहिंसक है वह कहता है कि तुम अपने ही जैसा बन जाओ, बस यही काफी है, मेरे जैसे बनने की कोई जरूरत नहीं है।

कोई अहिंसात्मक व्यक्ति किसी को अपना अनुयायी नहीं बना सकता है, क्योंकि अनुयायी बनाना सूक्ष्म हिंसा है। कोई अहिंसक व्यक्ति किसी को अपना शिष्य नहीं बना सकता है, क्योंकि गुरु बनने जैसी हिंसा खोजनी दुनिया में बहुत मुश्किल है। लेकिन ये सूक्ष्म हिंसाएं हैं जो दिखाई नहीं देतीं और यह भी ध्यान रहे कि जब कोई आदमी दूसरे के साथ हिंसा करना बंद कर देता है तो हिंसा की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती, हिंसा की प्रवृत्ति स्वयं पर लौट आती है। अपने साथ हिंसा करना शुरू कर देता है। जिसको हम तपश्चर्या कहते हैं, तप कहते हैं, त्याग कहते हैं, सौ में निन्यानबे मौके पर अपने पर लौटी हुई हिंसा के ये दूसरे नाम हैं और कुछ भी नहीं।

एक आदमी दूसरे को सताना चाहता है। अंग्रेजी में एक शब्द सैडिस्ट है, जो आदमी दूसरे को सताना चाहता है उसको वे कहते हैं सैडिस्ट, उसे वे कहते हैं परपीड़नवादी। एक दूसरा शब्द है मैसोचिस्ट, जो आदमी अपने को सताने में लग जाता है उसको कहा जाता है मैसोचिस्ट, आत्मपीड़नवादी। हम दूसरों को सताने वाले को तो हिंसक कहते हैं, लेकिन खुद को सताने वाले को हिंसक नहीं कहते हैं। और मजा यह है कि दूसरे को सताने में तो दुनिया बाधा डाल सकती है पर स्वयं को सताने में कोई भी बाधा नहीं डाल सकता है। स्वयं को सताने में प्रत्येक आदमी मुक्त है। यह जो तपश्चर्या करने वाले लोग हैं, ये कांटों में खड़े लोग हैं, धूप में खड़े लोग हैं, भूख और उपवास करने वाले लोग हैं--इनकी पूरी कथा आप समझें। इनके आविष्कारों का पता लगाएं कि कैसे-कैसे अपने को सताने के, आत्मपीड़ा के उपाय निकालते हैं। कैसे उनको साधु कहें जो अपनी जननेंद्रिय काट लेते रहे? ऐसे साधु भी रहे हैं जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं और अंधे हो गए, और ऐसे साधु भी रहे हैं जो पैर के जूते में कीलें लगाते रहे ताकि पैर में घाव बनते रहें। कमर में पट्टे बांधते रहे और कीलें लगाते रहे ताकि कमर में घाव बनते रहें। शरीर को सब तरह से कोड़े मारने वाले साधुओं की बड़ी जमात रही है। वे कोड़े मारने वाले साधु सुबह से उठ कर कोड़े मार रहे हैं और जो जितने ज्यादा कोड़े मारेगा उतना बड़ा साधु हो जाएगा।

ये सारे के सारे लोग हिंसक लोग हैं, ये अहिंसक लोग नहीं हैं, केवल अंतर इतना है कि इनकी हिंसा दूसरे पर न जाकर स्वयं पर लौट आई है। उसने वापस लौटना प्रारंभ कर दिया है अहिंसा बहुत अदभुत बात है, लेकिन हिंसा से बचना बहुत मुश्किल है। हिंसा को बदल लेना बहुत आसान है, हिंसा नये रूपों में खड़ी हो जाती है। दूसरों को बदलने की चिंता, दूसरों को बदलने का दबाव, दूसरों को अपने जैसा बनाने की सारी कोशिश हिंसा है और दुनिया के सारे गुरुओं को दुनिया के इन सारे लोगों को जो अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी करते हैं, जमातें खड़ी करते हैं, और अपनी शक्ल के आदमी पैदा करते हैं; उन सबको मैं एक कतार में हिंसक मानता हूं। अहिंसक व्यक्ति दूसरी बात है।

अहिंसक का मतलब है ऐसा व्यक्ति, जो किसी पर भी किसी तरह का दबाव डालने की कामना से मुक्त हो गया है, क्योंकि दबाव डाल कर हम दूसरे से श्रेष्ठ हो जाते हैं और आपने कभी खयाल किया है, छुरा बता कर आप दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होते लेकिन अनशन करके आप दूसरों से श्रेष्ठ हो जाते हैं।

नीत्शे ने एक बात कही है मजाक में जीसस के खिलाफ। कहा है कि जीसस ने कहा है कि कोई गाल पर तुम्हारे चांटा मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। नीत्शे ने कहा है, इससे ज्यादा अपमान दूसरे आदमी का और क्या हो सकता है? तुमने उसे आदमी ही नहीं माना, अपने बराबर भी नहीं माना। किसी ने चांटा मारा तुम्हारे गाल पर, तुमने दूसरा गाल कर दिया। उस दूसरे आदमी से देवता हो गया, वह जमीन का कीड़ा हो गया। नीत्शे ने मजाक में कहा है कि दूसरे आदमी का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है! और यह हो सकता है कि कोई आदमी प्रेम के कारण दूसरा गाल न करे, सिर्फ इसलिए दूसरा गाल कर दे कि देख लो, तुम हो जमीन के कीड़े, हम हैं फरिश्ते, हम हैं देवता।

दूसरे से ऊंचा होने की तरकीब इतनी बारीक है कि एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है सिंहासन पर बैठ कर और एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है त्याग करके। लेकिन दूसरे से ऊंचा होने की कामना अगर भीतर शेष है तो वह कामना हिंसा में ले जाती है, अहिंसा में नहीं। जब भी हम दूसरे से ऊंचा होने की कामना में संलग्न हो जाते हैं, चाहे हमें ज्ञात हो और ज्ञात न हो, चाहे हमें कांशसली पता हो और चाहे अनकांशस माइंड काम कर रहा हो, चाहे अचेतन मन काम कर रहा हो और हमें पता न हो, लेकिन दूसरे को बदलने की कोशिश में स्वयं ही श्रेष्ठता भीतर अनुभव होनी शुरू हो जाती है।

मैं इस सबके बुनियादी रूप से खिलाफ हूं। मैं मानता हूं कि व्यक्ति प्रार्थना कर सकता है, ध्यान कर सकता है, व्यक्ति अंतस को शुद्ध कर सकता है और उसके अंतस की शुद्धि के कारण उसके चारों तरफ के दबावों में परिवर्तन शुरू हो जाएगा। लेकिन वह परिवर्तन उस व्यक्ति की चेष्टा नहीं है, उस व्यक्ति का प्रयास नहीं है। महावीर और बुद्ध भी अहिंसक थे। गांधी की अहिंसा से मैं उनकी अहिंसा को श्रेष्ठतर और शुद्धतर मानता हूं। गांधी के और बुद्ध के बीच हम कुछ बातें और करें तो पता चलेगा। महावीर और बुद्ध किसी को बदलने के लिए कोई अहिंसक आंदोलन नहीं कर रहे हैं, लेकिन भीतर आत्मा प्रविष्ट हुई है, उसकी किरणें आएंगी और बिना प्रयास के चारों तरफ बदलाहट लानी शुरू करती हैं। अहिंसक आदमी ने दुनिया में पहले भी अपनी हिंसा की किरणें दी हैं लेकिन वे किरणें प्यार करके दी गई हैं और चेष्टा करके नहीं दी गई हैं। वे किरणें उपलब्ध होती हैं। सूरज निकलता है और अंधेरा विलीन हो जाता है। सूरज कोई घोषणा नहीं करता कि अंधेरे को दूर करने मैं आ गया हूं, अंधेरा सावधान!

अहिंसा कुछ करती नहीं है, अहिंसा से परिवर्तन आता है। अहिंसक परिवर्तन चाहता नहीं। गांधी की अहिंसा में परिवर्तन की चाह बहुत स्पष्ट है इसलिए मैं उसे अहिंसा नहीं मानता हूं। गांधी की अहिंसा में मेरी कोई श्रद्धा, कोई विश्वास नहीं है क्योंकि वह अहिंसा ही मुझे दिखाई नहीं पड़ती। मैं कोई हिंसा का पक्षपाती नहीं हूं, मुझसे ज्यादा हिंसा का दुश्मन खोजना कठिन है, क्योंकि अहिंसा में ही मुझे जहां हिंसा दिखाई पड़ती हो उस हिंसा से मैं राजी नहीं हो सकता हूं।

एक दूसरे मित्र ने इसी संबंध में पूछा है कि आप कहते हैं कि क्रांति अहिंसक ही हो सकती है, लेकिन एक मित्र ने पूछा है कि क्रांति तो सदा हिंसक होती है, अहिंसक क्रांति तो कभी नहीं होती।

जिस क्रांति में हिंसा है उसे मैं क्रांति नहीं कहता। वह क्रांति नहीं है, सिर्फ उपद्रव है। उपद्रव और क्रांति में बहुत फर्क है। जिसके साथ हिंसा जुड़ गई वह क्रांति खतम हो गई। हिंसा से क्रांति खत्म है क्योंकि क्रांति का अंतिम अर्थ क्या है? क्रांति का अंतिम अर्थ हैः आत्मिक-परिवर्तन, हार्दिक-परिवर्तन, लोगों की चेतना का बदल

जाना और जब हम लोगों की चेतना को नहीं बदल पाते हैं, जब लोगों की चेतना नहीं बदलती है तब हम हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी हिंसा पर उतारू हो जाता है वह लोगों की चेतना बदल सकेगा? इस संबंध में एक करोड़ लोगों की कम से कम हत्या की गई। करोड़ लोगों की हत्या करके भी क्या किसी व्यक्ति की चेतना को बदला जा सका, किसी को रूपांतरित किया जा सका? हिटलर ने भी करीब अस्सी लाख लोगों की हत्या की, लेकिन क्या रूपांतरण हो गया? कौन सी क्रांति हो गई? सामान बांट दिया गया, संपत्ति व्यक्तिगत न रही, जो एक करोड़ लोगों को बिना मारे भी हो सकता था और एक करोड़ लोगों को मारने के कारण जो परिवर्तन हुआ वह इतना तनावपूर्ण है कि जब तक हिंसा ऊपर छाती पर सवार है तभी तक उसको कायम रखा जा सकता है, अन्यथा परिवर्तन विलीन होना शुरू हो जाएगा।

स्टैलिन के जाने के बाद रूस के कदम विकास की तरफ निश्चित रूप से उठे। स्टैलिन के हटते ही जैसे हिंसा कम हुई है। रूस के कदम विकास की तरफ उठे। रूस में जब से व्यक्तिगत संपत्ति का पुनरागमन हुआ, रूस में कारें व्यक्तिगत रूप से रखी जा सकती हैं, जिसकी वहां कल तक कल्पना नहीं थी। मकान भी व्यक्तिगत हो सकता है, तनख्वाहों में भी फर्क पैदा हुए--जैसे ही हिंसा से लाई हुई क्रांति विलीन हो जाएगी। हिंसा से लाई क्रांति जबरदस्ती है और जबरदस्ती कहीं क्रांति लाई जा सकती है? जबरदस्ती थोड़ी-बहुत देर किसी को रोका जा सकता है।

जिस चीज को जबरदस्ती से रोकना पड़ता है उसके खिलाफ लोगों का विद्रोह होना शुरू हो जाता है। अच्छे काम भी अगर जबरदस्ती करवाए जाएं। आप यहां बैठे हैं, आप अपनी मौज से यहां आए हैं और आपको अभी खबर की जाए कि आप दो घंटे तक बाहर नहीं निकल सकते हैं, बस यहां बैठना असंभव हो जाएगा। आदमी के साथ आत्मा है, आदमी की आत्मा दबाव को इनकार करती है और करनी चाहिए चाहे वह दबाव अच्छे के लिए ही क्यों न डाला गया हो। दबाव, दबाव है। आदमी के अच्छे के लिए भी दबाव डालने पर आदमी विद्रोह करता है। आपको पता है, अच्छे मां-बाप अपने बेटों को बिगाड़ने का बुनियादी कारण बनते हैं। पता है आपको क्यों? अच्छे मां-बाप जबरदस्ती बच्चे को अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं। दुनिया में कभी किसी को जबरदस्ती अच्छा नहीं बनाया गया है और जो मां-बाप अपने बच्चे को जबरदस्ती अच्छा बनाते हैं वे मां-बाप बच्चों के दुश्मन हैं और अपने बच्चे को बिगाड़ने का काम करते हैं; क्योंकि बच्चे विद्रोह करना शुरू करते हैं। बच्चे के पास जो आत्मा है वह इनकार करना चाहती है जबरदस्ती को और अगर अच्छे के लिए जबरदस्ती की गई तो फिर अच्छे को इनकार करना चाहते हैं क्योंकि जबरदस्ती को इनकार करने से हिंसा शुरू हो जाएगी। क्योंकि कोई भी बात जबरदस्ती से नहीं लाई जा सकती और जबरदस्ती से लाने का मतलब यह है कि लाने वाला बहुत कमजोर है, लोगों को समझा नहीं पाता है, लोगों के हृदय को, मस्तिष्क को राजी नहीं कर पाते हैं। और जब आप लोगों को राजी नहीं कर पाते हैं उनके अच्छे के लिए भी तो फिर आपकी वह अच्छाई बड़ी संतुलित है।

दुनिया में कोई क्रांति हिंसा से नहीं हो सकती है। हां, क्रांति के नाम से हिंसा पलती रही है, लेकिन अब तक कौन सी क्रांति को गई है दुनिया में? ... नहीं हिंसा से क्रांति हो ही नहीं सकती है। क्योंकि क्रांति जबरदस्ती नहीं हो सकती है। क्रांति होगी तो हृदय से होगी। हिंसा तो अति जटिल है और क्रांति अति सरल।

मैं उस क्रांति के पक्ष में हूं जिस क्रांति में दमन नहीं होगा, जिस क्रांति में छाती पर दबाव नहीं होगा, जो क्रांति भीतर से फूल की तरह से खिलेगी और व्यक्तित्व को बदल देगी। मनुष्य में उस क्रांति की प्रतिष्ठा चाहिए है। फ्रांस की क्रांति असफल हो गई क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। रूस की क्रांति सफल नहीं हो सकी क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। माओ जो क्रांति करवा रहे हैं चीन में वह सफल नहीं होगी, क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी

है। गांधी की क्रांति जो कि बड़ी अहिंसात्मक दिखाई पड़ती थी वह भी असफल हो गई क्योंकि बुनियाद में उसके हिंसा थी। हम देख रहे हैं अपने मुल्क में, गांधी की क्रांति, जो कि एक तरह से लाख दर्जे बेहतर क्रांति है, माओ से, जिसका कि अहिंसा की तरफ रुख है, झुकाव है, यद्यपि जो अहिंसात्मक नहीं है बुनियाद में, वह भी असफल हो गई है। बाईस साल की आजादी के बाद की दुखद कथा बताती है कि गांधी की क्रांति असफल हो गई है।

गांधी की क्रांति असफल हो जाती है, क्योंकि मेरा मानना है कि दबाव है, बदलने की तीव्र आकांक्षा है। तो फिर लेनिन और स्टैलिन और माओ की क्रांति कैसे सफल हो सकती है? दुनिया प्रतीक्षा करती थी एक क्रांति की जो क्रांति चेतना की और अहिंसा की क्रांति होती, लेकिन क्रांति की तैयारी में सबसे बड़ी बाधा क्या है? सबसे बड़ी बाधा हिंसा में आस्था है। जिन लोगों की हिंसा में आस्था है वे लोग दुनिया के चित्त को बदलने के अहिंसात्मक विधान में कूदते भी नहीं, विचार भी नहीं करते, चिंता भी नहीं करते। उस दिशा में कोई काम नहीं करते। हमें यह खयाल ही नहीं है। एक गांव में एक हजार लोग, पचास लाख लोगों में से एक हजार लोग भी अगर अहिंसात्मक हों तो पचास लाख लोगों के चित्त में बुनियादी रूपांतरण शुरू हो जाएगा, लेकिन हमें इसका कुछ पता नहीं।

अभी रूस में एक वैज्ञानिक फ्यादोर ने एक प्रयोग किया है। फ्यादोर रूस का एक मनोवैज्ञानिक है और चूंकि प्रयोग रूस में हुआ है इसलिए महत्वपूर्ण है। हिंदुस्तान में योगी तो बहुत दिन से यह कहता है, लेकिन कोई सुनता नहीं है। हिंदुस्तान का योगी यह कहता है कि विचार इतनी बड़ी शक्ति है कि अगर कोई विचार किसी व्यक्ति के हृदय में पूर्ण संकल्प से स्थापित हो जाए तो चारों तरफ उस विचार की तरेंगे फैलनी शुरू हो जाती हैं और हजारों लोगों को अहिंसा में रूपांतरित कर देती हैं। एक बुद्ध का पैदा होना, एक महावीर का खड़ा होना इतनी बड़ी क्रांति है जिसका कोई हिसाब नहीं, जिसका कि हमें कोई पता नहीं चलता। क्योंकि लाखों लोगों के प्राण-कमल उनकी किरणों से खिलने शुरू हो जाते हैं।

फ्योदोर ने एक प्रयोग किया रूस में विचार-संक्रमण का, टेलीपैथी का, विचार को दूर भेजने का। उसने मास्को में बैठ कर एक हजार मील दूर विचार का संप्रेषण किया। मास्को में बैठा है वह अपनी लेबोरेटरी में और एक हजार मील दूर किसी गांव के बगीचे में, पब्लिक पार्क में दस नंबर की बेंच पर एक आदमी बैठा है, उसके पीछे एक भाई छिप कर बैठे हैं। उन्होंने उठा कर फोन किया कि दस नंबर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है, आप आपने विचार से प्रभावित करके उसे सुला दें। फ्योदोर एक हजार मील दूर से कामना करता है अपने मन में कि वह जो आदमी दस नंबर की बेंच पर बैठा है वह सो जाए, सो जाए, सो जाए। यहां वह पूर्ण संकल्प से, पूर्ण एकाग्र चित्त से कामना करता है। वह आदमी तीन ही मिनट के भीतर वहां बेंच पर आंख बंद करके सो जाता है। लेकिन हो सकता है, यह संयोग की बात हो। दोपहर तक का थका-मांदा आदमी ऐसे ही सो सकता है। झाड़ियों में छिपे उसके मित्र ने फौरन फोन करके कहा कि यह सो गया है जरूर। तुमने कहा, तीन मिनट में सो जाओ तो तीन मिनट में सो गया। लेकिन यह संयोग भी हो सकता है। अब उसे ठीक पांच मिनट के भीतर उठा दो तो हम समझेंगे।

फ्योदोर फिर सुझाव भेजता है कि उठो, उठो, उठो, जागो, जाग जाओ, ठीक पांच मिनट में जाग जाओ। वह आदमी पांच मिनट में आंख खोल कर बैठ जाता है। मित्र उसके पास जाकर पूछते हैं कि आपको कुछ अजीब सा तो नहीं लगा? वह आदमी कहता है, अजीब सा से मतलब? मैं जब आया तो कुछ विश्राम करने लगा तो जैसे मेरे पूरे प्राण कह रहे हैं कि सो जाओ। मैं रात अच्छी तरह सोया हूं, थका-मांदा नहीं हूं। पूरा व्यक्तित्व कहता है

कि सो जाओ। फिर मैं सो गया। लेकिन अभी क्षण भर पहले दूर से एक आवाज आई कि उठो, एकदम जाग जाओ। मैं बहुत हैरान हुआ कि यह क्या हुआ! तो, एक हजार मील दूर भी विचार संक्रमित हो सकता है।

अभी अमरीका की एक प्रयोगशाला में एक और अदभुत प्रयोग हुआ जो मैं आपसे कहना चाहूंगा। वह प्रयोग भी बहुत बहुमूल्य है आने वाले भविष्य में। अंतरिक्ष में किए जाने वाले प्रयोग भी इसके मुकाबले कम मूल्य के सिद्ध होंगे। एटम और हाइड्रोजन के प्रयोग भी कम मूल्य के सिद्ध होंगे। वह प्रयोग बहुत अदभुत है। एक प्रयोगशाला में उन्होंने विचार का चित्र पहली बार लिया था। विचार का चित्र, जो विचार आपके भीतर चलता है उस विचार का, आपका नहीं। एक आदमी को बहुत ठीक से कैमरे के सामने बिठाया गया। बहुत ही संवेदनशील फिल्म लगाई गई है और उस आदमी से कहा गया है कि एक विचार पर सारे चित्त को एकाग्र कर सोचता रह, बस एक ही चित्र पर सोचता रह और उस आदमी ने एक चित्र पर विचार किया, वह आदमी एक छोटे से चित्र पर अंदर विचार करता रहा और उस चित्र को फोटो की फिल्म के भीतर पकड़ लिया। इसका क्या मतलब? इसका मतलब है कि विचार में जो चित्र था भीतर, उसका संप्रेषण, उसकी किरणें, उसकी तरंगें बाहर फिंक रही हैं जो कि फोटो की फिल्म पकड़ सकती थी।

अहिंसात्मक क्रांति का क्या अर्थ है? अहिंसात्मक क्रांति का अर्थ हैः अहिंसात्मक लोग।

थोड़े से भी लोग अहिंसात्मक हों तो उनके व्यक्तित्व से अहिंसा की, प्रेम की, भीतरी परिवर्तन की जो किरण पहुंचेगी वे लाखों के जीवन में क्रांति ले आएंगी, इसका हमें पता भी नहीं होगा। मेरी मान्यता है कि मनुष्य-जाति अहिंसात्मक क्रांति की प्रतीक्षा कर रही है और यह प्रतीक्षा जारी रहेगी जब तक अहिंसात्मक क्रांति नहीं हो जाती है। हम कोई भी हिंसात्मक क्रांति करें, उससे कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। जैसे कोई आदमी मुर्दे को मरघट ले जाते हैं। मुर्दे को मरघट ले जाते वक्त अरथी को कंधे पर लेते हैं। रास्ते में एक कंधा थक जाता है तो अरथी उठा कर दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। बस इसी तरह क्रांति में भी फर्क पड़ता है। एक कंधा दुखने लगता है, दूसरे कंधे पर बोझ रख लिया। थोड़ी देर राहत मिलती है। फिर बोझ शुरू हो जाता है। दूसरे कंधे पर बोझ शुरू हो जाता है। अब तक कितनी क्रांतियां हुई हैं, वह अब तक बोझ बदलें हैं, बोझ मिटाया नहीं, आदमी के समाज को रूपांतरित नहीं किया, आदमी के समाज को पुराने गठन में नया ढंग दे दिया है। फिर जिंदगी बड़ी गड़बड़ हो गई, पुरानी जिंदगी आना शुरू हो जाती है। नये सपने देखती है।

रूस में क्रांति हुई, शायद सबसे महत्वपूर्ण क्रांति दुनिया की वही है। रूस की क्रांति ऐसी थी कि वर्ग मिटा दिए जाएंगे, क्लासेस नहीं रहेंगे। वर्ग मिटा दिए गए, निश्चित मिटा दिए गए। अमीर आज ऊंचे नहीं, गरीब आज नीचे नहीं, लेकिन नया वर्ग पैदा हो गया--वह कम्युनिस्ट आफिसर, कम्युनिस्ट पार्टी का आदमी और वह जो आदमी कम्युनिस्ट पार्टी का नहीं है, यों दो वर्ग पैदा हो गए। अधिकारी सत्ताधिकारी, और सत्तापूर्ण। कल था धनिक और निर्धन और आज है सत्ताधिकारी, सत्तापूर्‌ण, उसके बीच स्थापना हुई। वर्ग फिर नये खड़े हो गए। रूस में जो क्रांति हुई उस क्रांति से वर्ग मिटे नहीं, सिर्फ वर्ग बदल गए। पूंजीपति की जगह मैनेजर आ गया। व्यवस्थापकों की क्रांति थी, व्यवस्थापक बदल गए, जहां मालिक था वहां मैनेजर बैठ गया, सत्ताधिकारी बैठ गया; धनी की जगह। और ध्यान रहे, धनी के पास उतनी ताकत कभी नहीं थी जितनी सत्ताधिकारी के पास। धनी के हाथ में लोगों की गर्दन कभी उतनी नहीं थी जितनी कि आज कम्युनिस्ट पार्टी के पास रूस में है--उतनी बिरला के पास थोड़े ही है, न हो सकती है। सत्ता बदल गई, वर्ग बदल गए, नये वर्‌ग आ गए, क्रांति मर गई, क्रांति का कोई अर्थ न हुआ। फिर कंधा बदल गया।

दुनिया में अब तक क्रांति के नाम पर कंधे बदलते रहे हैं। क्या हम कंधे ही बदलते रहेंगे या सचमुच कोई क्रांति करेंगे? अगर क्रांति करनी है तो हिंसा पर से आस्था छोड़नी ही पड़ेगी, क्योंकि जो आदमी हिंसा करता है वह आदमी जब मालिक हो जाता है तब हिंसा जारी रखता है और उसकी जो हिंसा जारी रहती है और जिस आदमी ने हिंसा की है और उसके हाथ में हिंसा की ताकत है, उस आदमी से ज्यादा हम कभी आशा नहीं रख सकते। वह आदमी हिंसा को छोड़ देगा, हिंसा को बदल देगा? वह आदमी वही रहेगा। रूस में जिन लोगों के हाथ में ताकत आई वे लोग अच्छे थे। क्रांति के पहले सभी लोग अच्छे होते हैं, क्रांति के बाद जब ताकत हाथ में आती है, तब पता चलता है कि कौन आदमी अच्छा है, कौन आदमी बुरा है। संभावना इस बात की है कि स्टैलिन ने लेनिन को जहर देकर मारा और इस बात की संभावना है कि जितने लोग क्रांति के अग्रणी थे धीरे-धीरे करके एक-एक मारे गए। मैक्सिको में जाकर ट्राटस्की की हत्या की गई। जिन लोगों ने क्रांति की थी स्टैलिन ने चुन-चुन कर एक-एक को मारा, क्योंकि अब सत्ता का खिलवाड़ शुरू हो गया।

हिंदुस्तान में कितने अच्छे लोगों ने गांधी के साथ क्रांति की थी। कितने अच्छे और भले लोग मालूम पड़ते थे, एकदम सफेद, धुले हुए मालूम पड़ते थे। लेकिन जब सत्ता हाथ में आई तो पता चला कि वे लोग बदल गए, वे दूसरे आदमी साबित हुए, वे कपड़े ही सफेद थे, वे आदमी भीतर सफेद नहीं थे। क्या हो गया सत्ता के हाथ में आते ही? सत्ता के हाथ में आते ही भीतर का असली आदमी प्रकट होता है। जब तक हाथ में ताकत नहीं होती तब तक असली आदमी प्रकट नहीं होता। अगर आपके पास पैसे पहीं हैं तो आप फिजूल खर्च हैं, इसका कोई पता नहीं चलता। पैसा हो तो पता चलता है कि फिजूल खर्च हैं या नहीं। अगर आपके हाथ में छुरा हो मारने को तब पता चलता है कि आप हिंसक हैं या नहीं। जब हाथ में ताकत नहीं है तब तो सभी लोग अहिंसक होते हैं। अहिंसक का पता चलता है अवसर मिलने पर, हिंसा का अवसर मिलने पर। जिन लोगों के हाथ में इस मुल्क की ताकत गई, ताकत जाने के बाद ही पता चला कि उनके असली तत्व क्या थे। तो जिन लोगों के हाथ में ताकत जाएगी, अगर वे हिंसा के द्वारा ताकत को पहुंचे हैं तब तो उनकी तस्वीर पहले से ही हिंसा की है और बाद में उनकी क्या हालत होगी? अहिंसकों की हालत क्या हो जाती होगी?

नहीं, हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकती, सिर्फ बोझ बदल जाते हैं, सिर्फ शकल बदल जाती है, नाम बदल जाते हैं, समाज पुराना का पुराना ही जारी रहता है। पांच हजार वर्ष के लंबे प्रयोगों के बाद भी हमें दिखाई नहीं पड़ता कि हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकी। आगे भी नहीं हो सकेगी और अगर आदमी हिंसा से जाग जाए कि हिंसा से कुछ भी नहीं हो सकता, दबाव से कुछ भी नहीं हो सकता और आदमी की आत्मा प्रेम चाहती है और आदमी की आत्मा रूपांतरित होना चाहती है, लेकिन उन लोगों के द्वारा जो रूपांतरित करने के लिए उत्सुक, आतुर नहीं हैं, जिनका कोई आग्रह नहीं है, जो जीते हुए सत्य हैं, जो जीते हुए प्रेम हैं और उनके जीने के कारण दूसरे में फैलते हैं, उनसे रूपांतरण होता है।

ऐसे रूपांतरण की प्रतीक्षा मनुष्यता को है।

ऐसी क्रांति अहिंसात्मक ही हो सकती है। यह बहुत स्पष्ट रूप से मेरी बात समझ लेना जरूरी है। मैं हिंसा के बिल्कुल विरोध में हूं। हिंसा के कौन पक्ष में हो सकता है? कौन बुद्धिमान, कौन विचारशील व्यक्ति हिंसा के पक्ष में हो सकता है? हिंसा के पक्ष में होने का मतलब है आदमी में बुद्धि नहीं है। क्योंकि लाठी वे ही लोग उठाते हैं जिनके पास बुद्धि नहीं होती है। जिनके पास बुद्धि होती है उन्हें लाठी पर उतरने की जरूरत नहीं पड़ती। जो लोग हाथ की ताकत में और तलवार की ताकत में विश्वास करते हैं, वे मनुष्य से नीचे दर्जे के मनुष्य हैं, उनके भीतर पापी मौजूद है, पशु ही हिंसा में विश्वास करता है। आदमी हिंसा में कैसे विश्वास कर सकता है और

पशुओं के हाथ में बहुत बार सत्ता दी गई है और आदमी ने हर बार भोगा है। आगे भी पशुओं के हाथ में सत्ता नहीं जानी चाहिए, पाशविक हाथों में, हिंसात्मक हाथों में सत्ता नहीं जानी चाहिए। इसलिए आदमी जितना सजग हो, जितना अहिंसा के सार को समझे, जितना अहिंसा के रहस्य को समझे, उतना अच्छा है।

अहिंसा का सार है, एक शब्द में--प्रेम, शुद्ध प्रेम। अहिंसा शब्द बहुत गलत है, क्योंकि नकारात्मक है। उससे पता चलता है हिंसा का। वह शब्द अच्छा नहीं है। शब्द है वास्तविक प्रेम। क्योंकि प्रेम पाजिटिव है, प्रेम विधायक है। जब हम कहते हैं अहिंसा, तो उससे मतलब है हिंसा नहीं करेंगे। लेकिन हिंसा नहीं करना है इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि प्रेम करना है। हिंदुस्तान में धार्मिकों की एक लंबी कतार है। वह सब अहिंसा को मानते हैं। उनकी अहिंसा का मतलब है--पानी छान कर पीना, उनकी अहिंसा का मतलब है--रात खाना नहीं खाना है, उनकी अहिंसा का मतलब है--किसी को चोट नहीं पहुंचाना। लेकिन ऐसी अहिंसा बड़ी अहिंसा नहीं है जो कि सिर्फ दूसरे को दुख पहुंचाने से बचती है। असली अहिंसा वही है जो दूसरे को सुख पहुंचाना चाहती है। दूसरे को दुख नहीं पहुंचाना है। यह ठीक है, लेकिन यह काफी नहीं है। वह बहुत लचर, अधकचरी अहिंसा है। दूसरे को सुख पहुंचाना है और क्यों पहुंचाना है? दूसरे को सुख इसलिए कि मोक्ष जाना है, इसलिए कि स्वर्ग पाना है। जो आदमी दूसरे को इसलिए दुख नहीं दे पाता है क्योंकि स्वर्ग जाना है, मोक्ष जाना है, वह आदमी हद दर्जे का चालाक है, वह आदमी हद दर्जे का हिसाबी-किताबी है। उस आदमी को दूसरे से कोई मतलब नहीं है। वह दूसरे को, दूसरे की अहिंसा को सीढ़ियां बना रहा है अपने स्वर्ग जाने की।

मैंने सुना है, चीन के एक गांव में एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। एक कुआं था मेले के पास जिस पर पाट नहीं था और एक आदमी भूल से उस कुएं के भीतर गिर गया। वह आदमी जोर-जोर से चिल्लाने लगा। किंतु मेले में बहुत भीड़ थी, कौन उसकी सुनता। एक बौद्ध भिक्षु कुएं के पास पानी पीने को रुका। नीचे से आदमी चिल्लाया कि भिक्षु जी, मुझे बचाइए। उस भिक्षु ने कहाः पागल किस-किस को बचाया जा सकता है, सारा संसार कुएं में पड़ा है। जीवन ही दुख है। भगवान ने कहा है, जीवन दुख का मूल है। हम सभी डूब मरेंगे, हम किसको बचा सकते हैं। उस आदमी ने कहा, ज्ञान की बातें, पहले मुझे निकाल लें, फिर पीछे करना, क्योंकि ज्ञान की बातें कुएं में गिरे आदमी को अच्छी नहीं मालूम पड़तीं। कृपा करो, मुझे बाहर निकालो। भिक्षु ने कहाः पागल, कौन किसको निकाल सकता है। अपना ही अपना सम्हाल ले आदमी तो काफी है, क्योंकि भगवान ने कहा है, कोई किसी का सहारा नहीं है, अपने सहारे रहो। उसने कहा, वह मैं समझता हूं लेकिन अभी मैं अपना सहारा ढूंढ रहा हूं। तैरना नहीं जानता हूं। मुझे किसी तरह बाहर निकाल लो तो तुम्हारा शास्त्र भी सुनूंगा, तुम्हारा प्रवचन भी सुनूंगा। उस भिक्षु ने कहा, शायद तुम्हें पता नहीं कि भगवान ने शास्त्र में यह भी कहा है कि अगर मैं तुझे बचा लूं और कल तू हत्या कर दे, चोरी कर ले, तो मैं भी तेरे कर्म का भागी हो जाऊंगा। मैं अपने रास्ते पर, तू अपने रास्ते पर। भगवान तेरा भला करे।

वह भिक्षु चला गया। शास्त्रों को मानने वाले लोग खतरनाक होते हैं। उनका शास्त्र ही महत्वपूर्ण है, मरता हुआ आदमी ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है।

उसके पीछे ही कनफ्यूशियस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आकर रुका। उसने भी नीचे झांक कर देखा। वह आदमी चिल्लाया कि मुझे बचाओ, मैं मर रहा हूं। बस मेरी स्थिति है, सांसें टूटी जाती हैं, हिम्मत नहीं रखी जाती है। कनफ्यूशियस के शिष्य ने कहा, देख, तेरे गिरने से साबित हो गया कि कनफ्यूशियस ने जो लिखा है वह सही है। उसने लिखा है कि हर कुएं पर पाट होनी चाहिए और जिस कुएं पर पाट नहीं होगी और जिस

राज्य में कुएं पर पाट नहीं होती वह राज्य ठीक नहीं है। तू घबड़ा मत, हम आंदोलन करेंगे और कुएं पर पाट बनवा कर रहेंगे। उस आदमी ने कहा कि बनेगा, लेकिन मैं तो गया!

आंदोलन करने वाले को आदमी से कोई मतलब नहीं है। उन्हें आंदोलन से मतलब है। वे आंदोलन करेंगे। और वह जो आदमी डूब रहा है, वह गया। वह बहुत चिल्लाया लेकिन आंदोलनकारी किसी की सुनते हैं? वह जाकर मंच पर खड़ा हो गया और मेले में लोगों को समझाने लगा कि देखो, कनफ्यूशियस ने जो लिखा है ठीक लिखा है। सबूत? वह कुआं सबूत है। हर कुएं पर पाट होना चाहिए। जब तक कुएं पर पाट नहीं है तब तक राज्य सुराज्य नहीं है।

उसके पीछे ही एक ईसाई मिशनरी वहां आया। उसने भी झांक कर देखा। वह आदमी चिल्ला भी नहीं पाया कि उसने अपनी झोली से रस्सी निकाली और कुएं में डाली और कुएं के नीचे गया। उस आदमी को निकाल कर बाहर लाया। उस आदमी ने कहाः आप ही एक भले आदमी मालूम पड़ते हैं। लेकिन आश्चर्य कि आप झोली में रस्सी पहले से ही रखे हुए थे। उसने कहाः हम सब इंतजाम करके निकलते हैं क्योंकि सेवा ही हमारा कार्य है और हमें पहले से पता रहता है कि कोई न कोई तो कुएं में गिरेगा और जीसस ने कहा है कि अगर मोक्ष जाना है, अगर स्वर्ग का राज्य पाना है तो लोगों की सेवा करो। सेवा के बिना कोई मोक्ष नहीं जा सकता। हम मोक्ष की खोज कर रहे हैं। तुमने बड़ी कृपा की जो कि कुएं में गिरे। अपने बच्चों को भी समझा जाना ताकि वे कुएं में गिरते रहें और हमारे बच्चे उनको निकालते रहें।

यह जो आदमी है, यह जो मोक्ष में जाने के लिए लोगों के कुएं में गिरने की प्रतीक्षा कर रहा है, यह आदमी हद दर्जे का पापी है। इन्हें न कोढ़ियों से मतलब है, न बीमारों से। ये सबको सीढ़ियां बना कर अपना मोक्ष खोज रहें हैं। यह आज तक जो लोग अहिंसा की बात करते हैं, उनके लिए अहिंसा भी एक सीढ़ी है। नहीं, अहिंसा जो सीढ़ी बनती है वह अहिंसा नहीं है। अहिंसा शब्द ठीक नहीं है। शब्द तो ठीक है प्रेम, ज्वलंत प्रेम और प्रेम का मतलब है दूसरे को सुख देने की कामना। लेकिन क्यों? इसलिए नहीं कि मोक्ष जाएंगे, इसलिए नहीं कि पुण्य होगा, बल्कि सिर्फ इसलिए कि जो आदमी जितना दूसरे को सुख दे पाता है उतना ही प्रतिक्षण सुखी हो जाता है, तत्क्षण, आगे-पीछे नहीं, कभी भविष्य में नहीं। जो आदमी जितना दूसरे को दुख देता है तत्क्षण उतना ही दुखी हो जाता है। जीवन में जो हम दूसरे के लिए करते हैं वही हम पर वापस लौट आता है। जिंदगी एक बड़ी प्रतिध्वनि है, एक ईको-पॉइंट है।

मैं एक पहाड़ पर गया था। कुछ मित्र मेरे साथ थे। उस पहाड़ पर एक ईको-पॉइंट था जहां आवाज की जाती तो बार-बार वापस लौटती थी हम लोगों के बीच। वहां जो मित्र मेरे साथ थे वे कुत्ते की आवाज करने लगे। सारा पहाड़ कुत्तों की आवाज से गूंज गया। मैंने उनसे कहाः रुको भी। अगर आवाज ही करनी है तो कोयल की करो या कोई गीत गाओ। कुत्ते की आवाज करने से क्या फायदा। वे मित्र गीत गाने लगे प्रेम का। उन्होंने कोयल की आवाज की और पहाड़ियां कोयल की आवाज से गूंज गईं। फिर हम लौटे तो वे मित्र कुछ सोचने लगे और उदास हो गए और रास्ते में कहने लगे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने इशारा किया हो कि यह जो घाटी है, यह जो ईको-पॉइंट है वह भी प्रतीक है जिंदगी का। जिंदगी का ही वह एक रूप है। जिंदगी में भी जो कुत्ते की आवाज फेंकता है, चारों तरफ कुत्ते भोंकने लगते हैं। जिंदगी में भी जो गीत गाता है चारों तरफ गीत की शहनाइयां बजने लगती हैं। जिंदगी में जो हम फेंकते हैं जिंदगी की तरफ वही हम पर वापस लौटना शुरू हो जाता है--हजार-हजार गुना होकर। प्रेम जो जितना बांटता है उतना प्रतिध्वनित होकर उसके ऊपर बरसने लगता है।

एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।

रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है, बहुत प्यारा गीत है और उस गीत में लिखा है कि एक भिखमंगा सुबह-सुबह उठा है भीख मांगने के लिए, अपनी झोली निकाल कर कंधे पर डाली है, आज त्यौहार का दिन है और भीख मिलने की आशा है। ऐसा मालूम होता है कि त्यौहारों की ईजाद भिखमंगों ने ही की होगी, खोज उन्होंने की होगी। झोली कंधे पर डाल कर उसने अपनी पत्नी से कुछ अनाज, चावल के दाने झोली में डालने के लिए कहा। जब भी कोई भिखमंगा अपने घर से निकलता है, चालाक भिखमंगा, क्योंकि भिखमंगों में भी नासमझ भिखमंगे होते हैं, समझदार भी होते हैं। सब तरह की दुकानों में समझदार, नासमझ सभी तरह के लोग होते हैं। भिखमंगों की भी एक दुकान है। उसने कुछ दाने घर से डाल लिए हैं और भिखमंगे कुछ दाने डाल कर निकलते हैं ताकि जिसके सामने झोली फैलाएं उसे दिखाई पड़े कि भीख पहले भी दी जा चुकी है। इनकार करने में मुश्किल होती है अगर भीख पहले दी जा चुकी हो, क्योंकि अहंकार को चोट लगती है कि किसी दूसरे आदमी ने दान कर दिया है और अगर हम नहीं करते हैं तो उस आदमी के सामने छोटे हो जाते हैं। इसलिए भिखमंगे पैसे हाथ में बजाते हुए निकलते हैं।

वह भिखमंगा रास्ते पर, राजपथ पर आकर खड़ा ही हुआ था, कुछ सोचता था कि किस दिशा में जाऊं, कि देखा कि सामने से सूरज निकलता है और राजा का स्वर्ण रथ आ रहा है। राजा अपने रथ पर सवार है। सूरज की किरणों में उसका रथ चमक रहा है। भिखमंगे के तो भाग खुल गए। उसने कभी राजा से भीख नहीं मांगी थी। राजाओं से भीख मांगना मुश्किल है, क्योंकि द्वार पर पहरेदार होते हैं, वे भीतर प्रवेश करने नहीं देते। आज तो राजा रास्ते पर मिल गया है, आज तो झोली फैला दूंगा और भीख से छुटकारा जन्म-जन्म के लिए मिल जाएगा। फिर आगे भीख नहीं मांगनी पड़ेगी। इसी सपने में, कल्पना में था और भिखमंगों के पास सिवाय सपने के और कुछ भी नहीं होता। सपने में ही जीना पड़ता है, क्योंकि जिनके पास कुछ भी नहीं है वे सपने में ही जीने का रास्ता खोज लेते हैं। वह महलों में निवास करने लगा सपने में और तभी रथ आकर खड़ा हो गया। सारे सपने टूट गए और हैरान हो गया भिखारी। राजा नीचे उतरा और राजा ने अपनी झोली भिखारी के सामने फैला दी।

भिखारी ने कहाः क्या कर दिया? राजा ने कहाः क्षमा करना। अशोभन है, लेकिन ज्योतिषियों ने कहा है कि राज्य पर खतरा है दुश्मन का और कहा है कि अगर मैं आज त्यौहार के दिन जो पहला आदमी मुझे मिल जाए उससे भीख मांग लूं तो राज्य खतरे से बच सकता है। तुम्हीं पहले आदमी हो, दुखी न होओ, तुमने कभी भिक्षा दी न होगी, इसलिए बड़ी मुश्किल पड़ेगी देने में। लेकिन कुछ भी थोड़ा सा दे दो, इनकार मत कर देना, पूरे राज्य के भाग्य का सवाल है। भिखमंगा कितनी कठिनाई में पड़ गया होगा? उसने हमेशा मांगा था, दिया कभी नहीं था। देने की आदत न थी। झोली में हाथ डालता है और खाली हाथ बाहर निकाल लेता है। इनकार भी कर नहीं सकता। सामने राजा खड़ा है। पूरे राज्य के संकट का सवाल है। हाथ भीतर चला जाता है, मुट्ठी बंधती नहीं। राजा कहता है, इनकार मत कर देना, क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर पहले आदमी ने इनकार कर दिया तो संकट निश्चित है। तो एक दाना ही दे दो। भिखारी ने बामुश्किल एक चावल का दाना निकाल कर राजा की झोली में डाल दिया।

राजा अपने रथ पर बैठा और चला गया। धूल उड़ती रह गई। भिखारी के सब कपड़े धूल से भर गए। उलटा मिला तो कुछ भी नहीं, पास से कुछ चला गया। उसका दुख आप जानते हैं? दिन भर भीख मांगी, बहुत मिली उस दिन भीख। इतनी कभी नहीं मिली। लेकिन मन प्रसन्न नहीं हुआ। क्योंकि जो मिलता है उससे प्रसन्न नहीं होता है मन, जो छूट जाता है उससे दुखी होता है। एक दाना खटकता रहा जो दिया था। सबके मन की

यही हालत है, क्योंकि सब छोटे-मोटे भिखारी हैं। जो छूट जाता है वह खटकता रहता है, जो मिल जाता है उसका पता नहीं चलता।

भिखारी के मन का लक्षण यह है--जो मिल जाए उसका पता न चले, जो न मिले, जो छूट जाए, उसकी पीड़ा कसकती रहे।

वह घर पहुंचा है रात, झोली पटक दिया, पत्नी तो पागल हो गई। इतना कभी न मिला था। झोली खोलने लगी। पति तो उदास दिखता था। उदास हैं आप? पति ने कहा, तुझे तो पता नहीं है पागल, झोली में थोड़ा कम है। आज थोड़ा देना भी पड़ा है। ऐसा जिंदगी में कभी नहीं किया आज वह करना पड़ा। पत्नी ने झोली खोली, दाने बिखर गए और पति छाती पीट कर रोने लगा। अब तक उदास था, आंसुओं की धारा बहने लगी। पत्नी ने पूछा, क्या हुआ? पति ने नीचे के दाने उठाए और एक दाना सोने का हो गया था। एक चावल का दाना सोने का हो गया है। चिल्लाने लगा कि भूल हो गई, अवसर निकल गया। मैंने अगर सारे दाने दे दिए होते तो सब सोना हो गया होता। लेकिन अब कहां खोजूं उस राजा को, कहां मिलेगा वह रथ। अवसर चूक गया है वह।

मुझे पता नहीं, यह कहानी कहां तक सच है, लेकिन यह मुझे पता है कि जिंदगी के अंत में आदमी ने जो दिया है वही सोने का होकर वापस लौट आता है। जो दिया है वही स्वर्ण का हो जाता है, जो रोक लिया है वही मिट्टी का हो जाता है। प्रेम का अर्थ है--दान, प्रेम का अर्थ है--बांटना। जितना बंट जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही स्वर्ण की हो जाती है, और जितना अनबंटा रह जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही मिट्टी हो जाती है।

आठवां प्रवचन

## अंधेरे कूपों में हलचल

एक मित्र ने पूछा है कि क्या महापुरुष भी कभी भूलें करते हैं?

हां, करते हैं। महापुरुष भी भूलें करते हैं। एक बात है कि महापुरुष कभी छोटी भूल नहीं करते और जब भी भूल करते हैं, बड़ी ही करते हैं। अतः इस भ्रम में रहने की आवश्यकता नहीं है कि महापुरुष भूल नहीं करते। कोई भी महापुरुष इतना पूर्ण नहीं है कि भगवान कहलाने लगे। महापुरुष भूल करता है और कर सकता है। अतः यह आवश्यक नहीं है कि आने वाले लोग उनकी भूलों पर विचार न करें। यह आवश्यक नहीं है कि हम हिंदुस्तान के पांच हजार वर्षों के इतिहास पर विचार करें, वरन यदि हिंदुस्तान के पांच महापुरुषों पर ही ठीक से विचार कर लें तो आने वाले लोग जिस गलत रास्ते पर चलने वाले हैं--उसकी ओर संकेत हो सकेगा। ठीक समय पर भूल सुधार हो जाएगी।

महापुरुष ऊंचाइयों पर चलते हैं, उन ऊंचाइयों पर, जहां आने वाली पीढ़ियां हजारों सालों तक चलेंगी। लेकिन इतना आगे चलने में महापुरुष भी न जाने हजारों साल पहले ही कितनी भूलें कर डालता है और उन भूलों को दुर्भाग्यवश हजारों साल तक आने वाली पीढ़ियां आत्मसात करती रहेंगी। महापुरुष की जातीय भूलें दिखलाई नहीं पड़ती हैं--जातीय भूलों को देखना और समझना कठिन भी है।

मैंने गांधी वर्ष को गांधी की जातीय भूलों की आलोचना का वर्ष माना है। इस एक वर्ष में गांधी पर हम जितनी आलोचना कर सकें, हमें करना चाहिए। हम गांधी की जितनी आलोचना करेंगे, उतना ही परोक्ष रूप से उनके प्रति हमारा प्रेम प्रकट होगा। आलोचना द्वारा हम यह प्रकट करेंगे कि हम गांधी को मुर्दा नहीं समझते हैं, उसे जिंदा समझते हैं। वह और उसके विचार जीवित प्रतीक हैं, तभी तो उस पर विचार करेंगे, उसे समझेंगे और उसकी विचार-परंपरा को आगे बढ़ाएंगे। हम उनकी पूजा नहीं करेंगे। पूजा मरे हुए आदमी की की जाती है, जीवित की नहीं। अतः हम गांधी के विचारों की पूजा नहीं करेंगे।

मैं गुजरात में नहीं था, पंजाब में था। जब लौटा तो मेरी बातों को बड़े-बड़े अजीब अर्थ दे दिए गए थे। इन गलतफहमियों की वजह से मुझे गालियां भी दी जा रही हैं। वैसे गालियों का मुझे कोई भय नहीं है। लेकिन यदि इन गालियों के साथ-साथ गांधी जी के विचारों को लेकर कुछ तर्क हुए हों, कुछ विचार-विनिमय हुआ, तो प्रसन्नता की बात अवश्य हो सकती है और उससे गांधी जी की आत्मा भी शांति अनुभव करेगी।

आज की चर्चा में जिन बिंदुओं पर मैं अपनी बात केंद्रित रखना चाहूंगा, उनमें से पहली बात हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति एवं सयता की है। कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति का इतिहास कोई दस हजार साल पुराना है। पांच हजार वर्ष की कथा तो हमें ज्ञात है... जो भी हो, लेकिन दस हजार वर्ष के इतिहास में भारत ने खाने और पहनने में कभी भी योग्यता प्राप्त नहीं की। हमारे दस हजार वर्ष के इतिहास की उपलब्धि यह है कि पृथ्वी पर आज सबसे ज्यादा दरिद्र, दीन-हीन और दुखी लोग हम ही हैं। ऐसा आकस्मिक नहीं हो सकता है। इसके पीछे हमारे सोचने के ढंग में कोई बुनियादी भूल होनी चाहिए।

यह सोचने की बात है कि दस हजार वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी हम श्रम कर रहे हैं, हर प्रकार से सोच रहे हैं, निरंतर कुछ नया प्रयास कर रहे हैं; फिर भी हम रोजी-रोटी नहीं जुटा पाते हैं। यह बात गंभीर है, विचारणीय

है। यदि हमारे मूलभूत दृष्टिकोण में दोष नहीं होता तो इतने धन-धान्य से पूर्ण हमारा देश इतना दरिद्र नहीं होता। अतः हमारे तत्वचिंतन की मूलभूत त्रुटि को हमें अच्छी तरह से समझ लेना है।

भूल यह है कि हिंदुस्तान का मस्तिष्क आज तक वैज्ञानिक एवं तकनीकी नहीं हो पाया है। हिंदुस्तान का मस्तिष्क सदा से अवैज्ञानिक रहा है, तकनीक-विरोधी रहा है। दुनिया में संपत्ति तकनीक और विज्ञान से पैदा होती है। संपत्ति आसमान से नहीं टपकती। अमरीका तीन सौ वर्ष के इतिहास में जगत का सबसे समृद्ध एवं शक्तिशाली देश बन गया। हम दस हजार वर्ष का इतिहास लिए हुए भी अमरीका जैसे नये देश के सामने हाथ जोड़ कर भीख मांग रहे हैं। हमें शर्म भी नहीं मालूम हुई। हमसे ज्यादा बेशर्म कौम भी खोजनी मुश्किल है।

मैंने सुना है, सन उन्नीस सौ बासठ के करीब चीन में एक अकाल पड़ा था। इन अकाल-पीड़ितों की सहायतार्थ इंग्लैंड से उसके कुछ मित्रों ने खाद्यसामग्री, कपड़े, दवाइयां आदि भेजीं, वह जहाज जब चीन भेजा तो किनारे से ही भरा हुआ जहाज लौटा दिया गया और उस जहाज पर लिख दिया कि धन्यवाद, हम मर सकते हैं लेकिन किसी हालत में भीख मांगने को तैयार नहीं हैं। होगा चीन कैसा ही देश, होगा माओ कैसा ही और होंगी उनकी नीतियां कितनी ही घातक! लेकिन बात उन्होंने स्वाभिमान की कही। अमरीका की कौम तीन सौ वर्ष पुरानी है और इन तीन सौ वर्षों में उन्होंने पृथ्वी पर संपत्ति का ढेर लगा दिया। आज वे सारी पृथ्वी के अन्नदाता बन बैठे हैं और हम भिखारियों की तरह खड़े हैं।

यूरोप निवासियों के आने के पहले अमरीका में वही जमीन थी, वही आसमान था, वही खेत थे, वैसे ही वर्षा होती थी, वैसे ही सूरज चमकता था, लेकिन अमरीका का आदिवासी संपत्ति पैदा क्यों नहीं कर सका? जब देश वही था तो संपत्ति पैदा क्यों नहीं हुई? अमरीका का आदिवासी भूखा मर रहा था, लंगोटी लगाए हुए था और यूरोप के लोगों के पहुंचने से यह संपत्ति कहां से पैदा हो गई? यह संपत्ति आई थी टेक्नालॉजी से, यूरोपीय लोगों के तकनीकी एवं वैज्ञानिक मस्तिष्क से।

हिंदुस्तान का मस्तिष्क प्रारंभ से ही अवैज्ञानिक रहा है। गांधी जी ने हिंदुस्तानियों के इस अवैज्ञानिक मस्तिष्क में भरी भूलों को और मजबूत किया है, फिर से उन्होंने तकली और चरखे की बातें की हैं और किसी भी गंभीर व्यक्ति के लिए यह बात बरदाश्त के बाहर है।

अतः हिंदुस्तान को यदि प्रगति करनी है तो चरखा और तकली से मुक्त होना पड़ेगा। मैं आशा करता हूं मेरे कहे का सही अर्थ लगाया जाए और उसे सही माने में समझा भी जाए। मैं यह नहीं कहता हूं जो चरखा-तकली से कमा रहे हैं उनकी कमाई पर हम लात मार दें, यह भी मैं नहीं कहता हूं कि खादी का उत्पादन हम बंद कर दें। मैं कहना यह चाहता हूं कि खादी-तकली हमारे चिंतन का प्रतीक न बनें। हमारे चिंतन के प्रतीक यदि इतने पिछड़े हुए होंगे तो हम आने वाली दुनिया में ऊपर नहीं उठ सकते हैं। हिंदुस्तान यदि भूखा मरेगा तो उसका जुम्मा तकनीक-विरोधी दृष्टिकोण पर होगा। यदि गांधी की पूरी बात मान ली जाए, तो भारत में ही करीब पच्चीस करोड़ लोगों को मृत्यु के फंदे में ढकेलना पड़ेगा। वह मृत्यु अहिंसक गांधी के सिर पड़ेगी।

अल्डुअस हक्सले ने कहीं कहा है कि यदि गांधी की बात सारी दुनिया मान ले तो पृथ्वी की आधी आबादी को नष्ट हो जाना पड़ेगा। साढ़े तीन अरब लोगों में से पौने दो अरब लोगों को मरना पड़ेगा। क्योंकि तकनीक के विकास के कारण ही मनुष्य की आबादी बढ़ी है। जब तक तकनीकी विकास नहीं हुआ था तब तक दुनिया की आबादी इस भांति बढ़ ही नहीं सकती थी। शायद बुद्ध के समय सारी दुनिया की आबादी दो-अढ़ाई करोड़ से ज्यादा नहीं थी। यदि हमें पीछे राम-राज्य की तरफ लौटना हो तो यह जागतिक आत्मघात, यूनिवर्सल सुसाइड

ही कहा जा सकता है। चंगीज, तैमूर, सिकंदर, नेपोलियन, हिटलर, स्टैलिन, माओ--सब मिल कर भी इतने लोगों को नहीं मार सकते हैं जितनों को अकेले गांधी-दर्शन मार डाल सकता है!

गांधी का विचार तकनीक-विरोधी है और गांधी का यह तकनीक-विरोधी विचार ही भारत को दरिद्र बनाए रखने का कारण बनेगा। इसी कारण इस पर ठीक से सोच-समझ लेना आवश्यक है। यह तकनीक-विरोधी हमारी परंपरा तो पांच हजार वर्ष पुरानी है और इसीलिए हमें चारों ओर का सिलसिला भी ठीक-ठीक ही लगता है। इसलिए लगता भी है कि क्या करना है जरूरतें बढ़ा कर, क्या करना है बड़ी मशीनें बना कर, क्या करना है केंद्रीकरण से?

लेकिन हमें यह मालूम होना चाहिए कि केंद्रीकरण के बिना, बिना बड़े उद्योगों के, संपदा पैदा हो ही नहीं सकती है। संपदा पैदा करनी है तो केंद्रीकरण की व्यवस्था करनी ही होगी। गांधी विकेंद्रीकरण के पक्ष में हैं, तो मैं यही कहता हूं कि यह विकेंद्रीकरण ही आत्मघात सिद्ध होगा। सच बात तो यह है कि यदि गांधी को छोड़ कर किसी अन्य आदमी ने विकेंद्रीकरण की और चरखा-तकली की बातें की होतीं तो हम उस पर हंसते। हम उस आदमी को बेवकूफ कहते। लेकिन गांधी इतने महिमापूर्ण व्यक्ति हैं कि उनकी नासमझी की बातें भी हमें पवित्र मालूम होती हैं।

गांधी के व्यक्तित्व में ही कुछ ऐसी बात थी कि वे हमसे यदि दोषपूर्ण एवं असंगत बातें भी कहेंगे तो भी हम उसे परम, सिद्ध मंत्र की तरह स्वीकार करेंगे। गांधी की ये बातें यदि और कोई करता तो हम उसको सपने में भी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि हम जानते थे कि वे न तो विवेकपूर्ण हैं, न बुद्धिमत्ता पूर्ण हैं और न ही भविष्य में उनसे देश का कोई भला ही होने वाला है। इससे सिद्ध होता है कि गांधी अदभुत व्यक्ति थे जो हर प्रकार की बात चाहे वह गलत हो या उलटी, सही प्रमाणित कर सकते थे। यदि कोई साधारण आदमी कहे कि तकली कातो ओर देश आजाद हो जाएगा तो हम मानेंगे ही नहीं, बल्कि उसकी बात पर हंसेंगे। लेकिन गांधी जैसे आदमी पर हंसना कठिन है।

गांधी इतने सच्चे थे, नियत के इतने साफ कि देश के लिए अपना सब कुछ अर्पित करके मरे। वे ऐसे व्यक्ति थे कि उनके रोम-रोम में, प्राण-प्राण में देश की उन्नति के सिवाय और कुछ नहीं बसा था। यही कारण है कि हम यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि गांधी कुछ गलत भी कह सकते हैं। गांधी की गलतियों पर किसी ने ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं समझी, क्योंकि गांधी की नियत पर कभी भी किसी को भी शक नहीं था।

गांधी जी को जो ठीक लगा उन्होंने ईमानदारी से उसे निभाया और दृढ़तापूर्वक उसका पालन भी किया। लेकिन गांधी जी ने जो सोचा वह ठीक भी हो सकता है और त्रुटिपूर्ण भी। यह कोई अनिवार्यता नहीं है कि गांधी जी ने जो कुछ सोच लिया, वह ध्रुव सत्य है और वह त्रुटिपूर्ण हो ही नहीं सकता। दुनिया में अनिवार्यता किसी भी चीज की नहीं है। न्यूटन को जो ठीक लगा वह न्यूटन ने किया। आइंस्टीन को जो ठीक लगता वह आइंस्टीन करता है। दोनों का विरोधाभास यदि हो भी जाए तो इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों एक-दूसरे के शत्रु हो जाएंगे। आइंस्टीन तो न्यूटन के सिद्धांतों को आगे बढ़ाने वाला होगा, उसे गति प्रदान करने वाला होगा और प्रगति का यही क्रम भी रहता है।

मैं कोई गांधी का शत्रु नहीं हूं। मेरे हृदय में उनके प्रति जितना प्रेम है, श्रद्धा है, शायद ही अन्य किसी पुरुष के प्रति हो। लेकिन कठिनाई यह है कि उनके थोथे अनुयायी यह प्रचारित करते हैं कि मैं उनका शत्रु हूं तो यह बच्चों जैसी नादानी और मूर्खता ही कही जाएगी। गांधी के व्यक्तित्व पर मुझे शक नहीं है। लेकिन इसका यह

अर्थ तो नहीं कि गांधी जो कहते हैं वह सब सही हो सकता है, सब उपयोगी हो सकता है। ऐसा सोचना स्वयं को धोखा देना होगा, खतरनाक होगा।

कई लोग व्यक्तित्व के साथ कृतित्व को जोड़ने के आदी हो गए हैं। किसी भी महापुरुष ने मनुष्य के, समाज के रूपांतरण के संबंध में इतना गहरा विचार नहीं किया जितना कि मार्क्स ने किया है। लेकिन मार्क्स सुबह से लेकर शाम तक सिगरेट पीता था। अब अगर कोई समाजवादी यह समझे कि मुझे भी सुबह से शाम तक सिगरेट पीनी चाहिए केवल इसलिए क्योंकि मार्क्स सिगरेट पीता था और मार्क्स ने जो भी व्यक्तिगत स्तर पर गलत काम किए वह भी उन्हें दोहराएगा तो उसे कोई भी संगतिपूर्ण नहीं कहेगा।

हर बड़े आदमी की अपनी कुछ व्यक्तिगत रुझान होती है, अपने जीने का ढंग होता है। उसे जो प्रीतिकर होता है, वह करता है लेकिन पीछे आने वाले लोगों को निरंतर सचेत होकर सोचना जरूरी है कि क्या उसके और देश के लिए, भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

मुझे ऐसा दिख पड़ता है कि यदि हम गांधी के इस तकली-चरखा के जीवन-दर्शन में डूबे रहे, उसी में अपनी शक्ति और समय नष्ट करते रहे तो यह देश औद्योगिक क्रांति में से नहीं गुजर सकेगा। यह स्मरण रहे कि आने वाले पचास वर्षों में सारी दुनिया से इतनी बड़ी क्रांति गुजरने वाली है कि हमारे बीच और पश्चिम के बीच इतना बड़ा फासला हो जाएगा कि शायद इस फासले को हमारी आने वाली पीढ़ियां कभी पूरा न कर सकेंगी। हमें जो भी करना है वह आने वाले बीस वर्षों में अत्यंत तीव्रता से तकनीक के मामले में आधुनिक दुनिया के समक्ष खड़ा होना है। अन्यथा हम हमेशा के लिए पिछड़ जाएंगे जैसा अब तक होता रहा है।

तकनीक यानी मनुष्य की इंद्रियों और क्षमताओं का विस्तार। आंख थोड़ी दूर ही देख सकती है। लेकिन दूरबीन बहुत दूर तक देख सकती है। वह आंख का ही विस्तार है। अब तो राडार आंखें भी हैं। और जिन्हें चांद-तारों पर पहुंचना है, उनके लिए खाली आंखें काफी नहीं हो सकती हैं। ऐसे ही शेष सारी तकनीक का भी दर्शन है। हमारा मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है। और हमारे हवाई जहाज हमारे पैरों के। मनुष्य तकनीक के माध्यम से विराट हो गया है। और जो भी उस आयाम में यात्रा करने से इनकार करेंगे वे व्यर्थ ही बौने रह जाएंगे।

गांधी की बातें भारत को बौना करने वाली हैं, उनका चले तो हमें आदि-गुफा-मानव की दुनिया में पहुंचा दें। माना कि कोई इतनी दूर तक उनकी बातें नहीं मानेगा। बुद्धि रहते ऐसा करना सुगम भी नहीं है। लेकिन लंबी पराजय और आलस्य से भरी जाति ऐसी बातें अपने अहंकार को बचाने के लिए भी मान सकती है।

भारत में कुछ ऐसा ही हो रहा है। जिन अंगूरों तक हम नहीं पहुंच पर रहे हैं उन्हें खट्टे कह कर स्वयं का चेहरा बचाया जा रहा है! लेकिन इसमें किसी और का कोई नुकसान नहीं है। हानि होगी तो बस हमारी ही होगी! क्योंकि चाहे झूठे ही सही, बिना स्वाद लिए ही सही, जिसे हम खट्टा मान लेते हैं, उसे पाने की यात्रा बंद हो जाती है। और हमारे खट्टे की घोषणा से दूसरे तो उसे पा नहीं सकते हैं। बल्कि जब उनके चेहरे कहते हैं कि नहीं जो हमने छोड़ा वह खट्टा नहीं था, तो हमारे प्राण और भी संकट में पड़ जाते हैं। लेकिन तब स्वाभिमान बचाने को हम अंगूरों को खट्टे होने का और भी शोरगुल मचाने लगते हैं। यह एक दुष्चक्र है। और भारत इसमें बुरी तरह उलझ गया है।

हिंदुस्तान की दीनता और दरिद्रता की कथाएं यह बतला रही हैं कि हमने कभी टेक्नालॉजी विकसित करने का प्रयास ही नहीं किया। हम यही कहते रहे कि हम झोपड़ों में रह लेंगे, अपना चरखा कात लेंगे, अपना कपड़ा

बुन लेंगे और हमें क्या आवश्यकता है अन्य चीजों की? हम अपनी जगह बैठे रहे और दुनिया तेजी से विकसित होती चली गई।

चीन ने हम पर हमला किया तो हम पीछे हट आए और जितनी जमीन हमने छोड़ी उस पर चीन ने कब्जा कर लिया, वह जमीन उसी की हो गई। अब हम उसकी कोई बात ही नहीं करते। करने की हिम्मत भी करना कठिन है। यह सब इसलिए, क्योंकि तकनीक की दृष्टि से हम चीन से पिछड़े हुए हैं, उससे लड़ने में असमर्थ हैं। एक बड़े गांधीवादी नेता से इस संबंध में मेरी बात होती थी तो उन्होंने कहा, वह जमीन बिल्कुल बेकार है, उसमें घास-फूस भी पैदा नहीं होता है। यह वही खट्टे अंगूरों वाली बात है न?

मनुष्य ने जितनी सयता विकसित की है वह श्रम से मुक्त हो जाने के लिए की है। जब भी कुछ लोग श्रम से मुक्त हो गए तो उन्होंने काव्य रचे, गीत लिखे, चित्र बनाए, संगीत का सृजन किया, परमात्मा की खोज की। इस प्रकार आदमी जितना श्रम से मुक्त होता है उतना ही उसे धर्म, संगीत और साहित्य को विकसित करने का अवसर भी मिलता है। कभी आपने सोचा है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के ही लड़के क्यों हुए? बुद्ध राजा के ही लड़के क्यों हुए? राम और कृष्ण राजा के लड़के क्यों हुए? हिंदुस्तान के सब भगवान राजाओं के लड़के क्यों हुए? उसका भी कारण है। एक दरिद्र आदमी जो दिन भर मजदूरी करके भी पेट नहीं भर सकता है, खाना नहीं जुटा सकता है, थका-मांदा रात को सो जाता है, सुबह उठ कर फिर अपनी मजदूरी में लग जाता है--उसके लिए कहां का परमात्मा, कहां की आत्मा, कहां का दर्शन?

दरिद्र समाज कभी धार्मिक समाज नहीं हो सकता है। हिंदुस्तान दो-अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व समृद्ध था तो वह उस समय धार्मिक भी था। लेकिन आज हिंदुस्तान इतना गरीब और दरिद्र है कि वह धार्मिक नहीं हो सकता है। मैं आपसे दावे से कह सकता हूं कि रूस और अमरीका आने वाले पचास वर्षों में एक नये अर्थ में धार्मिक होना शुरू हो जाएंगे। उनके धार्मिक होने की प्रक्रिया भी प्रारंभ हो गई है।

जब आदमी के पास अतिरिक्त संपत्ति होती है, जब उसके पास श्रम की कमी के कारण समय बचता है, तब पहली बार आदमी की चेतना पृथ्वी से ऊपर उठती है और आकाश की ओर देखती है।

संतोष एक बहुत ही घातक शब्द है, हमें जड़ करने के लिए। हमारा दर्शन यह है कि हम अपनी चादर में ही संतुष्ट हैं। हमारे हाथ-पांव बढ़ते जाएंगे, लेकिन हम अपने को सिकोड़ते जाएंगे। चादर तो उतनी ही रहेगी--छोटी की छोटी। तुम भीतर बड़े होते जा रहे हो। रोज कभी हाथ उघड़ जाएगा, कभी पांव उघड़ जाएगा, कभी पीठ उघड़ जाएगी और इस तरह सिकुड़ते-सिकुड़ते जिंदगी कठिन हो जाएगी।

सिकुड़ना तो मरने का ढंग है।

तो मेरा यह कहना है कि जीवन के विस्तार का नियम यह नहीं है। जीवन के विस्तार का दर्शन यही कहता है कि हमें चादर का विस्तार करना है। हमेशा चादर के बाहर पैर फैलाओ, ताकि बाहर जाए और हमें यह चुनौती मिले कि चादर को हमें बड़ा करने का निरंतर प्रयास करना है। हिंदुस्तान कायर और सुस्त अकारण नहीं हो गया। हिंदुस्तान के सुस्त एवं कायर होने के पीछे तथाकथित बड़े-बड़े लोगों का दर्शन है। अतः हिंदुस्तान के हर व्यक्तित्व को फैलाव चाहिए। हमें तकनीक विरोधी दर्शन छोड़ना है और प्रतिभाओं को खुला अवसर देना है, साहसपूर्वक उनका फैलाव करना है।

मेरा विरोध गांधी से नहीं, गांधीवादी दर्शन से है। हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञों को गांधी से कोई मतलब नहीं है, मतलब है गांधीवादी से। इसलिए गांधीवाद की इतनी भीमकाय तस्वीरें और रंगमंच खड़े कर दिए हैं ताकि उसके पीछे सब-कुछ खेला जा सके, सब-कुछ सही गलत किया जा सके। बीस वर्ष से गांधी की आड़ में एक

खेल चल रहा है, गांधीवाद के नाम पर देश का शोषण चल रहा है और गांधीवादियों ने इन बीस वर्षों में देश को नरक की यात्रा करा दी है। गांधीवाद से हम जितनी जल्दी मुक्त हो जावें उतना ही अच्छा होगा और उसी दिन हम सच्चे अर्थों में गांधी को ज्यादा प्रेम और आदर देने में समर्थ हो सकेंगे। इन गांधीवादियों की वजह से ही गांधी का इतना अनादर हो रहा है।

गांधी ने जिस दिन चरखे-तकली की बात की थी तब संभवतः उसकी जरूरत रही होगी। लेकिन वह जरूरत दूसरी थी--न तो औद्योगिक थी, न आर्थिक थी, वरन वह राजनैतिक थी। वे राजनैतिक स्तर पर देश को एकता का प्रतीक देना चाहते थे। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाला तबका अभी भी इसी प्रयास में लगा है कि गांधी का वही पुराना प्रतीक हमेशा बना रहे। यह कैसे संभव हो सकता है? आगे चल कर भी वह हमारा प्रतीक कैसे हो सकता है। गांधी के समय की परिस्थितियां उनके साथ ही समाप्त हो गईं और वह बात उन्हीं के साथ चली गई। अब परिस्थितियां और आवश्यकताएं बिल्कुल भिन्न हैं। लेकिन एक गांधीवादी वर्ग अभी भी गांधी के इस चरखे-तकली को हमारी आर्थिक योजनाओं के साथ जोड़ना चाहता है। ऐसा षडयंत्र देश को सदा के लिए अवैज्ञानिक बना देगा। वैसे ही हमारे पास वैज्ञानिक बुद्धि का नितांत अभाव है।

मैं कलकत्ता में एक डाक्टर के घर मेहमान था। डाक्टर के पास बहुत डिग्रियां हैं। वे कलकत्ते के एक प्रख्यात फिजिशियन हैं। शाम को जब वे एक मीटिंग में मुझे ले जाने के लिए निकले तो उनकी लड़की को छींक आ गई। वह डाक्टर मुझसे बोले कि दो मिनट रुक जाइए, लड़की को छींक आ गई है। मैंने उस डाक्टर से कहा कि यदि मेरे हाथ में हो तो मैं अभी तुम्हारे सारे सर्टीफिकेटस में आग लगा दूं और घोषणा कर दूं कि इस आदमी से किसी को भी दवा नहीं लेनी चाहिए। यह आदमी खतरनाक है। इसके पास वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है। तुम डाक्टर हो और भलीभांति जानते हो कि छींक आने का भीतरी शारीरिक कारण है। उसका, मेरे जाने से कोई संबंध भी नहीं है।

हिंदुस्तान वैज्ञानिक शिक्षा तो ले रहा है, लेकिन उसके पास वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है। हम वैज्ञानिक पैदा कर रहे हैं। विज्ञान की बड़ी-बड़ी डिग्रियां बांट रहे हैं, फिर भी वैज्ञानिक बुद्धि हम पैदा नहीं कर पाए। अतः हिंदुस्तान के लोगों को आने वाले समय में तकनीकी मस्तिष्क का बनाना है, जीवन के लिए अधिक से अधिक साधन पैदा करने हैं ताकि यह देश जो हजारों साल से गरीब रहा है, गरीब न रह सके।

यह जो मुल्क हजारों वर्षों से मानसिक रूप से गुलाम रहा है, गुलाम न रह सके। उसकी दरिद्रता का बोध टूटे। देश में नये सिरे से प्रतिभाओं का विकास हो और संसार के अन्य देशों के समकक्ष खड़ा हो सके। गांधी जिस दिन देश को इस नई हालत में देखेंगे उनकी आत्मा अवश्य ही प्रसन्न होगी। गांधी जी की आत्मा के पास अब कोई उपाय नहीं कि वह आपको आकर कह दे कि चरखा-तकली से मुक्त हो जाओ। अतः यह काम हम लोगों को ही करना होगा। मैं यह मानता हूं कि जो बात मैं आपसे कह रहा हूं, यदि गांधी जी से कहता तो गांधी उसे आपसे ज्यादा सहानुभूति से सुनने में समर्थ हो सकते थे। लेकिन गांधीवादी मेरी बातों का अजीब अर्थ लगाते हैं, मेरे बारे में न जाने क्या-क्या कहते हैं। कोई कहने लगा कि में चीन का एजेंट हूं, कोई कहता है मुझे रूस से पैसे मिलते हैं, कोई कहता है पुलिस से मेरी जांच करवानी चाहिए। कोई कहता है कि यह व्यक्ति गुरु गोलवलकर से अधिक खतरनाक है, यह निश्चित ही कोई खतरनाक षडयंत्र रच रहा है।

तब मुझे एक ही बात कहनी है कि गांधी जिस देश का निर्माण कर गए हैं, जिसके लिए उन्होंने चालीस-पचास वर्ष मेहनत की, जिसके लिए वे मरे-खपे, जिनके लिए उन्होंने इतना श्रम किया, उस सब पर अनेक अनुयायी एकदम पानी फेरे दे रहे हैं। क्योंकि वे देश को विचार तक करने की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते हैं। वे

विचार का किसी भी भांति गला घोंटने के लिए उत्सुक हैं। विचार को वे देशद्रोह बतलाते हैं और विचार के लिए आमंत्रण देने को वे षडयंत्र की भूमिका बतलाते हैं।

बहुत से गांधीवादी मेरे मित्र रहे हैं, लेकिन जब मैंने गांधीवादी की आलोचना की, तो मैंने सोचा भी नहीं था कि वे मेरे शत्रु हो जाएंगे। मुझे अनेक पत्र आए हैं और उन पत्रों में यही लिखा है कि मैं आत्मा-परमात्मा की ही बात करूं और कोई अन्य बात नहीं और न ही किसी तरह की राजनीति की बात। आह! तब मुझे ज्ञात हुआ कि आत्मा-परमात्मा की ही बात करवाना भी कैसी राजनीति है! राजनीतिज्ञ मुझे सलाह देते हैं कि मैं सिर्फ धर्म की ही बात करूं।

आह! कैसे कुशल राजनीतिज्ञ हैं! वे मुझे कहते हैं कि देश की और समस्याओं पर बोलने में मेरी प्रतिष्ठा को हानि पहुंचेगी! अर्थात वे मुझे भी राजनीतिज्ञ बनाना चाहते हैं। क्योंकि प्रतिष्ठा को ध्यान में रख कर जीता है, वही तो राजनीतिज्ञ है! मैं ठहरा एक फकीर--मुझे प्रतिष्ठा से क्या प्रयोजन है? सत्य से जरूर प्रयोजन है--लोक-मंगल से जरूर प्रयोजन है और उसके लिए यदि मेरी कुर्बानी भी हो जाए तो कोई हानि नहीं है।

सच तो यह है कि मेरे पास अब कुर्बान करने को भी तो कुछ नहीं है। मैं भी तो नहीं बचा हूं। उसे भी तो प्रभु को दे चुका हूं। इसलिए अब मैं कुछ कह रहा हूं। ऐसा भी नहीं है। प्रभु की जो मर्जी। वह जो करवाए, मैं उसी के लिए राजी हूं। मैं जो बोलता हूं वह भी तो अब उसी का है। और सलाह ही लेनी होगी तो मैं इन राजनीतिज्ञों से लेने नहीं जाऊंगा। उसके लिए भी तो प्रभु का द्वार मेरे लिए सदा खुला है। इसलिए कोई मेरी या मेरी प्रतिष्ठा की चिंता न करे। चिंता करे उसकी कि जो मैं कह रहा हूं। क्योंकि समय रहते उसकी चिंता करने में देश के भविष्य को व्यर्थ ही गड्ढे में गिरने से बचाया जा सकता है।

एक और मित्र ने पूछा कि मैं गांधी जी को नैतिक ही पुरुष मानता हूं, धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं! धार्मिक और नैतिक में क्या भेद है? फिर मैं गांधीवादियों को भी नैतिक ही कहता हूं तब गांधी जी और उनके अनुयायियों में क्या कोई भेद नहीं है?

साधारणतः ऐसा समझा है कि जो नैतिक है, वह धार्मिक है। यह बड़ी भूलभरी दृष्टि है। धार्मिक तो नैतिक होता है, लेकिन नैतिक धार्मिक नहीं!

धार्मिक वह है जिसने जीवन के सत्य को जाना। यह अनुभूति विस्फोट, एक्सप्लोजन की भांति उपलब्ध होती है। उसका क्रमिक, ग्रेजुअल विकास नहीं होता। जीवन के तथ्यों के प्रति समग्ररूपेण जाग कर जीने से जीवन के सत्य का विस्फोट होता है। उस विस्फोट की भूमिका जाग कर जीना है। प्रज्ञा, अमूर्च्छा, या अप्रमाद अवेयरनेस से वह विस्फोट घटित होता है। योग या ध्यान जागरण की प्रक्रियाएं हैं।

विस्फोट को उपलब्ध चेतना का आमूल जीवन बदल जाता है। असत्य की जगह सत्य, काम की जगह ब्रह्मचर्य, क्रोध की जगह क्षमा, अशांति की जगह शांति, परिग्रह की जगह अपरिग्रह या हिंसा की जगह अहिंसा का आगमन अपने आप ही हो जाता है। उन्हें लाना नहीं पड़ता है। न साधना ही पड़ता है। उनका फिर कोई अयास नहीं करना होता है। वह रूपांतरण सहज ही फलित है।

मूर्च्छा में, निद्रा में, सोये हुए व्यक्तित्व में जो था, वह जागते ही वैसे ही तिरोहित हो जाता है, जैसे कि प्रकाश के जलते ही अंधकार विलीन हो जाता है।

इसलिए धार्मिक व्यक्ति असत्य, या ब्रह्मचर्य या हिंसा को दूर करने या उनसे मुक्त होने की चेष्टा नहीं करता है। उसकी तो समस्त शक्ति जागने की दिशा में ही प्रवाहित होती है। वह अंधकार से नहीं लड़ता है, वह तो आलोक को ही आमंत्रित करता है।

लेकिन, नैतिक व्यक्ति अंधकार से लड़ता है। वह हिंसा से लड़ता है, ताकि अहिंसक हो सके, वह काम से लड़ता है ताकि अकाम्य हो सके। लेकिन हिंसा से लड़ कर कोई हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता है। न ही वासना से लड़ कर कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है। ऐसा संघर्ष दमन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकता है। हिंसा अचेतन अनकांशस में चली जाती है और चेतन मन अहिंसक प्रतीत होने लगता है। यौन, सेक्स अंधेरे चित्त में उतर जाता है और ब्रह्मचर्य ऊपर से आरोपित हो जाता है। इसलिए ऊपर से देखने और जानने पर धार्मिक व्यक्ति और नैतिक व्यक्ति एक से दिखाई पड़ते हैं। लेकिन वे एक से नहीं हैं।

नैतिक व्यक्ति शीर्षासन करता हुआ अनैतिक व्यक्ति ही है, लेकिन सोया हुआ ही। उसके जीवन में कोई क्रांति घटित नहीं हुई है। इसीलिए नीति को क्रमशः साधना होता है।

नीति विकास, एवोल्यूशन है, धर्म क्रांति, रेवोल्यूशन है। नीति धर्म नहीं है। वह धर्म का धोखा है। वह मिथ्या-धर्म, सूडो रिलीजन है। और वह धोखा प्रबल है। तभी तो गांधी जैसे भले लोग भी उसमें पड़ जाते हैं। वे धार्मिक ही होना चाहते थे। लेकिन नीति के रास्ते पर भटक गए। और ऐसा नहीं है कि इस भांति वे अकेले ही भटके हों। न मालूम कितने तथाकथित संत और महात्मा ऐसे ही भटकते रहे हैं। इसीलिए जीवन के अंत तक वे "सत्य के प्रयोग" ही करते रहे, लेकिन सत्य उन्हें उपलब्ध नहीं हो सका। और उनकी अहिंसा में भी इसीलिए छिपी हुई हिंसा के दर्शन होते हैं। और स्वयं के ब्रह्मचर्य पर भी वे स्वयं ही संदिग्ध थे। और स्वप्न में उन्हें कामवासना पीड़ित भी करती थी। दमन से ऐसा ही होता है। दमन का यही स्वाभाविक परिणाम है। इसीलिए धार्मिक होने की कामना से भरे हुए गांधी धार्मिक ने हो सके। लेकिन धार्मिक होने की इच्छा तो उनमें थी। और जो उन्हें ठीक लगता था उसे वे निष्ठापूर्वक करते थे। शायद इस जीवन की असफलता उन्हें अगले जीवन में काम आ जाए। आदमी भूल से ही तो सीखता है।

पहली भूल है अनीति। फिर दूसरी भूल है नीति। अनीति से आनंद पाने में असफल हुआ व्यक्ति नीति की ओर मुड़ जाता है। और फिर नीति भी जब असफलता ही लाती है तभी धार्मिक यात्रा शुरू होती है।

मैं मानता हूं कि गांधी ने इस जीवन में नैतिकता की असफलता भी भलीभांति देख ली है। लेकिन, उनके शिष्य यह भी नहीं देख पाए हैं। क्योंकि वे नैतिक भी बे-मन से थे।

नैतिकता गांधी के लिए साधना थी। उससे वे स्वयं धोखे में पड़े, लेकिन उससे वे किसी और को धोखे में नहीं डालना चाहते थे। अनके अनुयायी के लिए नैतिकता आवरण थी, जिससे वे केवल दूसरों को धोखे में डालना चाहते थे। इसीलिए जब सत्ता आई तो गांधी ने सत्ता की बागडोर हाथ में लेने से इनकार कर दिया। क्योंकि उनका दमन हार्दिक था। वे अपने हाथों से अपनी दमित जीवन-व्यवस्था को प्रतिकूल परिस्थितियों में नहीं छोड़ सकते थे। क्योंकि उन प्रतिकूल परिस्थितियों में उस जीवन भर साधी गई व्यवस्था के टूट जाने का भय था। इसीलिए गांधी सत्ता से बचे। लेकिन उनके अनुयायी सत्ता की ओर अपने सब आवरणों को छोड़ कर भागे। और फिर सत्ता ने उनकी सारी कागजी नैतिकता में आग लगा दी। वे स्पष्ट ही अनैतिक हो गए।

यदि गांधी सत्ता में जाते तो उनकी नैतिक व्यवस्था भी टूटती। लेकिन इससे वे अनैतिक नहीं हो जाते वरन धार्मिक होने की उनकी खोज शुरू होती। तब नैतिकता भी साधी जा सकती है यह उनका भ्रम टूटता। और वे उस धर्म की ओर बढ़ते जो कि नीति के अयास और अंतःकरण, कांशस के निर्माण से नहीं, वरन जागरण

अवेयरनेस और चेतना कांशसनेस को सतत और भी सचेतन करने से उपलब्ध होता है। यही गांधी और गांधीवादियों में भेद था।

गांधी को ऐसा बहुत बार लगता भी था कि उनकी अहिंसा में कमी है या उनके ब्रह्मचर्य में या उनकी पवित्रता में। लेकिन तब वे अपने पूर्व अयास में और भी प्रगाढ़ता से लग जाते थे। काश! उन्हें खयाल आ सकता कि कमी उनमें नहीं, वरन उस मार्ग में ही थी, जिस पर कि वे चल रहे थे, तो उनका जीवन धार्मिक हो सकता था। उस विस्फोट की संभावना भी उनमें थी।

लेकिन नैतिक सफलता से कोई कभी धार्मिक नहीं होता है। नैतिक सफलता तो और भी प्रगाढ़रूप से आचरण में अटता लेती है। वह आस्तिक तक जाने ही नहीं देती है। वह भी बाह्य संपदा है। और वह भी अहंकार का ही सूक्ष्मतम रूप है। इसीलिए आजादी के बाद गांधी की असफलताएं हो सकता था उन्हें नैतिक साधना की असफलता का बोध करातीं। शायद वह बोध आरंभ भी हो गया था। लेकिन आजादी के पूर्व आजादी के लिए मिलती सफलताओं के धुएं में वह बोध मुश्किल था। वैसे जब वे आजादी के पूर्व भी असफल होते थे तो उन्हें अपने में कमी दिखाई पड़ती थी। लेकिन वह कमी स्वयं में दिखाई पड़ती थी। नैतिक जीवन के अनिवार्य उथलेपन में नहीं। यह भी अकारण नहीं है।

नैतिक व्यक्तित्व जीता है अहंकार के केंद्र पर। इसीलिए जब जीतता है तो अहंकार जीतता है और जब हारता है तो अहंकार हारता है। इसीलिए गांधी दूसरों के द्वारा किए गए अपराधों को भी अपना मान कर आत्मशुद्धि का उपाय करते थे। यह अहंकार ईगो-सेंटर्डनेस की अति है। इस अहंकार के कारण ही वे कभी तथ्यगत, ऑब्जेक्टिव विचार नहीं कर पाए। उनकी विचारणा सदा ही अहंगत, ईगोइस्ट बनी रही। शायद नैतिक जीवन की पूरी असफलता ही उन्हें जगा पाती। शायद पूरी नाव को टकरा कर टूटते देख ही, वे गलत नाव पर सत्य की यात्रा कर रहे थे, इसका उन्हें बोध होता। पर उनके इस जीवन में यह नहीं हो सका। जो उन्हें प्रेम करते हैं, वे परमात्मा से, उनके अगले जीवन में यह हो, ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं।

वे एक अनूठे व्यक्ति थे। और उनमें धार्मिक व्यक्ति का बीज छिपा था, लेकिन नीति ने उन्हें रास्ते से भटका दिया। शायद उनके अतीत जीवनों की अनैतिकता की ही प्रतिक्रिया, रिएक्शन था। और उनके चित्त की जड़ों में उतरने से ऐसा ही प्रतीत होता है। जैसे प्रारंभ में वे अति कामुक थे। उनके पिता मृत्युशय्या पर थे, लेकिन उस रात्रि भी वे पत्नी से दूर न रह सके। और पत्नी गर्भवती थी। शायद चार-पांच दिन बाद ही उसे बच्चा हुआ। लेकिन होते ही मर गया। शायद यह भी उनके संभोग का ही परिणाम था। और जब वे संभोग में थे तभी पिता चल बसे और घर में हाहाकार मच गया। फिर अति कामुकता के लिए वे कभी अपने को क्षमा नहीं कर पाए। और प्रतिक्रिया में जन्मा उनका ब्रह्मचर्य। निश्चय ही ऐसा ब्रह्मचर्य कामुकता का ही उलटा रूप हो सकता है।

क्योंकि प्रतिक्रियाओं से कभी किसी वृत्ति से मुक्ति नहीं मिलती है। वृत्तियों से, वासनाओं से मुक्ति आती है समझ, अंडरस्टैंडिंग से और जो व्यक्ति प्रतिक्रिया में होता है, विरोध में होता है, शत्रुता में होता है, उसमें समझ कैसे आ सकती है? शायद अंतिम दिनों में, नोआखाली में, एक युवती के साथ सोकर कुछ समझ, कुछ जागरण आया हो तो आया हो। लेकिन जीवन भर जिसे वे संयम की साधना कहते थे, उससे तो कुछ भी नहीं हुआ। हां, वे उस साधना के कारण यौनाविष्ट सेक्स-आब्सेस्ड जरूर बने रहे। इस यौन-चिंता ने उनकी दृष्टि को व्यर्थ ही विकृत किया। और इसके कारण वे अपने अनुयायियों पर भी अत्यधिक दमन थोपते रहे। इसकी भी पूरी संभावना है कि उनके उपवास, उनका तप आदि आत्म-अपराध, सेल्फ-गिल्ट की भावना में जन्मे हों! स्वयं को सताने सेल्फ-

टार्चर की प्रवृत्ति भी यौन-दमन से पैदा हुई एक विकृति है। इसी भांति उनके जीवन की और दिशाओं में इस दमन और प्रतिक्रिया का परिणाम हुआ है।

उनका समस्त जीवन-दर्शन ही इस विकृत चित्त-दशा से प्रभावित है। उनकी इस चित्त-दशा के कारण उनके पास एकत्रित होने वाला बड़ा अनुयायी वर्ग--विशेष कर उनके आश्रमों के अंतेवासी किसी न किसी भांति के मानसिक विकारों से पीड़ित वर्गों से ही आ सकते थे। इसलिए गांधी के कारण देश यदि मानसिक रोगग्रस्त व्यक्तियों के हाथ में चला जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है।

गांधी के जीवन का पूर्ण मनो-विश्लेषण, साइको एनालिसिस आवश्यक है। उसमें बड़े कीमती तथ्य हाथ लग सकते हैं। उनके प्रारंभिक जीवन में भय, फियर बहुत गहरा बैठा हुआ प्रतीत होता है। मैंने सुना है कि पहली बार अदालत में बैरिस्टर की भांति बोलते हुए वे इतने भयभीत हो गए थे कि उन्हें मूर्च्छित अवस्था में ही घर लाया गया था। और जो वे उस दिन बोलने को थे, उसकी तैयारी उन्होंने रात भर जाग कर की थी।

इंग्लैंड जाते समय जहाज के कुछ यात्री किसी बंदरगाह पर उन्हें किसी वेश्यालय में ले गए थे। वे नहीं जाना चाहते थे। लेकिन साथियों को "नहीं" कहने का साहस नहीं जुटा पाए। वेश्या के समक्ष जाकर उनकी वही स्थिति हो गई जो कि बाद में अदालत में होने को थी। इंग्लैंड में एक युवती उनके प्रेम में पड़ गई थी लेकिन उससे वे यह कहना चाह कर भी कि मैं विवाहित हूं, कहने का साहस नहीं जुटा पाए थे। उनका इतना भयभीत चित्त--उनका इतना भीरु व्यक्तित्व बाद में इतना निर्भय कैसे हो गया? क्या यह भय की ही प्रतिक्रिया नहीं है? भय की प्रतिक्रिया में व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अभय नहीं। निर्भय उलटा हो गया भय है। इसलिए निर्भयता फिर जान-बूझ कर भय की स्थितियों को खोजने लगती है। भय की स्थितियों में अपने को ढालने में भी फिर एक विकृत रस की उपलब्धि होने लगती है। और फिर ऐसे मन अपने को विश्वास दिलाता है कि अब में भयभीत नहीं हूं। लेकिन यह भी भय ही है।

क्या गांधी की निर्भयता भय ही नहीं है? क्या उनकी अहिंसा में भय ही उपस्थित नहीं है? मेरे देखे तो ऐसा ही है। भय ने निर्भयता के वस्त्र पहन लिए हैं। वह अभय, फियरलेसनेस इसलिए भी नहीं है, क्योंकि गांधी ईश्वर से भलीभांति और सदा भयभीत हैं। उन्होंने अपने समग्र भय को ईश्वर पर आरोपित कर दिया है। वे कहते भी हैं कि वे ईश्वर को छोड़ और किसी से भी नहीं डरते हैं। अभय में ईश्वर का भी भय नहीं होता है।

भय भय है। वह किसका है यह अप्रासंगिक है। फिर ईश्वर का भय तो बड़े से बड़ा भय है। अभय निर्भयता की कवायद भी नहीं करता है। अभय में न भय है, न निर्भयता है। इसलिए अभय अत्यंत सहज है। सांप रास्ते पर हो तो वह सहज ही रास्ता छोड़ कर हट जाता है, लेकिन इसमें भय नहीं है। और समय आ जाए तो वह पूरे जीवन को दांव पर लगा देता है, लेकिन इसमें भी कोई निर्भयता नहीं है।

अभय में न भय का बोध है, न निर्भयता का ही। अभय तो दोनों से मुक्ति है। पर गांधी की निर्भयता अभय नहीं है। यह भय का ही वेश-परिवर्तन है। उनका जीवन प्रज्ञा से आई मुक्ति नहीं है। वह केवल प्रतिक्रिया है। वह स्वयं से संघर्ष है, द्वंद्व है। वह स्वयं को ही खंड-खंड में बांटता है। वह अखंड की उपलब्धि नहीं है।

नैतिक चित्त अखंड हो ही नहीं सकता है। वह जीता ही है स्वयं को स्वविरोधी खंडों में बांट कर! वह विभाजन ही उसका प्राण है। धार्मिक चित्त अखंड का स्वीकार है। "मैं जैसा हूं," उस समग्र के प्रति जागना धार्मिक चित्त की भूमिका है। और उस जागने से आता है रूपांतरण, ट्रांसफार्मेशन; उस जागने में आती है आमूल-क्रांति, म्यूटेशन। वह पुराने की मृत्यु और नये का जन्म है। वह अहंकार की मृत्यु और आत्मा की उपलब्धि है।

धार्मिक चित्त स्वयं को तोड़ता नहीं है। धार्मिक चित्त शुभ और अशुभ के बीच चुनाव नहीं करता है। वह कहता है "जो है" वह है। वह इस होने को उसकी समग्रता में जानना चाहता है। और स्वयं के होने की समग्रता को जान लेना ही क्रांति बन जाती है।

अनैतिकता अशुभ का चुनाव करती है, नैतिकता शुभ का। धार्मिकता चुनाव रहित जागरूकता, च्वाइसलेस अवेयरनेस है।

गांधी में मैं ऐसी चुनाव रहितता नहीं देखता हूं, इसलिए उन्हें धार्मिक कहने में असमर्थ हूं। वे नैतिक हैं और परम नैतिक हैं। नैतिक महात्माओं में शायद उन जैसा महात्मा कभी हुआ ही नहीं है। वे अनीति के ठीक दूसरे छोर पर हैं। लेकिन जब तक नैतिक हैं, तब तक अनीति से मुक्त नहीं हैं।

अनीति से मुक्त होने को तो नीति से भी मुक्त होना होता है। और दोनों से ही मुक्त होकर चेतना धार्मिक, रिलीजस हो जाती है।